रामरसायन।

अयोध्याकाण्ड।

अर्थात्

पद्माकरकविकृत बालमीकिरामायण का

छन्दोबद्ध भाषानुवाद।

जिसको।

श्रीमन्महाराजाधिराज प्रमरवंशावतंस छत्रपुराधिप
श्रीमहाराजा साहब श्री राजा विश्वनाथसिंहजूदेव

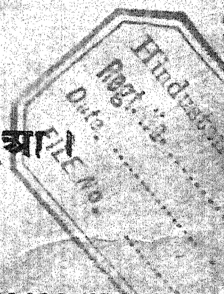
के आज्ञानुसार

श्रीबाबू जगन्नाथप्रसाद कायस्थ श्रीवास्तव हेड अकौंटण्ट वा सर दफ्तर माल राज छतरपूर (बुन्देलखण्ड) ने बड़े परिश्रम से शोध करके तयार किया।

काशी।

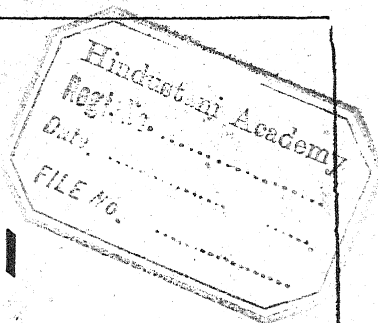
भारतजीवन प्रेस में मुद्रित हुआ।

सन् १८९५ ई०।



प्रथम बार १०००]

[मूल्य १)



श्रीगणेशाय नमः ।

रामरसायन ।

पदमाकरकृत ।

अयोध्याकाण्ड ।

छन्द भुजङ्गप्रयात ।

धनुर्बाहकं दाहकं दुर्जनानां सुलम्बालकं पालकं सज्जनानां ।
कलाकोटिकोटीरकामाभिरामं शुभं सानुजं राघवं नौमि रामं॥

दोहा ।

सब्र अभय अंकुस परसु लसत चारिहू हाथ ।
विघनहरन मङ्गलकरन जय जय श्रीगननाथ ॥

छन्द हरिगीतिका ।

जब भरत अरु शत्रुघ्न दोऊ जाइ मातामह-घरै ।
भे रहत सुख सौं अस्वपति नानाहि सौं लहि आदरै ॥
इत अवध मैं श्रीराम लछमन वृद्ध पितु दशरत्थ की ।
सेवा करत नित रहत भे गहि रीति निगम सुपत्थ की ॥

दोहा ।

सब बातन समरत्थ सब दशरथ के सुत चार ।
तिन मैं जेठे राम इक परिपूरन अवतार ॥

चौपाई ।

अज अच्युत ईश्वर सुरत्राता । सब विधि सबनि सबै सुखदाता ॥

रावनवधहित अमित उपाई । बिधिबच मानि मनुज मे आई ॥
कौशिल्याउरउदधि निसेसा । राम गगन तन सुमुख सुबेसा ॥
बुध विक्रम बल शील निधानै । सुन कटु बचन न उत्तर ठानै ॥
छिन सेवत रीझत मृदुभाषी । पचवत रीझ न उर अभिलाषी ॥
करहि जु विक्रम दान विधानै । निज मुख बलगि न कबहुं बखानै ॥
जो आवहि तासौ पहिलैहीं । बोलि बचन हित हिय हरि लैहीं ॥
शील ज्ञान बय बृद्ध जु कोऊ । सज्जन ता सँग तजहिँ न सोऊ ॥
सकल शस्त्र अस्त्रन के जेते । अति अभ्यास करत नित तेते ॥
सुमिरत नहिं निजजन अपराधै। देत कुटिल क्रोधहिं को बाधै ॥
सेवन वर विप्रन की राखै । झूठे बचन न सपनिहुं भाखै ॥
गुनमण्डित पण्डित परबीनै । इन्द्रिन सहित सुमन बस कीनै ॥
सहित सनेह प्रजन प्रतिपालै । बातन असुभ करम की चालै ॥
बचन चतुर बाचस्पति ऐसे । सकल वेदवित ब्रह्मा जैसे ॥
धनुरवेदवित भुजबल भारै । छत्री धरम मनहु तन धारै ॥
काम अरथ धर्महिं पहिचानै । जो अति गूढ़ सु आशय जानै ॥
मंत्र गुपत अति कुल सिधिताई। पूरब कृत करमन के नांई ॥
कबहुं न केहु दुर्बचन उचारै । गुरु पितु मात भगति दृढ़ धारै ॥
असत चीज संग्रहत न येकौ । आलसरहित जु सहित बिवेकौ ॥
न्यायनिपुन पुन धन उपजावै । तीजे बटहिँ खरचि जस छावै ॥
सकल सुदिश देशनकी भाषा । भल भाषत समुझत श्रुत साषा ॥
समुझत गान सकल सुर साता। सुकबि कबित गीतन के ज्ञाता ॥
निरखत चित्र बिचित्र सुहाये । चढ़ जानत हय गय मनभाये ॥
सदय सदहि अतरथि रनभू है। जानत रच सेनन की बू है ॥

जीतत रिपुन निपुन रन माहीं। जाचकजनहि निरखि हरषाहीं ॥
सकलअसुरसुर मिल चढ़िआवैं। तदपि न जय रघुपति सो पावैं ॥
या बिध बिविध गुनन सों छाये। लखि रामहि दशरथ चित ल्याये ॥
कैसे हमहि जियत सुत राजा। होय अबहिँ सब गुनगन छाजा ॥
अवधराजहित सुत अभिषेकैं । कब लखिहौं नृप जोर अनेकैं ॥
पुत्रहिँ निरखि कहत महिराजै। हौं जैहहुँ कब सुर्गसमाजै ॥
और नृपन दुर्लभ सुत ऐसो । सब गुनगनमण्डित प्रभु जैसो ॥
सौंपहु राज इनहि कै ताही । यह निश्चै करि नृप मनमाहीं ॥
मन्त्री तबहिँ सकल बुलवाये । तिनहि नृपति ये बचन सुनाये ॥
अति उतपात उठन अब लागे। ते नभ महि सुर्गहुँ सब जागे ॥
हमरौ वय अति वृद्ध भयौ है । तातै यहहि विचार ठयौ है ॥
जौ अब राज राम कह दैहौं । दृग देखत अभिषेक करैहौं ॥
ताहित नृपति मही पर जेते । बुलवावहु ल्यावहु सब तेते ॥
मन्त्रिन तब सब नृपति बुलाये। ते नृप सब हरबर चलि आये ॥

दोहा।

तब सजि सभा महाजनन पुरजन नृपन बुलाय ।
तहँ दशरथ बैठत भये सिंहासन पै आय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

छन्द ।

तहँ नृपति दशरथ सकल नृप मंत्रीन सो ये बच कहे ।
ज्यों आगले नृप प्रजन सुतवत त्यों हमहुँ पालत रहे ॥
भौ वृद्ध बय जगहित करत श्रम राज बहु वर्षन कियो।
अब जरा जीरन तन तिहहि बिश्राम चाहत हौं दियो ॥

दोहा ।

तातें प्रजन सुरक्षि वै मो उर यहहिं उमाह ।
सौंपहुँ राज सु राम कौं जौ तुम देहु सलाह ॥

चौपाई ।

तौ भोरहि पुष्यभ सुभ नामैं । यौवराज अभिषेकहुँ रामैं ॥
राज-सुभर लहि भौ श्रम जेतौ । यातैं समित सु ह्वैहै तेतौ ॥
यों सुनि नृप दशरथ की बानी । थलथल सकल सभा हरषानी ॥
तबहिँ सबनि नृप सों वह कह्यऊ । राज करत वय वृद्ध सुलह्यऊ ॥
यौवराज तातैं अब दीजे । इक रामहिँ सब श्रमहि तजीजे ॥
धरि छत्रहिँ चढ़ि सुजग विसेषैं । नृप मग राम कढ़हिँ हम देखैं ॥
या बिधि हम सबकीं अभिलाषैं । होंहि नृपति रघुपति सुख साषैं ॥
यों सुनि सकल सभा की बानी । नृप दशरथ पुनि बात बखानी ॥
जो हम कहहिँ वहै तुम कह्यऊ । याते मम उर संशय भयऊ ॥
रामराज तुम्हरे मनमांहीं । है साँचिहु कै साँचिहु नाहीं ॥
धरि धरमहिँ वह राज कियो मैं । काहू कबहुँ न दुःख दियो मैं ॥
दुख न लह्यउ तुम हम तें ऐसें । पिय कौं राज चहत चित कैसें ॥
दूरि करहु मम संशय येही । हौ तुम सब मम परमसनेही ॥
तब पुनि सकल सभाजन बोले । रामगुनाकर गुनगन खोले ॥
सुनहुँ नृपति ये तुव-सुत ऐसे । रामप्रबल इन्द्रहु नहिँ तैसे ॥
शशिसम सकल प्रजन सुखदाता । सुरगुरु सम बर बुद्धि बिधाता ॥
धरहिँ छमा पृथिवी सम सोऊ । रामसरिस लखि परत न कोऊ ॥
औरन इकहि इकहि गुन पाये । राम इकहि सब गुनगन छाये ॥
लछमनसहित जु जहँ चढ़िजावैं । जीति रिपुन पुनि पुर को आवैं ॥

गजरथ चढ़ेहु प्रजन की ताईं । बूझत कुशल सुतन की नाईं ॥
परहित पाँचहु भूत महा के । ज्यों गुन त्यों रामहि मैं ताके ॥
भुवन चतुर्दश की प्रभुताई । करिवैं योग इकहि रघुराई ॥
रामप्रबल भुजबल जब एतौ । तिनहिँ सु इक महि-रच्छन केतौ॥
रिस कर चहहिँ त्रिलोकन जारैं। ह्वै परसन चाहहिँ दै डारैं ॥
होत दुखित परजन के दुख सों। मानत सुख हम सब के सुख सों॥

दोहा ।

रामचन्द्र के गुनन सौं हम सब मिल सुख पाइ ।
कहत आप सौं दीजिये युवराजी नृपराइ ॥

इति श्री अजोध्याकाडे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

छन्द ।

यों सुनि सभा के वचन दशरथ हियैं हर्षि यहै कह्यौ ।
मैं धन्य जो तुम सवनि रामहिँ यौवराज करै चह्यौ ॥
यौंहीं सकल राजान सौं कहि द्विजन सौ भाषे तवै ।
यह चैत मास बसन्त ऋतु द्रुम बेल बन फूले सवै ॥

दोहा ।

यौवराज अभिषेक की सामा करहु तयार ।
ऐसे नृप के वचन सुनि हरषी सभा अपार ॥

चौपाई ।

तवहिं बशिष्ठ जनन सौं भाषे । जोरहु यह सामा अभिलाषे ॥
सुवरन आदि सु सातहु धातैं । नौऊ रतन द्विजन की पाँतैं ॥
सु बलिदान पूजन की सामा । सित सुगन्ध फूलन की दामा ॥

औषधि सकल सुमधु घृत सोई। है सित चँवर सु पङ्खा दोई ॥
ध्वज पुनि छत्र दुकूल नवीनै । एकसत घट सुवरन के पीनै ॥
सु रथ सकल आयुधगन छाजौ। चतुरङ्गिन सेना सब साजौ ॥
सुभ लच्छिन लच्छित गज नीकौ। इक वृष सुवरन शृङ्गनहीकौ ॥
बाघ चरम नख पुच्छ समेतू । चाहिय जो औरहु सो तेतू ॥
अगिन होम शालहि मैं सामा । सिद्ध करहु एतीं अभिरामा ॥
राजदुवार नगर के द्वारे । तहँ बँधवावहु बन्दनवारे ॥
इक लख विप्रनि न्यौत बुलाओ। दधि पय पान प्रभात कराओ ॥
दै सुवरन धन बहु सनमानौ ।रबि उगत पुनि यह बिधि ठानौ॥
अति समरथ द्विजवर बुलवाओ। सुभग स्वस्तिवाचन करवाओ ॥
बाँधहु ध्वज थल थलन अपीचौ। नृप मारग चन्दन जल सीचौ ॥
बिच डयौढ़ी पर गनिका गावैं। बेनु मृदङ्ग सु बीन बजावैं ॥
सकल नृपन के सुभ-सुत जेते । बसनबिभूषनभूषित तेते ॥
बाँधे असि ढालन इत आवैं । बिच ले चौक सबै मिल छावैं ॥
मुनि बशिष्ठ जू आज्ञा दीन्हीं । जनन सु सामिग्री सिध कीन्हीं ॥
तब नृप सौं यह बात उचारी। कियहु जु आयसु सो सब त्यारी ॥
तबहिँ सुमंत्रहि भेजत भेही । लै आवहु रामहिँ कहि एही ॥
रामहिँ तबहिँ सु रथहिँ चढ़ाई। लै आये जहँ दशरथ राई ॥
सकल सुदिशि देशन के राजा। तहँ दशरथ सजि तख्त बिराजा ॥
रथ तें तहँहिँ सुमंत्र उतारे । गे दशरथढिग राजदुलारे ॥
जोरि सुकरि निज नाम उचारी। छ्वै पितुचरन प्रनति किय भारी ॥
निरखिनृपतिनिजउरहिलगाये। रतनन के आसन बैठाये ॥
रघुनन्दन तहँ राजत भेई । सरद चन्द सम छबिन छयेई ॥

कह्यहु राम सौं नृप बच नीकौ । तूं मम सुत निज पटरानी कौं ॥
पुष्य नखत सुभ जोग सवेरैं । तब तुव राजतिलक सिर तेरैं ॥
जदपि तनय तूं सब कछु जानै । तदपि सिषापन कहत बखानै ॥
क्रोधन काम बिसन मति लीजौ । बैठि सभा सु बिचार करीजौ ॥
देश दिशन की खबरैं जेती । हलकारन-मुख लहियौ तेती ॥
मंत्री सुजन पुरोहित जेते । प्रजन सहित परपालहु तेते ॥
आयुध अन्न रतन धन धामै । निज लखि अधिक भरहु कछु तामै ॥
मृगया मद्य जुआ जुव जोखा । इन बस कबहुँ न कीजहु धोखा ॥
या बिधि नृपति जु पृथ्वी पालै । ताहि कबहुं दुख दोष न सालै ॥
यौं सुनि नृप दशरथ की बानी । कौशिल्या ढिग जनन बखानी ॥
हरषि सु कौशिल्या द्विज मानै । दै धन बसन रतन गोदानै ॥
खबर कहनवाल कै ताईं । दीन्ही बहु बकसीस तहाँईं ॥

दोहा ।

ता पीछूँ श्रीराम तहँ कै पितुचरन प्रनाम ।
लै सिष नृप सौं सुरथ चढ़ि भे आवत निज धाम ॥

इति अयोध्याकांडे तृतीयः सर्गः ।

छन्द ।

तब तहँ सभा तें सब नृपति उठि सु निज निज डेरन गये ।
धरि मन सु निश्चय नृपति दशरथ निज महल आवत भये ॥
नृप पुनि सुमंत्रहिँ भेज रामहिँ कौं बुलावत भे तहाँ ।
ल्याये सुमंत्र सु राम कौं नृपभवन भूपति हे जहाँ ॥

दोहा ।

किय प्रनाम पितुचरन छ्वै रघुनन्दन तहँ आइ ।
उर लगाइ बैठाइ ढिग बोले दशरथ राइ ॥

चौपाई ।

सुनहुं पुत्र हम बहु दिन ताईं । भुगत्यौ बहुबिधि भोग इहाँईं ॥
सु मख हजारन करि जस छायौ । अनुपम पुनि तुम सौं सुत पायौ ॥
अब न रह्यौ मुहिँ कछु करवैईं । इक तुव राजतिलक धरिवैईं ॥
देखत असुभ अमित सपनेहूं । नभ तैं उल्मुक परत घनेहूं ॥
जन्म नखत मम पकरि रहे हैं । कुज रवि राहु असुभ ग्रह जे हैं ॥
गनक कहत यह जोग परै जो । जियहि न नरकृत कोटि करै जो ॥
भ्रमहि न मम चित जबलौं एकै । लेहु कराइ तलगि अभिषेकै ॥
आज पुनर्वसु पुष्य सवेरै । राजतिलक तब ह्वैहै तेरै ॥
तातें तुम दम्पति व्रत लैकै । सोवहु सेज कुसन की कैकै ॥
तुम्हरे मित्र तुमहिँ सब रच्छैं । होत बिघन बहु कारज अच्छैं ॥
जब लगि भरत न अवधहिँ आवै । तब लगि यह कारज ह्वै जावै ॥
जदपि भरत है ऐसो नाहीं । तदपि मनुजमति चपल सदांहीं ॥
यौं सुनि राम सु गेह गयेई । तहँ न सियहिँ दृग देखत भेई ॥
आये चलि तहँ तें रघुराई । देवभवन जहँ माता छाई ॥
तहँहिँ सुमित्रा लछमन सीता । सुनि अभिषेक जुरे निरभीता ॥
तबहिँ मूँद मुख दृग धरि ध्यानै । कौशिल्या ध्यावत भगवानै ॥
तबहिँ राम करि विविध प्रनामै । कह्यहु जननि सौं वचन ललामै ॥
सुनहु जननि नृप वचन उतालौ । मोसौं कहत प्रजन तुम पालौ ॥
भोरहिँ राजतिलक मम ह्वैहै । ता कारन पितु कह्यहु यहै है ॥

सु तिय संहित तुम रहहु उपासे। प्रोहितहूं ये बचन प्रकासे ॥
ता हित हौंहिं जु मङ्गल बातैं । ते सब करहु लहहु सुख तातैं ॥
यौं सुनि जननि सुबचन उचारे। चिरजीवहु तुम राम पियारे ॥
कबहुं न लहहु रिपुन तें बाधा। देहु सु बन्धुन हरष अगाधा ॥
मोतैं अधिक सुमित्रहिं जानौ । तोषहु याहि कहहि सो ठानौ ॥
तूं सु मुहूरत उपज्यौ यातै । राजसिरी नृप सौंपत तातै ॥
यौं सुनि मातुबचन रघुराई । भे बोलत सुन लछमन भाई ॥
तूं मम प्रानन तें अधिकाई । तो हित हम यह राज चहाई ॥
भोगहु राज सकल तुम आछै। पालहु महि मम सँग ता पाछै ॥

दोहा ।

यौं लछमन सौं भाषि तहँ मातन कौं सिर नाइ ।
लै सिष सियपति सिय सहित महलन पहुँचे आइ ॥

इति अयोध्याकाँडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

छन्द ।

गे राम सुगृह बशिष्ठ सौं नृप कह्यहु बोल बुलाइ कै ।
सीता सहित हित राम कौं तुव ब्रत करावहु जाइ कै ॥
तबहीं सु रथ चढ़ मुनि सु तीजीं डेवढ़ी ताईं गये ।
तहँ आइ राम बशिष्ठ कौं रथ तें उतारतहीं भये ॥

दोहा ।

करि प्रनाम सनमान करि कर गहि अपने साथ ।
गुरु बशिष्ठ कौं लै गये निज महलन रघुनाथ ॥

चौपाई ।

बोले तहँ मुनि सौं हरिबरहीं । देहु जु आयसु सो हम करहीं ॥
तब मुनि कह्यहु सुनहु रघुराई । देत तुमहिं नृप सकल रजाई ॥
करहु उपास सिया सह तातैं । ह्वै है राजतिलक तुव प्रातैं ॥
या कहि दुहुन उपास कराई । भे निकसत तहँ तैं मुनिराई ॥
राजभवन हरषित भौ ऐसे । प्रफुलित कञ्जकलित सर जैसे ॥
मुनि वशिष्ट नृपमारग देखे । थल थल अति आनन्द अलेखे ॥
सब ठौरन अति उच्च पताके । फहरत ध्वजन सहित मुनि ताके ॥
बालक बृद्ध तरुण नरनारी । हेरहिं अरुण उदय मग सारी ॥
यौं पुर मगन लखत मुनि आए । ऊँचे भवन नृपति जहँ छाए ॥
नृप आसन तजि ठान प्रनामैं । भे बूझत मुनि सौं निज कामैं ॥

दोहा ।

आये जु कर बशिष्ठ सो दीन्हौ नृपहिं सुनाइ ।
दै सिष सबन महीप गे रनवासहिं हरषाइ ॥

इति अयोध्याकांडे पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

छन्द ।

जब गे वसिष्ट सु राम तब सिष सहित श्रीभगवान कौं ।
करि ध्यान होम सु अग्नि मैं हवि रच्यौ वचि जु प्रमान कौं ॥
तिहि भच्छ दरभासन विषैं सिय सहित सोवत भे तबै ।
जब पहर रात रही सु उठि भूषित कराए गृह सबै ॥

दोहा ।

तब तहँ चारन भाट बहु भे भाषत जस मिष्ट ।
प्रात कृत्य करि रामहूँ भे ध्यावत निज इष्ट ॥

चौपाई ।

बहुर पहिरि नव बसन सुहाये । पुन्य दिवस वाचन करवाये ॥
यौं बिधिवस उपबास पुनीता । करत भए रघुपति सह सीता ॥
सोभित करत नगर पुरवासी । छावत मग फूलन छविरासी ॥
देव दुवार सकल पुरद्वारे । किय चित्रन चित्रित मठ भारे ॥
बाँधे ध्वज थलथलन सुहाए । चौहट अटन अटारिन छाए ॥
गावत नँचत करत ए बातैं । रामहिँ राजतिलक परभातैं ॥
धन दशरथ लखि निज बिरधाई । सौंपति सुतहि जु आज रजाई ॥
हमहुँ धन्य धरि जनम धरा मैं । राज करत देखहिँगे रामैं ॥
चिरजीवहिँ दशरथ सुखरासी । यों सब कहत अवधपुरवासी ॥

दोहा ।

राजतिलक सुनि राम को दिश देशन तें धाइ ।
आये सकल प्रजान के वृन्द हिये हरषाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षष्टमः सर्गः ॥ ६ ॥

छन्द ।

अभिषेक के पहिले दिवस दिन रह्यौ हो जब द्वै घरी ।
दासी तबहिँ इक कैकयी को मन्थरा तनकूबरी ॥
सो सहज नगर बिलोकिबे कों महल ऊपर चढ़ि गई ।
तहँ अवधि मैं घर घर सुमंगल मोद अति देखति भई ॥

दोहा ।

चौंरावत सब राजमग चन्दन जल छिरकाइ ।
प्रगट पताका घर घरन बाँधत हिय हरखाइ ॥

चौपाई ।

गृह गृह नरनारीजन जेते । पहिरत बसन बिभूषन तेते ॥
दासी निरखि नगरउतसाहै । पूछौं धायहिं आजु कहा है ॥
कौशिल्या बहु धनहिं लुटावै । करिहै नृपति कहा किन गावै॥
तबहीं धाय हरषि हिय बोली । यौवराजचरचा सब खोली ॥
प्रातहि राजतिलक इक रामै । करिहै नृपति यहहि सुख कामै॥
यौं सुनि तबहिं सुउतरि अटा तैं। कुबजा कुटिल जु मन बच गातैं॥
द्रोहदग्ध उर अति अकुलानी । आई तहँ जहँ केकइ रानी ॥
बोली तबहिं कहा तूं सोवै । केकइ नृपतिसुता किन रोवै ॥
दुख दरयावहिं डूब गई तूं । यह अबलौं समुझत न भई तूं॥
अति अनरथ यह आइ पर्यौई । तुव सुहागमद जात हर्यौई ॥
क्रोधकलित कुबजहि लखि रानी । बोली तुव घर कुशल कहानी ॥
पुनि कुबजा यह बचन जु कह्यऊ । तेरे दुख दुख मो कहँ भयऊ ॥
भोरहिं नृप रामहिं युवराजी । देहहिं राजतिलक करि राजी॥
तातैं मम चित चिन्ता छाई । तुव सुख चाह कहन हित आई॥
तव सुख सुख दुख तें दुख मोही। तातैं अब समुझावहुं तोही ॥
पाइ जनम केकयकुल माहीं । राजधरम तूं जानत नाहीं ॥
लखु नृप कौशिल्या बस ह्वै कैं । देत दगा तुहि अतिहित कै कैं॥
तेरौ प्रथम अहित यह कीन्हौ । भेजि भरत मातुलगृह दीन्हौ ॥
रामहि राखि नृपति निज पासै। दिय कौशिल्यहि हरख हुलासै॥
रामहि राज प्रभातहि दैहैं । जब लगि भरत न आवन पैहैं॥
नायक तुव रिपु रूप सुहायौ । तूं अति भूल जु सरप खिलायौ॥
अरिअहिकौ जु करहि बिसवासू। ताकौ तुरत करत ये नासू ॥

त्यों दशरथ अब तोह अथानी । भरतसहित नासत मैं जानी ॥
रामहिँ राज करत नृप थानै । तूं सुत सहित सु मृतक समानै ॥
तातैं निज निज सुत रखवारी । अबहिँ करहु सुन बिनति हमारी ॥
होत न कछु फिर औसर चूकैं । मन की मनहिँ रहत सब हूकैं ॥
या विधि सुनि कुबजा की बानी । भरतमात अति हिय हरखानी ॥
इक अभरन कुबजहि दै आछैं । ऐसौ बचन कह्यो ता पाछैं ॥
और चहहु सो दैहौं तोकौं । तूं प्रियवचन सुनायौ मोकौं ॥
देत सुराज नृपति जो रामै । यह सुनि सुख न समात हियामैं ॥

दोहा ।

राम सु प्रिय मुहिं भरत तें तिनहिं देत नृप राज ।
या सिवाइ सुख दूसरौ और कहा अब आज ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

छन्द ।

यों केकई के सुनि बचन वह मन्थरा क्रोधहि छई ।
सुनि पटकि भूषन भूमि पै या विधि बचन बोलत भई ॥
किहि बात पै तूं हरष ठानत है कहा यह बावरी ।
समुझी परै न विपत्ति तुहि इस कौन दुर्मति रावरी ॥

दोहा ।

बड़ बैरी सुत सौति कौ भोरहिं ताकौं राज ।
भरत सहित तू मर चुकी याकौ फिर न इलाज ॥

चौपाई।

काकासुत सउतेलि भाई । ये जब दिखहु तबहिँ दुखदाई॥
तातैं भरत जु पुत्र तिहारौ । रामहियहिँ यह कराटक भारौ॥
राम जबहिँ युबराजी पैहैं । निज करटकहु रहन न दैहैं ॥
यामै नास भरत इकही कौ । देखि परत कछु लगत न नीकौ॥
जनमहुँ तें लछमन इक रामैं । जानत कछु सन्देह न यामैं ॥
अब शत्रुघ्न भरत के पाछैं । भोगहिँगे बहु बिधि दुख आछैं।
भोरहिँ रामतिलक जब ह्वैहै । तूं तब कौशिल्या ढिग जैहै ॥
दासी ह्वै कर जोरि तहाँईं । सेवहिगी हम सब की नाईं ॥
मोसौं तब सब करिहैं हाँसी । कहिकहि यह दासिन की दासी
लखि लघुता तुव बड़ दुख मोकौं। दुरगति समुझ परत नहिँ तोकौं
यों कुबजा मुख की सुनि बानी । रानी तबहिँ सुबानि बखानी ॥
तूं कुबजा कछु समुझत नाहीं । गुननिध राम सुजान सदाहीं ॥
सत्यसदन धरमज्ञ सुशीला । जानत नहिँ यह अधरमलीला॥
जेठे पुनि चहु भाइन माहीं । राज उचित इनहीं के ताहीं ॥
पालहिँगे अनुजनहित हीतैं । जिनहिँ भरतअतिप्रियनिजजीतैं
कौशिल्यहुँ तें अधिक सदाहीं । सेवत मुहि निज प्रभु के नाहीं॥
राम भरतहूं ते मुहि प्यारे । तिनकै राज हमहिँ सुख भारे॥
ह्वैहै कबहुं भरत पुनि राजा । रामकृपहिँ लहि सब सुखसाजा
तातैं हरषि समय यह ऐसौ । तो उर बढ़त बिषाद सु कैसौ॥
यों सुनि भरतजननि की बानी । पुनि कुबजा इह बात बखानी॥
भरतजननि तुहि दुरमति आई । निजहित तोह न परत दिखाई
कहत सकल पुनि उलटी बातैं । रामहि कौ गुन बरनत जातैं ॥

रामराज रामहिँ के जाए । करिहैं गे अति आनँद छाए ॥
पैहैं भरत न राज सु कैंहूं । कोरे रहत दिखात तबैहूं ॥
राजतिलक सब तनय न पावैं । लहहिँ जु कहुँ तौ अनरथ छावैं॥
तातैं भरत सु तिलक न पैहैं । यह भविष्य लखि परत हमैं हैं ॥
सु नृपबंश तें तनय तिहारौ । ह्वै है दुत तबहीं दुख भारौ ॥
तातैं तुव आनँद चहि रानी । हौं पुनि पुनि हित कहत बखानी
तूँ सौतिन्ह के सुख सुख पायौ । जो मुहिँ निज भूषन पहिरायौ ॥
राम जु राजतिलक यह पैहैं । तव सुत जियत रहन नहिँ दैहैं ॥
तूँ पठवाइ सुतहि ननसारैं । तज दिइ मोह सकल इक बारै॥
निकट रहत ताही पर नेह्न । करैं सबै खग मृग तरु एह्न ॥
है इतहास भलौ इक यामैं । हौं भाषत सुन तूँ नृपभामैं ॥
बन बिच इक बढ़ई चलि आयौ । इक तरु तहँ ताके मन भायौ॥
काटहुँ गौ भोरहि तरु यौंई । यह निहचै कर जात भयौंई ॥
तब तिहिँ तरु ढिग के तरु जेते । कुटिल सकंटक त्टन पुनि तेते॥
बढ़िबढ़ि तिन बन कौ मग छायौ। किय दुर्गम वह थान सुहायौ ॥
तातैं यह सबही की रीती । जो जिहि ढिग ताही पर प्रीती॥
ऐसहि राम लखन के ताईं । रच्छहिँ गे ढिग जान सदाँईं ॥
तुव सुत राम रहन नहिँ दैहैं । छलबल प्रान भरत के लैहैं ॥
यातें इहहि बिचार करीजे । रामहिँ देशनिकारौ दीजे ॥
रहहिँ राम निर्जनबन माँहीं । भरत करहिँ तब राज इहाँहीं ॥
जु कदाचित यह राज सुहायौ । राम अछत तेरैं सुत पायौ ॥
तौ दोउन बहु बैर बढ़ैगौ । राम तबहिँ तौ सुतहि गढ़ैगौ ॥
केहरिमुख मृगसुत की नाहीं । राम बिबस त्यौं भरत सदाँहीं ॥

तातैं तूँ निजसुतरखवारी । या बिध कर सिखमानि हमारी॥
लहि सुहाग तूँ गरब कियौई । तब कौशिल्यहि दुःख दियौई॥
सो अब रामजननि क्यों तोसों । करिहै प्रीत कहहि किन मोसों
तातैं तुहि न भरत के ताँहीं । रामराज सपनिहुँ सुख नाहीं॥

दोहा ।

कौशिल्यासुत कौं अबहिं तूँ बनबास कराव ।
पुनि बुलाइ ननसार तें सुत कौं राज दिवाव ॥

इति श्री अयोध्याकांडे ऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

छन्द ।

यौं मंथरा के सुनि बचन मति केकई की फिर गई ।
करि तबहिँ कोप सु हर्षि तजि पुनि ए बचन बोलत भई ॥
आजुहिँ पठावहुँ राम कौं बन राज द्यावहुँ भरत कौ ।
याकौ उपाव बताव मो कहँ जो अबहिँ मैं करि सकौं ॥

दोहा ।

यौं सुनि बोली मन्थरा याकौ जु कछु उपाइ ।
सो तूँ सब समुझत तदपि हौं भाषत चित लाइ ॥

चौपाई ।

देव असुर जुद्धहि के माँहीं । निज सहाइ हित इन्द्र तहाँहीं॥
नृप दशरथहि बुलावत भेई । तोहि लियहिँ सँग तहँ नृप गेई॥
दण्डक देश जु दखिन दिशा मै । वैजअन्त इक नगर जु तामै ॥
तनय तिमिध्वज कौ तिहि ठामै । मायावी सम्बर इह नामै ॥
सो सम्बर सुरपति सों रारी । दिन मैं करत हतौ नित भारी ॥

निशि मैं बहुर सु माया धारै । जे घायल तक तिनहिँ सँघारै ॥
युद्ध करत असुरन सौं राजा । भे मूर्च्छित लहि घाउ दराजा ॥
तूँ तहँ तैं तब रथ फिरवायौ । या बधि निजपति जीव बचायौ ॥
लखि रथ फिरत असुर बहु धाये । वाहत अस्त्र नृपति पर आये ॥
तब तूं बहुर करी रखवारी । ह्वै प्रसन्न नृप बात उचारी ॥
द्वै बरदान दिये तुहि रानी । जो चाहहि सो माँगु सुबानी ॥
तब तूँ यहहि कह्यौ अनुरागी । जब चहिहौं तब लैहहुँ मांगी ॥
तूं जानत यह सकल कथाई । तदपि खबरि पुनि तोह दिवाई॥
राम सु इक बर सौं बन जावैं । दूजैं राज भरतही पावैं ॥
राम बरष चौदह बनमाहीं । बसिहैं जाइ सुनहुं तब ताहीं ॥
राज सम्हारि भरत सब लैहैं । मन्त्रिनसहित प्रजन अपनैहैं ॥
यौं तुव सुतहि सबै चाहैंगे । बहुर न राम अवधि आवैंगे ॥
तातैं क्रोधभवन के माहीं । या बिधि भू पर पौढ़ु तहाहीं ॥
इत उत पटकि बिभूषन भाये । मलिन बसन पहिरहु बिन ध्वाये
देखहु कछु न कहहु कछु बानी। रोवतही रहिये तहँ रानी ॥
यौं सुनि तोह नृपति अकुलैहैं । तबहीं तुरत मनावन ऐहैं ॥
तोपर प्रीत नृपति की भारी । जो तूं कहहि सुतबहिँ तयारी ॥
देंहि जु कछु तौ तुम मत लीजौ। देव असुर रन की सुधि कीजौ॥
जब नृप द्वै बर देवै ताईं । करहि जु प्रन तब मांग तहांईं॥
राम बरष चौदह बन जावैं । भरत इहहि युवराजी पावैं ॥
यौं सुनि कुबजावचन सुरानी । अचरज मान कही यह बानी ॥
तूं मम प्रानन तें प्रिय दासी । ममहित चाह सुनीत प्रकासी ॥
हौं नृप कौ छल बल इह एतौ । जानतही न कह्यउ तू जैतो ॥

तूं मतिसागर अँग अँग रूरी । नीतिनिपुण मायाबिन पूरी ॥
जा दिन राम बिपिन कों जैहैं । अरु यह राज भरतही पैहैं ॥
तब तोकहँ रतनन की माला । दैहहुँ भूषन बसन दुसाला ॥
या कहि तोरि हियहि के हारै । तुरत उतार बिभूषन भारै ॥
पहिर मलिनपट रिस गृह माहीं । भू पर परत भई तिहि ठाहीं ॥
तहँ बिचार निज उर दृढ़ कीन्हौं । भरत मात एही ब्रत लीन्हौं ॥

दोहा ।

राम जाहिं जो बिपिन तौ जीवन उचित हमार ।
नाहीं तौ मर जाहुँगी भरत रहै ननसार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

छन्द ।

यों केकई करि सुउर निश्चय भूमि पर पौढ़ी जबै ।
लखि साँझ छोड़ि सभाहि नृप रनवास मे आये तबै ॥
ह्वै कामबस दशरथ प्रथमहीं केकई के गृह गये ।
प्रियवचन कहि वै तहँ न तिहि कों सेज पर देखत भये॥

दोहा ।

भे बूझत दासीन सों तबहिं सु दशरथ राज ।
है कित केकयनृपसुता भयौ कहा यह आज ॥

चौपाई ।

तबहिँ तहाँ की दासी जेतीं । सभय जोरि कर बोली तेतीं ॥
रानी क्रोधभवन के माहीं । सुनि नृप भे व्याकुल तिहि ठाहीं॥

जाइ नृपति तहँ रानी देखी । रोवत भू पर विकल अलेखी ॥
आँसुन पोंछि सुकर नृप कह्यऊ। क्रोध जु यह किहि कारन भयऊ॥
हौं न कबहुं तुव अहित कियौ है। मो दुखहित कत रोस लियौ है॥
रोग जु कछु तो बैद बुलाऊँ । अबहिँ व्यथा सब दूर कराऊँ ॥
रोवति कति बोलति नहिँ बानी। सोषत कत सुभ तन मम रानी॥
जुन वधयोग कहहु तिन मारौं । जो बध योग न ताहि सँघारौं॥
रङ्कनि कहहु धनिक कर देहूं । धनिकनि रङ्क करहुँ पुनि तेहूं॥
मैं तुव बस मम बस सुतिहारौ। चहहु सु लेहु तजहु भ्रम भारौ॥
धर्महि की कर सौंह कहौं हौं । तुव सुख चाहि न और चहौं हौं
या छिति पर ये देश गनाये । द्रविड़ सिंधु सो बीर सुहाये ॥
सोरठ मरहठ दक्खिन देशा । अंगहु बंग सुमागध बेसा ॥
मच्छ देश पुनि काशी नामा । कोशल देश जु अति अभिरामा॥
तहँ अति उत्तम चीज जु होवै । मागस तूं उठि अब मति रोवै ॥

दोहा ।

या बिधि सुनि पति के बचन तबहिं केकई बानि ।
भई सु बोलत भूप सौं कामबिबस तिहि जान ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

छन्द ।

तब केकई कटु बात उर की यों प्रगट करतैं भई ।
तुम कियो नहिँ कछु अहित मेरौ तदपि मो उर यह ठई ॥
इक बात सों तब कहहुँगी जब प्रथम प्रन तुम यह करौ ।
हौं करहुँगो जो कहहिगी तूं यौ नृपति सुनि उच्चरौ ॥

दोहा ।

तो समान मोकौं न प्रिय तिया कौनहू आन ।
को प्यारौ पुनि पुरुष अस या जग राम-समान ॥

चौपाई ।

तुव सिर परसि कहत यह बानी। रामसपथ मुहि सुनि अब रानी॥
जो तूं कहु सो तबहिँ करूँगो । तज संशय प्रन तैं न टरूँगो ॥
यों बिचार सुनि नृप की बानी । तब दुर्वचन कह्यउ इमि रानी॥
तुम कर सौंह जु बचन बखानै । दीवैं काज हमहिँ बरदानै ॥
सो सुर सकल जो तैंतिस कोटै । इन्द्र अगिन रवि ससि ग्रह जोटै
निशि दिन दनुज गँधर्बहु जेते । महि आकाश सुनहु सब तेते ॥
तुव सब सत्य धरम के ज्ञाता । देत नृपति मुहि बर बरदाता ॥
ताके हौ तुम सब मिल साखी । या कहि बहुर नृपति सौं भाखी॥
देवअसुरसंग्रामहि माहीं । देन कह्यउ सो सुमिर इहांहीं ॥
द्वै बर देन कहे ते दीजे । जो माँगहु सो अबहिँ करीजे ॥
इक वर इहहि करहु मम कामै। चौदह सम भेजहु बन रामै ॥
पहिर सुबलकल तपसी जैसैं । दण्डकबन बिच तपहिँ सुऐसैं ॥
दूजौ बर पुनि सुनि यह दीजै । राजतिलक ममसुत को कीजै ॥
जो ये बिय बर अबहिँ न पैहौं । तौ निज प्रान तुरत तजि दैहैं ॥

दोहा ।

हौं देखहुँ जब आजुहीं रामहिं बन कौं जात ।
तबहिं जियौंगी सत्य पुनि निरखि तिहारी बात॥

इति श्रीअयोध्याकांडे एकादशमो सर्गः ॥ ११ ॥

छन्द ।

यों केकयी के दुर्बचन सुनि वज्र जनु नृपउर लग्यौ ।
अति मूरिछित ह्वै घरिक द्वै पुनि कछुक मूर्छा तें जग्यौ ॥
तब करत भौ संशय रुनै मन द्वहहि कै सपनौ भयौ ।
कै चित्तही कौ भ्रम भयौ कै मोह मम प्रानन छयौ ॥

दोहा ।

उठ्यौ सोच कै मनहि मैं लग्यौ आइ धौं भूत ।
यहै बिचारतहूँ तदपि नृप नं लह्यहु सुख सूत ॥

चौपाई ।

लहि पुनि चेत नृपति भौ ऐसैं । बाघिन ढिग मृग व्याकुल जैसैं ॥
विषधर अहि जिमि मंत्रनकीलौ । रुक रहि जात सकल तन ढीलौ ॥
धिक मोकहँ धिक जीवन मेरौ । या बिधि मुर्छित भयहु घनेरौ ॥
ह्वै सचेत पुनि देखी रानी । करत भसम जनु तेजन ठानी ॥
लखि भामिन कहँ नृप तब कह्यऊ । तूं कुलनाशिनि यह कह चह्यऊ ॥
तूं अति क्रूर कसक नहिं तोहै । रामहिं बन पठवनि कहि जोहै ॥
अस अघ इकहु न राघव कीन्हौं । जा हित तू अनुचित ब्रत लीन्हौं ॥
मातु सरिस तुव सेवाकारी । तापर तूं फल देति कहा री ॥
रामहिं कौ अनरथ चित चाही । तो सी कुटिल कहा मै व्याही ॥
मै मतिमूढ़ कहायो चाह्यौ । तुहि गृह राखि सुनाशि बिसाह्यौ
तूं निजकुल की तजि मरजादा । देखी परत अहिन तें जादा ॥
अहि न भखत इक अपनौ जायौ । तूं हित पतिसुत चाहत खायौ ॥
रामहिं सकल सराहत प्रानी । बिनअघतिनहिंतजहुक्यों रानी ॥
कौशिल्याहिं तजहुं तजि राजै । तजहुं सुमित्रहिं सकल समाजै ॥

तजहुँ प्रान धन धाम सम्हारे । तजहुँ न राम दृगन के तारे ॥
रामहि देखि जियत हम ऐसें । निज सिर मनिके बल अहि जैसें॥
रामहिँ जो इक छन न निहारौं। तौ निजप्रान तबहिँ तजिडारौं॥
जल बिन मीन सुधन बिन सम्पा। रहहि कदाच जु बिधि अनुकम्पा
हौं बिन राम न इक छिन रहऊँ। मोहि सपथ साँची यह कहऊँ ॥
तातैं तूं हठ छोड़ अनैसौ । तोहि कियौ चहियति नहि ऐसौ
हौं निज सिर पग परत तिहारे। जाहिँ न राम सु कहु बन भारे॥
होइ जु यह तेरे मनमांहीं । नृप कौ नेह भरत पै नाहीं ॥
तौऽब भरत यह करहिँ रजाई । सेवहिँ राम अनुज प्रभुताई ॥
रामतिलक सुनि जौ अकुलानी । लग्यहु भूत तोकहँ मैं जानी ॥
रघुकुल मैं अनुचित गति ऐसी । कबहुं भई न करत तूं जैसी ॥
करत हुतो तू अहित न मेरौ । सपनिहुं कहु किहुं तो मन फेरौ
तूं यह कहत हुती जु सदाहीं । रामसरिस प्रिय भरत सुनाहीं ॥
तिनहिँ राम कों तूं अब ऐसें । भेजन कहत बनहिँ रिपु जैसें ॥
अति सुकुमार सुराजकुमारा । दण्डकविपिन भयङ्कर भारा ॥
कठिन भूमि तहँ कण्टकभौरे । रामचरन कञ्जहु तें कौंरे ॥
तहँ क्यों राम करहिँगे फेरौ । कसकत उर न कसाइन तेरौ ॥
अधिक भरत तें तुव सिवकाई । करत राम तुहि पीर न आई ॥
रहत हजारन नारिन माहीं । रामकलुष कछु सुनियत नाहीं ॥
कहि प्रियबचन सकल जन मोहैं। सत्य तजत सपनिहुँ नहि जोहैं॥
दै दानहिँ विप्रन सनमानै । परतिय ताहि जननि सम जानै॥
कर सेवन गुरु जननि रिझावैं । धरि धनुषहिँ जीतत रिपु रावै ॥
छोड़ि सकल छल करत मिताई। को गुननिधि अस राम सिवाई॥

पुनि मम प्रानन तैं अति प्यारे । होत न कबहुँ दृगन तैं न्यारे ॥
तिनसौं तोहित बचन अनैसे । तुम बन जाहु कहहु क्यों ऐसे ॥
जु कछु चहहि सो सब तुहि दैहौं। इक रामहिँ नहिँ बिपन पठैहौं॥
करि करुना किन ज्यावत मोकौं। मोहि मरहिँ पुनि का सुख तोकौं
ममजीवन पुनि धरम जु भारी । तूं राखहि तौ रहत हमारी ॥
हा अनरथ यह कहँ ते आयौ । बिन अघ मोह चहत जो खायौ
या कहि भौ नृप बिथित अपारा। तजत दृगन आँसुन की धारा ॥
किय बिलापबहुबिधितिहिठाहीं। अतिहि अनाथ मनुज के ताहीं॥
तापर भरतजननि पुनि कह्यऊ। विषहू तैं कटुबचन जु यहऊ ॥
दै बरदान प्रथम मुहि तैसैं । अब पछतात कहा तुम ऐसैं ॥
सत्यसन्ध धरमज्ञ पुनीता । मति खोवहु यह अपनी गीता॥
जाइ सभा बिच राजन माहीं । सुजस कहा कहिहौं तिहिठाहीं
यहहि तहाँ कहतैं बन ऐहै । कहिबौ झूठ सुमोह प्रियै है ॥
देवअसुरसंग्राम तहांहीं । ज्यावहु मोह भरत की माहीं ॥
ताहि कही बर दैन सुबानी । ते न दिये जब चाहे रानी ॥
या कहि कुलहि कलङ्क लगैहौ । झुठभाषी जगमाह कहैहौ ॥
ताते बात भली यह नाहीं । सुमिरहु सो न कपोतकथाहीं ॥
सिबिनृपकाटि सुबपु निजपानी। दीन्हाहु मास खगहि जगजानी॥
नृप अलर्क विप्रहु के ताईं । दिय लोचन निज तृण की नाईं॥
तजत न सिंधु कबहुँ मरजादा । समुझ यहहि तजि सकलबिषादा
पालहु सत्य धरम निज राखौ । राम विपन जावहिँ यह भाषौ॥
वचन पलटि जौ रामहि दैहौ । राजतिलक तौ यह फल पैहौ ॥
खाय जहर मैं अबहिँ मरूँगी । अजसतिलक तुव भाल भरूँगी ॥

सौंह भरत की खाइ कहौं मैं । राम चलहिँ बन तोष लहौं मैं ॥
या कहि भरतजननि चुप ठानी। तबहिँ नृपति की देह सुखानी ॥
शोकसमुद बिच डूब गयौई । सुनि सपथहि अति कँपत भयौई
हा राघव हा रामपियारे । हौ कित राखहु प्रान हमारे ॥
या कहि छिन्न सुतरु की नाईं । गिरत भयौ नृप बिकल तहांईं ॥
सुधिबुधिरहित नृपति भे ऐसें । मदउनमत्त अबुधजन जैसें ॥
नैसुक चेत नृपति जब लह्यऊ । ह्वै अतिदीन बचन तब-कह्यऊ ॥
तोकों कुमति दई यह कौनै । प्रेत लग्यहु कै पिण्ड सलौनैं ॥
रामहिँ कहत सबहिँ बनमाहीं । यहहि उचरि लजियात जु नाहीं
भरत सहित जो ममहित चाहै। तौ अब चुप रहु यहहि सलाहै ॥
रामहिँ दण्डकविपन गयेहूं । राज न भरत करहिगो कैहूं ॥
जानत भरत धरम की बातैं । आपुहि बिपन बसहिगौ तातैं ॥
आये नृप दिशि देशन ते हैं । ते अब मोह कहा धौं कैहैं ॥
कोऊ मोहि जु कछु बूझैगो । ताकौ ज्याब कछु न अब ह्वैगो ॥
कहहुँ जु कहुं तिय कौसुखचाही। भेजहुं मैं बन राम जु ताही ॥
तौ पहिलैं जो बचन सुनायौ । दैहौं रामहिँ राज सुहायौ ॥
सो अब तैं ह्वै है ममबानी । हँसिहहिँ मोहि तबहिँ सब प्रानी
तियवस नृप मूरख यह ऐसौ । दिय रामहिँ बनबास अनैसौ ॥
रामजननि सौं का पुनि कैहौं । दुखित सुमित्रहिँ का समुझैहौं॥
मम बिसवास सुलछमनमाता । मानहिगी न जनम धर साता ॥
जीवहिगी क्यौं जनककुमारी । रामहिँ चलत बिपति यह भारी॥
हा कित तैं अब यह दुख आयौ। अमित अचानक जात न गायौ
मैं तेरौ कछु अहित न कीन्हौं । बिबिध बिहार न करि सुखदीन्हौं

तब मैं तुहि निज मीच न जानी। ज्यों अहि त्यों तुहि गह्यउ अयानी
राम कहँहुं जो यह सुनि पैहैं । बिन बूझिहु बन कों चलिजैहैं॥
लै जैहैं तबहीं जम मोकौं । ता पीछूं पुनि का सुख तोकौं ॥
कौशिल्या सुत पति बिन क्योंहूं। जीवहि गी न सुमित्रा त्योंहूं ॥
डारि नरक यों सब कै ताईं । तूं रहु इत प्रेतिन की नाईं ॥
मो बिन रामरहित रजधानी । बिनसहिगी यह मैं अब जानी ॥
रामगमन बन बिच अति फीकौ। भावहि भरत हियें जो नीकौ ॥
तौ मम प्रेतक्रिया मति ठानौ । करहिं जु कहुं तौ पाप न दानौ॥
भरतसहित इमि बिधवा ह्वै कैं । कर तूं राज सुकुलक्षय कै कैं ॥
यह दुख मोहि मरहि नहि जैहै। किहि बिधि रामबिपन चल दैहै॥
रथ पर चढ़ि गज चढ़ि चढ़ि हैहूं। जो निकसत पुरमारग ह्वैहूं ॥
क्यों मृदु पगन सुबिपिन सभ्भैहैं। कण्टक लगत दुसह दुख पैहैं ॥
जाहित भोग बनावनवारे । बहुभूषनभूषित सुचि भारे ॥
ते करि बहु बिंजननि तयारी । परसि परसि कंचन की थारी ॥
जाहि जिमावत नितप्रति ऐसैं । सो कटुफल बन भखिहैं कैसैं ॥
जाहित नित सुखसेज सम्हारैं । दासी सकल सुघर सुकुमारैं ॥
सो जब जाइ अवनि पर स्वैहै । क्यों तब ताहि सुनिद्रा ऐहै ॥
जो नित नवपट पहिरत हैगौ । सो किहि बिधि बलकलन धरैगौ
तू जानत सब राम सुभावै । तापर तू बनबसन पठावै ॥
या तोकहँ किन दुर्मति दीन्ही । कहत न कत मोसों मतिहीनी ॥
धिकतुहिधिकतुवपितुधिकमाई। जिन तोसी अतिपापिन जाई ॥
तो सम निजस्वारथरत नारी । श्रवन सुनी नहिं दृगन निहारी॥
कुटिल कसाइन केकयजाई । अबहुँ न तुहि करुना कछु आई॥

जग बिच अब ए अनरथ ह्वै हैं । निज २ तनय जनक तजि दैहैं ॥
जाया छोड़ि पतिन कौ ताईं । करिकरि हठ करिहैं मनभाईं ॥
यों सब दुख में डूबि नसैंगे । उठिहैं धरम सुपाप बसैंगे ॥
हौं तौ सुत लखि तज बिरधाई । होत हुतौ ज्वानै सुख पाई ॥
अब बन जात निरखि सुत प्यारौ । हौं न जियहुँगौ लहि दुखभारौ ॥
राम कढ़हिं यह कहत कुबानी । तौ दुन्तन कौ होत न हानी ॥
ए कुलघातनि केकयजाई । कतर कतर निज देह सुहाई ॥
होमहिं जो करि अगिन घनेरौ । तद्यपि कहन कह्यौ यह तेरौ ॥
अब चाहत मैं मरन तिहारौ । तोहि दरद कछु नहिँ हमारौ ॥
तदपि परहुँगौ पायन तेरे । ह्वै परसन रखु प्रान जु मेरे ॥

दोहा ।

या कहि बिकल उठ्यौ जबहिं पाइ परन के काज ।
हाइ हाइ कहि गिर पर्‌यौ बीचहि दशरथराज ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे द्वादश: सर्ग: ॥ १२ ॥

छन्द ।

या बिधि जु भू पर नृप पर्‌यौ तब केकई पुनि यह कह्यौ ।
ह्वै सत्यसंध कह्यौ जु दैन सु देत नहिँ क्यौं लै रह्यौ ॥
तब कोप करि बोल्यौ नृपति हौं मरहुँगौ तोपर अबै ।
बन जाहिँगे श्रीराम जब तब भोग ए तूँ सुख सबै ॥

दोहा ।

स्वर्गहु मै सुर पूछिहैं तजे प्रान क्यौं राइ ।
तब मै कहिहौं केकई किय अनरथ यह हाइ ॥

चौपाई ।

नृपहिँ करत यौं शोक तहाँई । रवि अथयौ किय उदय जुन्हाई ॥
नभ अविलोकि कह्यहु नृपराई । होय प्रभात न परलै ताई ॥
को अस हित जो निशि गहि राखै। उवहु न अब यह रवि सौं भाखै॥
सुनहिँ न राम हकीकत ऐसी । कुलद्रोहिन तिय भाषत जैसी ॥
यौं करि सोचहु दशरथ राई । तियकौं पुनि यह बिनति सुनाई॥
ह्वै प्रसन्न मोपर तूँ रानी । रामहिँ राखु समुझि मम बानी॥
अब तूँ दै यह राज जु रामैं । ह्वै है जगजस तेरौ यामैं ॥
यौं सुनि तिय दशरथ की बानी। दुखदाइनि पुनि तदपि न मानी॥

दोहा ।

तबहिं कीन्ह नृप दूर सब जे जहँ मंगल गान ।
ह्वै मुरछित पुनि गिर पर्‌यौ लग्यहु मनौ उर बान ॥

इति अयोध्याकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

छन्द ।

भू पर पर्‌यौ लखि नृपति कौं पुनि कैकई बोली तबै ।
प्रथमहिँ प्रतिज्ञा करि कह्यौ जो दैन सो दीजे अबै ॥
नृप नटौ मति सोचहु न कछु निज सत्य पालहु धर्म है ।
इक सत्य के छूटे रहत नहिँ जो कछू सुभकर्म है ॥

दोहा ।

नृप अलर्क पुनि शैव नृप नल नरपति हरिचंद ।
पहुँचे ए सब सत्य सौं स्वर्गहि जहँ सुरवृंद ॥

चौपाई ।

सत्य सदैस ध्रुव धरम न दूजौ । तबहुँ न ताहि अबहिँ यह कूजौ॥
कौशिल्या सुत बनकौ जावैं । अब न अवधिबिच बिलमन पावैं ॥
अबहुँ न जो भेजहुगे रामैं । हौं मरिहौं करि तुहि बदनामैं॥
तब नृप सुनि पुनि तियकी बातैं। बचनबद्ध छुटि सकत न तातैं ॥
भरमत चित मुख सूख गयौई । विकल बिलोकत मनहुँ बिकौई॥
भरि भरि दृग आँसुन की गासैं । पुनि पुनि दीरघ लेत उसासैं ॥
सिथिल शरीर अमित उर ऊबौ। मानहुँ कहर लहर बिच डूबौ ॥
हाइ कहा यह अनरथ भयऊ । याकहिन्नृप पुनि तियसौं कह्यऊ॥
जो हम अगिन समीप तिहारौ। करि करग्रहन जु मंत्र उचारौ ॥
किय बिवाहु या बिधि जो तेरौ। तूँ साजति अति अनरथ मेरौ ॥
सुतजुत तोहि तजी अब यातैं । हौं मरिहहुँ द्रुत होत प्रभातैं ॥
जु अभिषेक हित सामा जोरी । तासौं करहिँ क्रिया सुत मोरी॥
तूँ पुनि भरत जु पुत्र तिहारौ । उत्तर करम करै न हमारौ ॥
कहुं कहा ज्यौं डूबत आवै । को अस जो द्रुत रामहिँ ल्यावै॥
या बिधि कहत प्रभात भयौई । भरतजननि तब बचन कह्यौई ॥
कहत कहा नृप सत्य अँगेजौ । रामहिँ बोल अबहिँ बन भेजौ॥
करहु तिलक भरतहि बुलवाई । होहु उरिन या तजि अकुलाई॥
छूटत ऋण न कबहुं बिन दीन्हें। तरत ऋणी न तपस्यहु कीन्हें ॥
यौं सुनि नृप तियबचन अनैसे । भे बोलत पुनि व्याकुल जैसे ॥
धरमपाँस बिच मैं बिध गौई । अब मम तन सब सिथिल भयौई॥
समुझ परत जिय रहत न कैहूं । चित चाहत रामहिँ लखि लैहूं॥
यौं नृप सोचत होत सबारैं । मुनि बसिष्ट आए नृपद्वारैं ॥

सिष्यन सहित लियै सब सामा । रामतिलक हित अति अभिरामा
देखि सुमंत्रहि बचन सुनाए । कहहु जाय नृप सौं मुनि आए ॥
सुंदर सुबरन कलस सुहाए । गंगासिंधुसलिल भर ल्याए ॥
सु अभिषेक हित सामा जेतौं । बेदविहित हाजिर सब तेतौं ॥
आचारज गुरुजन पुरबासी । सकल सुमंगल मोदप्रकासी ॥
सु अभिषेक हित अबहिँ सुहायौ । दोषरहित सु मुहूरत आयौ ॥
लै रामहिँ नृप बाहिर आवैं । दृग देखत अभिषेक करावैं ॥
यौं सुमंत्र सुनि नृपगृह गयऊ । या बिधि नृपहिँ जगावत भयऊ॥
श्रीमहराज जगहु जगत्राता । हम सब प्रजन सकलसुखदाता॥
भयहु प्रात रवि उदय दिखानौ । प्रफुलित कमल खगन रव ठानौ॥
ज्यौं मातुलि इन्द्रहि के ताँई । बिधिहि जगावत बेद सदाँई ॥
त्यौं हौं तुमहिँ जगावत जागौ । देखहु सबनि सु हित अनुरागौ॥
बिप्रन सहित बशिष्ठ खरे हैं । निजउर अति आनन्द भरे हैं ॥
आये कहन जु कछु सुनि लीजे । रामतिलक हित आयसु दीजे ॥
ज्यौंससिबिननिशि प्रभुबिनसैना। यौं नृप बिन न प्रजनचित चैना॥
या बिधि बचन सुमन्त्र सुनाये । बहुर लखि नृप या बिधि छाये॥
शोकसहित सब हरख दहे हैं । नयन अरुन अति होय रहे हैं ॥
तब सुमंत्र सौं नृप यह कह्यऊ । बचनसरहिँ पुनि सो उर दह्यऊ॥
यौं सुनि बिकल नृपति की बातैं। हटि कछु दूर सुमंत्र तहाँ तैं ॥
निजकर जोरि रह्यौ पुनि ठाढ़ौ । बहुर न बच नृप मुखतैं काढ़ौ ॥
बोली तब कयकेई रानी । रे सुमंत्र सुनि अब ममबानी ॥
रामहिँ राम रटत निशि जागे । सोवन दै नृप आलसपागे ॥
ल्याउ राम कहँ बेग बुलाई । तब सुमंत्रि निज बानि सुनाई॥

बिन नृप के आयुस क्यों जाऊं । भाषि कहा रामहिं लै आऊं ॥
तब नृप तिहि सौं कह्यहु तहांई । तूं रामहिं लै आउ यहांई ॥
तब सुमंत्र चित चैन लहोई । करत बिचार चलत भौ योंई ॥
है कछु खेद नृपति के गातैं । निकसहिंगे बाहिर नहिं तातैं ॥
ह्वाहीं ह्वै सब काज करैंगे । इतहिं रामसिर छत्र धरैंगे ॥

दोहा ।

या बिधि करत बिचार उर नृप कौ आयसु पाइ ।
तँहँ तैं चलि श्रीराम कौ महल बिलोक्यौ आइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

छन्द ।

जहँ बिप्र मुनि श्रीरामगृह में स्वस्तिबाचन कर रहे ।
साधत सबै मिल सुभ महूरत जोतषी अति ऊमहे ॥
जौ रवि उदय अभिषेक की सामा सकल तैयार है ।
दीसि परत नहिं नृपति यौं सब कहत लोग अपार है ॥

दोहा ।

कौन जाइ नृप सौं कहहि सामा सकल तयार ।
सुनि सुमंत्र तिन सबन सौं बोल्यौ बचन उचार ॥

चौपाई ।

हौं लहि आयुस नृप की आजैं । आयहुं रामलिवावन काजैं ॥
अब मैं बहुरि नृपति ढिग जैहौं । तुम सब की यह अरज सुनैहौं ॥
देश दिशन के नृपति दुआरैं । दरसन काज खरे अगवारैं ॥
यों सुमन्त्र कहि उलटि गयोई । जाइ नृपति ढिग कहत भयोई ॥

रवि ससि बरुण कुबेर महेसू । दैंह तुमहिँ जय सुरपति सेसू ॥
भयहु प्रभात रजनि सियरानी । उठहु कृपाल लखहु रजधानी ॥
विप्र मुनीश नृपति पुरबासी । तुव दरसन चाहत सुखरासी ॥
तब सुमंत्र सौं नृप यह कह्यऊ । रामहिँ क्यौं न लिवावत भयऊ ॥
किहि कारन मम बात न मानी । हौं सोवत नहिँ सुन यह बानी ॥
अबहिँ राम कहँ बेग लिआओ । ता पाछैं कछु अरज सुनाओ ॥
तब सुमंत्र हिय हर्ष लह्यौई । जो अज्ञा यह कहि चलि भौई ॥
आइ रामगृह लखत भयौई । मनहुँ रजतिगिरि छबिन छयौई ॥
कठिन कपाट लगे दृढ़ भारे । उघरि रहे खिरकिन के द्वारे ॥
रतनजटित सुबरनमय छाये । सोभित बहु मंदिर मनभाये ॥
धूप सुगंध सकल खुसबोई । फैलो अतर अमन्द समोई ॥
मनिमय दीह दियन की जोतीं । जगर मगर थलथल भल होतीं ॥
दासी दास हजारन ठाढ़े । जोरैं करनि महाछवि बाढ़े ॥
तहँ सुमंत्र रथ पर छबिछायौ । उलँघ प्रथम ड्योढ़ी तब आयौ ॥
मंगलगान करहिँ जहँ दासी । बसनविभूषित भूषित खासी ॥
रथ गज तुरँग नृपन के ठाढ़े । सुभग सु ड्योढ़ी पर सुख बाढ़े ॥
लै बहु रतन नजर के काजे । ठाढ़े नृपति अनेक बिराजै ॥

दोहा ।

ठाढ़ो गज तहँ राम को सुभ सत्रुंजय नाम ।
निरखत सबन सुमंत्र यों चल्यहु जहाँ श्रीराम ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे पंचदशमः सर्गः ॥ १५ ॥

छन्द ।

यों सबनि अवलोकत सुमन्त सुमध्य ड्यौढ़ी तहँ गयौ ।
जहँ नृपन के सुत सावधान तिन्हैं तबहिँ देखत भयौ ॥
सब धरैं आयुध धनुष बान सुजान चौकी दै रहे ।
चल कछुक आगैं लखत भौ बहु वृद्ध जन जित जमहे ॥

दोहा ।

लीन्हे बेंतन की छरी पहिरें बसन रँगीन ।
लखि सुमंत्र कौं ते सबै छरीदार परबीन ॥

चौपाई ।

अति आतुर सनमुख चलिआये। तिनहिँ सुमन्त सुबोल सुनाये ॥
करहु राम सों अरज अबारैं । ठाढ्यौ आय सुमन्त दुबारैं ॥
जाइ तहाँ तिन अरज सुनाई । राम सुमन्तहि लीन्ह बुलाई ॥
तहँ सुमन्त चलि राम निहारे । राजत सेज उपर नृपप्यारे ॥
चन्दनचरचित सुभग शरीरा । मनहु मदन तन धरहिँ सुधीरा॥
विमल बिभूषन अँग अँग सोहै । करती चमर सिया प्रिय जोहै ॥
जाय सुमंत्र प्रनाम करीई । जोर सुकर यह बोलत भौई ॥
हे रघुपति हे राजदुलारे । तुमहि बुलायहु जनक तिहारे ॥
भरतजननि के महलन माहीं । हैं नृप दशरथ चलहु तहाँहीं ॥
यों सुनि राम तबहिँ सीता सों। बोले बचन परम प्रीता सों ॥
नृप अरु भरतजननि ये दोऊ । करिहैं वहहि जु ममहित होऊ॥
ममप्रिय चहत भरत की माई । राखत मोपर प्यार सिवाई ॥
धन जीवन धन भाग हमारे । पितु अरु तिहु मातन कौं प्यारे॥
मिल पितुमात सु प्रेम दियायौ। भेज सुमंत्र जु हमहिँ बुलायौ ॥

हौं पितुचरन बिलोकन काजैं । जैहौं अबहिँ जहाँ नृप राजैं ॥
तुम द्रुत सखिनसहित सुखछावौ। मंगल गीत अभीत गवावौ ॥
या कहि राम तबहिँ चल भेई । बिहँसत मुख सब सुखन छयेई॥
भाषत मंगल बानि सुहाई । भीतर तक संगहिँ सिय आई ॥
राजतिलक करि नृप सुख पावैं। राजसूय पुनि तुमहिँ करावैं ॥
तबहूँ तुमहिँ धरैं मृगछाला । कर बिच मृग कौ शृंग बिशाला॥
याबिधि पुनि लखिहहुँतुमकाजैं। जाहु सुखित जहँ नृपति बिराजैं॥
दस दिगपाल दसौ दिगमाहीं । तुव तन रच्छन करहिँ सदाहीं ॥
यौं सियमुख की मंगलबानी । सुनि निकसे रघुपति सुखदानी॥
तहँ ड्यौढ़ी पर लखन निहारे । जोरैं करन बिनययुत भारे ॥
लै सँग तिनहिँ सुभग छबि छाजैं। आये चलि तिसरे दरवाजैं ॥
हय संयुत लखि रथ रघुराई । चढ़त भये तहँ अति छबि छाई॥
लहि आयसु लछमन पुनि आछैं। लै कर चमर चढ़े तिन पाछैं ॥
निरखि सुरथ झिलमिल कै कौंधैं। को अस जासु न चख चकचौंधैं
रथ-चक दचक मचक धुनि छाई। जनु गरजत घन महि पर आई॥
चलत भये ता रथ के पाछैं । चढ़ि २ हयन गयन भट आछैं ॥
भे जु चलत आगैं भट प्यादे । सायुध मनहु सकल सुर जादे ॥
भे बाजत अति दीह नगारे । बन्दीजनन बिरद उच्चारे ॥
मग मग महल महल पर छाये। बरसावत जनु सुमन सुहाये ॥
जो जहँ जबहिँ बिलोकत रामै। जोरि सुकर तहँ करत प्रनामै ॥
भूषन बसन बिभूषित नारी । चढ़ि निजनिज तहँ अटन अटारी
झँझरिन झरफ झरोखन ह्वैकैं। निरखि रहीं इकटक दृग दैकैं ॥
रामहिँ निरख करहिँ ये बातैं । को बड़ भागिन सुतिय सियातैं॥
जिहिँ निजपति रघुपति से पाये। सकल कलानिधि रूप सुहाये ॥

दोहा ।

या बिधि सुनत तियान के बहु बिध बचनबिनोद ।
चले जात नृपदरस कौं लषन सहित लहि मोद ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

छन्द ।

यों राजमारग लखत रघुपति अगर चन्दन चहचहे. ।
फहरात थल थल धुज पताके ताकि अति आनद लहे ॥
अति उच्च पुर बिच धवलगृह जनु लेत ध्रुवधामनि छुअैं ।
कहुँ झलमलात मनीनमय मन्दिर दिवाकर के उअैं ॥

दोहा ।

चौंरे चौक चबूतरे रतननजटित बजार ।
फूल सु हाटिन मैं फबे फाटिक फरस फुहार ॥

चौपाई ।

झूमत मनिमय बन्दनवारे । चित्रित चित्रनि नगरदुआरे ॥
तिहुलोकन तजि सुन्दरताई । मनहुँ अवधपुर भीतर छाई ॥
मृदु मेवा पकवान मिठाई । बहु बिधि दिखत दुकानन छाई ॥
लेत प्रजन की आसिष नीकी । जीवहु राम रमन जग ती की ॥
पालहु प्रजन सुभाँति सुहाई । सु निज पितामह पितु की नाईं ॥
सकल प्रजा सुख पावहिं जातैं । या बिधि सुनत सबन की बातैं ॥
देखत देवभवन मग जेते । दैकर चलत सुदच्छिन ते ते ॥
निरखि रामछवि दृगन अघावैं । पियत स्वरूप सुधा सुख पावैं ॥
आगिहुँ निकस चलत रघुराई । तदपि न दीठि सकहिँ मुरकाई ॥

रामहिँ लखत प्रजा अनुरागी । यहहि कहत दशरथ बड़भागी ॥
ऐसे सुतहि जु दैन बिचारी । राजतिलक बड़ भाग हमारी ॥
यों निज कानन सुनत बड़ाई । नृप महलन पहुंचे रघुराई ॥
ड्योढ़ी तीन रथहि पर बैठे । भे उलघत पुनि प्यादहिँ पैठे ।
द्वै ड्योढ़िन चल पगनि नवेई । यों महलन भीतर पहुंचेई ॥

दोहा ।

खरे रहे जे बाहरे पुरजन सुभट सुठाम ।
हेरत मग ते सब यहै कब आवहिं कढ़ि राम ॥

इति श्री अयध्याकांडे सप्तदशमः सर्गः ॥ १७ ॥

छन्द ।

इमि जाय देखत भे नृपति कहँ रामचन्द्र तहाँ तबै ।
जनु हहरि सुरतरु गिरि पख्यहु दिखि दीह दिगदन्तिन अबै ॥
निशिहीन चन्दमलीन जनु मनिहीन मनु अहि दीन है ।
यों परषि पितुतन राम सोचत किहिँ कहा धौं कौन है ॥

दोहा ।

लखी केकई नृप निकट कोपित कुरुष अपार ।
मनहुँ काल की किङ्किरिनि बैठी महल मझार ॥

चौपाई ।

जननिजनकलखिइमिइकठामा । जोरि सुकर दुह कीन्ह प्रनामा॥
तब नृप कहि न सक्यहु हे रामा । चिरजीवहु तुम लहहु सुकामा ॥
सक्यहु न देखन उरहि लगायो । पख्यहु मनो रवि राहु सतायो ॥
यों लखि पितहि सुसंशय आनो । आज कहा मुहि लखि अकुलानो

और दिवस कोप्यहु यह कोही । होत हुते परसन लखि मोही ॥
यों लहि सोच प्रनत कर भी सौं । भे बूझत पुनि कयकेई सौं ॥
कारन कवन नृपति दुख पायौ । लखत न बोलत बचन सुहायौ ॥
दीन दुखित लखि पितु के ताईं । मम उर चैन रह्यउ कछु नाईं ॥
जगमह प्रभु परतच्छ पिताही । जनम जुदै पोषत पुनि याही ॥
सो सुत जु कहुं पितहि दुखदाई । तै न गई किन ताको माई ॥
जो न सुपितु कौ आयसु मानै । सो न तरहि क्रतु कोटि जु ठानै॥
सो बड़भाग तनय जगमाहीं । जननि जनक सेवहि जु सदाहीं॥
दृग देखत पितुव्याकुलताई । या दुख मोहि सह्यउ नहिँ जाई॥
होइ परयहु अपराध जु मोसौं । तौ यह अरज करत अब तोसौं॥
छमित कराउ नृपहि समुझाई । तूं ममहितहि सदहिँ करि आई॥
कै नृप उर कछु उपजी आधी । बाधति किधहुं बपुष बढ़िव्याधी॥
सानुज भरत कुशल कै नाहीं । कै कछु दुख रनवासहि माहीं ॥
कै कछु तूं कटुबचन सुनायौ । नृपहु कि कछु अनबोलन ठायौ॥
औरहु कछु दुख हेत जु होई । कहहु जननि तुम मोसौं सोई॥
ताकौ अबहिँ उपाइ कराऊँ । बोलहिँ नृपति तबहिँ सुख पाऊँ॥
या बिधि रामबचन सुनि रानी । निजहित लाग कही यह बानी॥
राम कछु न अपराध तिहारौ । तूं नृप कहँ प्रानन तें प्यारौ ॥
क्रोध न नृपहि न कछु दुखपायौ । धरि इक बात हियहिँ हहरायौ॥
सो कहि सकत न तुमहिँ डराई। या कारन यह आकुलताई ॥
हौंहूं कहि न सकत सो ऐसैं । पूछत राम सहज तुम जैसैं ॥
जु नृप हुकुम सो सिर धरि लैहौं । प्रथम करहु प्रन यह तब कैहौं॥
कह्यहु राम जो पितु अभिलाषी। बात सुकरिहहुं कहु रवि शाखी॥

होइ न सुत पितु आज्ञाकारी । धिक ताकहँ धिकधिकअघधारी॥
हौं जानत सुतधरम जु ऐसें । पितु के बचन करहुं नहिँ कैसें॥
हौं पितुबच सौं बिष पी जाऊँ । परहुँ अगिन बिच कहर मझाऊ
जाया तजहुं तजहुं जननी कौं । भोग तजहुं तज डारहुं जी कौं॥
पितु गुरूपितु नृपपितु हितकारी। ताके बचन सकहुं क्यौं टारी ॥
टारत हुकुम जु नृप अपनै कौ । ताहि लगत अघ महिप-हनैकौ
तातैं नृपउर बात जु होवै । सो तूं भाषु अवहिँ मति गोवै ॥
हौं वह बात न फेर दुरैहौं । सुनत करहुंगो तब सुख पैहौं ॥
या बिधि राम सुबानि सुनाई । ता उर तदपि दया नहि आई॥
साँच यहहि जो जगत उचारै । स्वारथरत नहिँ दोष निहारै ॥
यों रामहिँ जब लीन्ह दृढ़ाई । बोली तबहिँ भरत की माई ॥
कुलिशकठिन कटुबचन उचारे । नृपतन प्रान जरे पर जारे ॥
देवअसुरसंग्राम कहानी । भरतजननि सौं सकल बखानी॥
तहँ जिमि द्वै वर नृप सौं पाये । ते रामहिँ बहु बार सुनाये ॥
वहुर कह्यउ अब द्वै वर तैसे । हौं मागे नृप सौं सुनि ऐसे ॥
राज भरत कहँ देहु सभा मै । दण्डकबनहिँ पठावहु रामै ॥
कीन्ह जु पन तुम सत्य सुभाऊ । तौ आजुहि दण्डक वन जाऊ॥
सेवहु चौदह बरस अरन्नै । धारि जटा वलकल तन धन्नै ॥
तजहु राज तुम भरत करैगौ । तब नृप के चित चैन परैगौ ॥
ऐसे बचन नृपति सकुचाई । कहि न सकत तुम सौं रघुराई॥
मान सुपितुबच पितु के ताहीं । करहु सत्यवकता जगमाहीं ॥
यों गाजहु गज बहुतैं भारौ । बचन बान रचि रामहिँ मारौ॥
तदपि न राम कछू दुख पायौ । निज हित जानि हियें हरषायौ॥

दोहा ।

उचटि रामतन तें जु सर लग्यौ दशरथहिं जाइ ।
पर्यौ मूरछित ह्वै नृपति मुख तें कढ़ी न हाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

छन्द ।

यों केकई के कटुबचन सुनि राम बोलत भे तबै ।
सुनु मातु मैं बन जाहुँगो धरि जटा बलकलही अबै ॥
लखि परत मुहि पुर तें कढ़त इक पन्थ काज अनेक हैं ।
सुख तोहि पुनि नृप की हुकुम बहु तीरथन अभिषेक हैं ॥

दोहा ।

बसिहौं बन लखिहौं मुनिन भखिहौं फल दल मूल ।
भरत राज करिहैं अवधि मोहि न कछु अब सूल ॥

चौपाई ।

सबबिधिबिधिमुहिकियबड़भागी। जु पितु मातु आज्ञा प्रिय लागी॥
सुत कौ धरम यहहि श्रुति भाषै। तन मन बच पितु कौ प्रन राखै॥
जाहुं न बनहिं समुझि गुन एते। तौ मुहि मूढ़ कहहिं जन जेते ॥
भोगहिं राज भरत सुख मोही । हौं बन जाहुं यहहि सुख तोही॥
दीन्है दुहुन नृपति सुख दोऊ । भूपति सरिस न दाता कोऊ ॥
है मुहि इक संशय अबताईं । नृपति बचन क्यों बोलत नाईं॥
है कछु मम अपराध बड़ौई । ता सोचहिं नृप जात गड़ौई ॥
मम सकोच बस कै नृप आजू । दैन कहत नहिं भरतहि राजू ॥

मोकहँ भरत जियहु तें प्यारे । ता हित लगहिँ जु प्रान हमारे॥
तौ तृणवत प्रानन दै डारौं । तजहुं सियहि जननी न निहारौं
मुहि दून सबहुन तें बड़ नाहीं। दीबौ राज भरत के ताहीं ॥
तापर कहहिँ नृपति के ऐसें । राज भरत कहँ देहुँ न कैसें ॥
तातें तूं अब नृपहि उठाई । करु खातिर सबि विधि मनभाई
बेगि बुलाव भरत के ताईं । हौं बन जात बिलम कछु नाईं॥
या विधि राम जु बानि बखानी। सो सुनि तुषित भई तब रानी॥
अहि पय पी बिष उगलत जैसें। भरतजननि पुनि बोली तैसें ॥
हौं लैहहुं भरतहि बुलवाई । जाहु बनहिँ तुम तजि दुचिताई
तुव सकोचवस नृप मुख तेंहीं । कहि न सकत बन जाहु अबेहीं॥
तूं न अटकु अब नृप बानी पै । हौं जु कहत सो दृढ़ करु जी पै
जब लगि तूं न निकस बन जैहै। तब लगि नृप उठिहै न अन्हैहै॥
पीहैं नीर न भोजन करिहैं । निजमुख बचन न कछु उच्चरिहैं॥
या बिधि बचन जु कयकेई के । भे घातक दशरथनृप-जी के ॥
सुनत तबहिँ नृप गयउ सुखाई। दृगजलधार नदी सी आई ॥
निन्दति नृप आपुहि कहँ आपू। सहि न सकत दुखदुसह सँतापू॥
सुनि यह राम अबहिँ बन जाहीं। धिक ममप्रान जु निकसत नाहीं
या कहि नृप पुनि मुरछित भोई। बेसुधि बिकल बिहाल गिरोई॥
नृपहि उठाय तबहिँ रघुराई । भरतजननि कहँ बानि सुनाई॥
मोहि न लोभ सुधन धरनी को। रहन चहत नहि घरन घरीको
दुसहि न मोह बिजन बनवासू। तापर नृपआयसु अब नासू ॥
तामह यहहि सलाह जु तेरी । सब विधि बात सुधी अब मेरी॥
लहि नृपहुकुम तजहुं निजप्राना। राज तजहुं किन दुरत निधाना

कहहिँ न कहहिँ नृपतिनिजबानी। जैहौं बन तुव बचन प्रमानी ॥
समुझावहुं कौशिल्यहि जौलौं । बोधहु सियहि छमा करु तौलौं
लै कर सीष जननि सों आजें । हौं जैहहुं पुर तजि बन काजें ॥
नृप सेवन तूं भरत समेतू । कीजो यहै धरम सुखहेतू ॥
या बिधि रामबचन सुनि राजा। कहि न सक्यहु कछुशोकहिसाजा
अन्त सुप्रेम गयउ नहि गोयौ । रामहिँ राम उचरि नृप रोयौ॥
तबहिँ राम कर पितु परिकरमा। भे निकसत तहँ तैं धरि धरमा॥
फैली खबर तबहिँ पुर माहीं । राजतिलक अब रामहिँ नाहीं॥
आजुहिँ राम बिपिन को जैहैं । अब न अवध महँ इक दिन रैहैं॥
राम सुहृद रामहिँ कि पाछैं । रोवत चलत भये दुख काछैं ॥
लखन सरोसहि संग चलेई । राम सबहिँ समुझावत भेई ॥
तजि सुख राज चले अभिरामै । छोड़त राजसिरी नहिँ रामै ॥
जदपिबिपिनहितकीन्हनिकासी। तदपि न चितबिच तनिकउदासी
चमर छत्र सब तबहिँ तजेई । यों जननीगृह कौं चलि भेई ॥

दोहा ।

मधुर बचनि कहि सबनि कौं बोध करत जुत नेह ।
लखन सहित पहुँचे तबहिं कौशिल्या के गेह ॥

इत्ययोध्याकांडे एकोनविंशतिः सर्गः ॥ १९ ॥

छन्द ।

या बिधि कढ़त श्रीराम कौं तजि राज दशरथ गेह ते ।
चाले निकस जनु प्रान नृप रानीन के निज देह ते ॥
रोवत सकल रनवास तहँ यों सुमिरि गुनहित संयुते ।
निज मातु कौशिल्या सरिस हम सबन कौं मानत हुते ॥

दोहा ।

समाधान ही करत हैं करै सु कोऊ क्रोध ।
ऐसे सुत श्रीराम कौ तजत भूप हतबोध ॥

चौपाई ।

यौं निन्दहिं नृपकहँ सब रानी । रोवहिं उर सिर धुनहिं भ्रमानी
हा राघव हा राम हमारे । यौं कहि शोकसबद उच्चारे ॥
सो सुनि नृप सेजहि भौ लीना । कहत न कछु दीरघ दुख दीना
तब लगि राम जननिगृहद्वारैं । आये पगनि चलत छबि धारैं ॥
द्वारपाल तहँ के सब बूढ़े । निरखि रामकहँ कहत अगूढ़े ॥
चिरजीवहु जय लहहु सदाहीं । यौं आसिष भे देत तहांहीं ॥
उलँघि प्रथम ड्यौढ़ी रघुबीरा । बृद्ध बेदबित लखि द्विज धीरा ॥
प्रनति करत भे तिहिं द्विज काजैं । यौं उलँघे दूसर दरवाजैं ॥
जाइ जु तीसर ड्यौढ़ी द्वारैं । भे पहुँचत सँग लछमन धारैं ॥
तहँ रच्छन हित हीं बहु दासी । लखि रामहिं ते सुमति प्रकासी॥
तिन बच कौशिल्याहिं सुनाये । रामचन्द्र पितुगृह तें आये ॥
रामजननि तहँ सुतहित काजैं । पहिरि पटम्बर मंगल साजैं ॥
होमत ही हबि अगिन प्रकासैं । धरि दधि दूध सुघृत फल पासैं॥
पूरन कलश कमल की माला । बहु मोदक बहु सुमन बिसाला॥
या बिधि होम करत निज माई। भे देखत चलि तहँ रघुराई ॥
परसि जननिपग कीन्ह प्रनामै । दिय आसिष कौशिल्यहु रामै ॥
सिरहि सूँघि उर लीन्ह लगाई । चूम्यहु मुख सुख तन न समाई॥
अँग अँग पुलकि नयन भरिआये । बिगत प्रान मानहु पुनि पाये ॥
यौं लखिहरखिजननितबकह्यऊ । देत तुमहिं नृप तिलक उमह्यऊ॥

तातैं बैठि सुआसन माहीं । कछु भोजन करि लेहु यहांहीं ॥
करि भोजन तब नृप ढिग जैयौ । राजतिलक लहि पुनि द्रुत ऐयौ॥
यौं सुनि जननिबचन सियनाहू । बोलत भयउ पसारि सु बाहू ॥
सुन ममजननि न जानत तू है । तो हित भयौ भयहु अब हू है॥
जनकसुता लछमन के काजैं । रह्यहु न ठौर कहँहुं सुख साजैं॥
दीन्ह पिता मुहिँ बनठकुराई । हौं जैहहुं तहँ अबहिँ सिहाई ॥
तातैं यह न नृपासन चाहौं । कुशआसन बन बसत बिछाहौं ॥
अब द्रुत भोजनहूं न करूँगौ । बनफल मूलन उदर भरूँगौ ॥
धारि जटा बलकल बनमाहीं । हौं बसिहहुँ चौदह सम ताहीं॥
यौबराज नृप भरतहिँ दीन्हौ । हमहिँ बिदा दण्डक कहँ कीन्हौ॥
तातैं तुव दरशनहित आयौ । लै:सिष चहहुँ बनहिँ अब जायौ॥
यौं सुनि रामबदन की बानी । जननि बिमोहबिबस बिललानी॥
भुरसि गिरी लहि सोच अपारू । जनु कमलिनि पर पर्‌यहु तुसारू॥
काँपत तन मन धरत न धीरा । ह्वै बेसुधि कहि सकत न पीरा॥
परि महि पर तहँ लोटत ऐसैं । जल बिन मीन बिकल थल जैसैं॥
राम तबहिँ निज जननि उठाई। पलकनि पोंछि जु रजतन छाई॥
यौं नृपमहिषि मरू करि चेती । कासौं कहहि बिथा उर जेती ॥
यह सोचत मनहीमन रानी । कुटिल दैवगति जात न जानी ॥
चाहत सुखहि दुसहदुख ठायौ । छाय सुग्रह जनु पावक लायौ ॥
जो राखहुं सुत कहँ गहि बाहीं। तौ पतिप्रन घट उचित सुनाहीं ॥
रामहिँ जान जु बन कहँ दैहूं । तौ रहि सकत न जीवन कैहूं ॥
त्यागि सुपति क्यौं सुत सँग जाऊँ। सुत तजि क्यौं पति सँग सुखपाऊँ॥
यह संकट कटि सकत न मेरौ । सबबिधिभयहुजुअबबिधि डेरौ ॥

मोहि न मग दूत एकहु सूझै । सोचहि सोच सहमि मन बूझै ॥
या बिधि करत बिबिध मनसूबा। सुतनु भयहु जनु सूखी दूबा ॥
लेत उसासनि भरि भरि आखैं । गदगद गल कछु बनत न भाखैं॥
पुनि कछु उर धरि धीरजताई । बोली रामजननि अकुलाई ॥
सुनहु राम मम प्रानपियारे । तुम सुत इक सरबस्व हमारे ॥
लेतो तूं न जनम अस जो तौ । मोकहँ यह न दुसहदुख होतौ॥
बाँझहि होत इकहि दुख येही । मेरे सुत न भयहु धर देही ॥
हौं पति तें न कबहुँ सुख पायौ । तो मुख देखि सु मन समुझायौ॥
अब क्यों सहिहहुँ ह्वै पटरानी । बेधत मरम सवति की बानी ॥
सवतिसुहाग बढ़त पतिनेह्न । बड़ बनितान दुसह दुख येह्न ॥
ते सब दुख तुव मुख लखि ओड़े। सो तुम जात बनहिँ सुख छोड़े॥
भयहु सु निस्चय मरन हमारौ । लखि न सकहुँ बनवास तिहारौ
कयकेईकृत गरब अनैसौ । चौदह सम सहिहहुँ क्यौं तैसौ॥
करि बहु ब्रत उपबासबिधाना । तुम्हरो जनम लख्यहु जग जाना॥
सो तुम जात बनहिँ इहि भाँती। येतहु पर मम फटत न छाती ॥
तोर गमन सुनि सुनु रघुराई । मीचु मरी जनु मोपहँ आई ॥
जानि परत जममन्दिर माहीं । मोकहँ ठौर रह्यउ तहँ नाहीं ॥
सुतहित कृत जप तप तजि जेती। भई सु सब ऊसर की खेती ॥

दोहा ।

लहत धेनु चित चैन ज्यौं निज बछराहिं के पास ।
त्यौं सुत चलि तुव सङ्गहीं हौं करिहौं बनबास ॥

इति श्री अयोध्याकांडे विंशति: सर्ग: ॥ २० ॥

छन्द ।

यौं करत कौशिल्यहि बिलाप बिलोकि लछमन तहँ तबै ।
बोलत भये मोकहँ रुचत नहिँ बात यह ऐसी अबै ॥
जो राम बनिताबस नृपति के बचन सुनि तजि राज कौं ।
पुनि जाहिँ बन यह उचित है नहिँ छोड़ि सुजन समाज कौं ॥

दोहा ।

कह्यौ न कह कहिहै न कह जो तियहाथ बिकान ।
कामबिबस अस नृपति कौ बकिबौ कछु न प्रमान ॥

चौपाई ।

किय न राम अपराध अकाजा । जा कारन बन पठवत राजा ॥
राम धरमरत शीलनिधाना । अजितओजजुतगतिअभिमाना ॥
निरपराध रामहिँ गहि गाढै । को अस प्रबल जु पुर तैं काढै ॥
आई नृपहिँ बहुर लरिकाई । रामहिँ कहत जु बन कहँ जाई ॥
तातैं राम सुनहु ममबानी । राज करहु राखहु रजधानी ॥
हौं तुव दास लखन अब ऐसो । जमहूँ कौं न गनत तिनुकै सो ॥
सो मैं धरहि धनुष बरबाना । तुम्हरे निकट खर्‍यहु खुनसाना ॥
कछु बिपरीत जु करत निहारौं । तौ अब अवध बिजन करिडारौं ॥
आवहिँ भ्रात जु कयकेई कौ । लै दलमातुल भरत बली को ॥
नाम युधाजित ताकहँ मारौं । तुमहिँ राजआसन बैठारौं ॥
उचित छमा नहिँ छत्रिन काजैं । निज भुजबल भोगहिँ सुखसाजैं ॥
दिय तियकहँ जो राज तिहारौ । तौ नृप यह बड़ सत्रु हमारौ ॥
तातैं बाँधि नृपहि अब लैहौं । निज भुजबल बन्दीगृह दैहौं ॥
पूजनीय जो करहि अकाजै । है ताकहँ बड़ दण्ड सुलाजै ॥

अस नृपमहँ बल कवन सु भारी । भरतहिँ राज जु दैन बिचारी ॥
बाँधि बैर हम तुमसौं ऐसैं　　। दैहै राज भरत कहँ कैसैं　　॥

दोहा ।

पद्माकर किहि सिंह कौं कियौ राजअभिषेक　　।
अपने बल मृगराज भौ हनि गजराज अनेक　　॥

चौपाई ।

या बिधि कहि लछमन पुनिबोले । सुनहु जननि ममवचन अडोले ॥
हौं इक राम सु हित के ताँईं　। जो तूँ कहु सो करहुँ इहाँईं ॥
जो न करहुँ तौ नरकहि जाऊँ । परसि धनुष करि सौंह सुनाऊँ ॥
पावक परहुँ गिरहुँ गिरहू तैं　। करहुँ रामहित युध जमहू तैं ॥
सोखहुँ सिंधु सुमेर उखारौं　　। नभकौंमहि महि नभकरिडारौं॥
तूँ लखु मोर पराक्रम माता　　। भरत सहित नृपकौ को त्राता॥
बाँधिनृपहिँ भरतहिँ गहिल्याऊँ । सु बल राम कहँ राज कराऊँ ॥
रामजननि सुनि लछमनबानी । सुत सौं कह्यहु बचन अकुलानी॥
सुनहु चुकै लछमन की भाषा　। करहु सु अब जो कछु अभिलाषा॥
पापबचन सौं कयकेई के　　　। तजहु जु राज सुनहु पति सी कै॥
तौ मम बचननि तजहु न मोकौं । सेवा मोर धरम बड़ तोकौं　॥
रहि गृह करु सेवन माता कौ । पैहौ अति उत्तम फल ताकौ ॥
ज्यौं पितुबचन जननिबच त्यौंहीं । माननीय श्रुति भाषत यौंहीं ॥
पतित जु पितु तौ ताहि तजीजे । त्याग जननिकौं कबहुँ न कीजे॥
धारि गरभ निज पोषतही है　। यातैं पितु तैं बढ़ जननी है　॥
तुम बिन राम न जीवन मेरौ　। तजहुँ सबनिसँग तजहुँ न तेरौ॥
छोड़ि जु तुम मोकहँ बन जैहौ । तौ फिर मोहिँ जियत नहिँ पैहौ॥

यों सुनि मातुबचन रघुराई । बोले धरम तज्यौ नहिँ जाई ॥
प्रभु पितुबचन उलँघिबे माहीं । है मोकहँ सामर्थ सु नाहीं ॥
जो ऋषिमुनि धरमज्ञ बड़ेई । पितुबच गोबध करत भयेई ॥
सगरतनय अपनैं कुल भेई । पितुबच मान पताल गयेई ॥
कपिलशाप लहि तहँहिँ जरेई । साठ सहस नहि फेर फिरेई ॥
परशुराम पुनि पितुबचही सौं । जननि हनी जु परमप्रिय जी सौं॥
धरमराह यह बड़न दिखाई । मोसौं सो न तजौ अब जाई ॥
यौं कहि राम बचन जननी सौं। बोले बहुर सु लछमनही सौं ॥
सुनहु अनुज अस परम सनेहू । है तुम्हरौ हम पर बिधि येहू ॥
प्रबल पराक्रम जो यह तेरौ । हौं जानत सब तूँ हित मेरौ ॥
जननिदुखितलखिजोकछुकह्याऊ। कहिबैं उचित यहै तुहि अह्याऊ॥
तूँ धरमज्ञ सकल श्रुतिज्ञाता । तो सम प्रबल न बिश्वबिधाता ॥
तो-बल चहहुँ करहुँ सो भाई । तज्यहु न जात धरमपथ राई ॥
पितुबच मातुबचन द्विजबाचा । सुनत करहुँ यह प्रन मम साँचा॥
समुझि सकल श्रुति धरमप्रसंगा। करि न सकहुँ पितुआयसु भंगा
तातैं निज पितुबचन प्रमानै । मोहि अबहिँ दण्डकबन जानै ॥
अतिषर छचिन कौ जु सुभाऊ । ताहि तजहुँ ध्रुव धरम रखाऊ ॥
यौं कहि राम बचन भ्राता सौं। बोले जोरि सुकर माता सौं ॥
है अब सपथ हमारी तोकौं । जाहुँ बनहिँ दै आयसु मोकौं ॥
करु आसिष कहु मंगल बानी । हौं बन बसि आवहुँ रजधानी ॥
अब न शोक कछु कर ममसैया। सेउ सपतिहिँ जु धरमरखैया ॥
तोहि मोहि पुनि लखन सुमित्रै। सीतहुँ कौं यह धरम पवित्रै ॥
नृपआयसु मानब हितकारी । इहि उहि लोक सुजस पुनि भारी

यौं सुनि जननि तनय की बानी। होइ दुखित बोली बिललानी ॥
ज्यों पितु त्यों जननी जगमाहीं। ताके बचन जु मानत नाहीं ॥
तौ अब तुमहिं रुचहि सो करऊ। जीवत मोहिं न इत परिहरऊ॥
कौशिल्या कहि या बिधि बानी। सहमि सोक के समुद समानी॥
लखनसहितलखिजननिसुखानी। बोले राम तबहिं मृदुबानो ॥
बिपति परेहिं धरि धीरज जीजे । क्लेशडरनि नहिं धरम तजीजे ॥
हे लछमन दृढ़ भगति घनेरी । है मो पर परिपूरन तेरी ॥
तूं जानत पुनि मोर सुभावै । मोहिं धरममारग इक भावै ॥
सो तूं मिल अब ममजननी सों। भाषे बचन अहित हितही सों॥
धरम अरथ कामादिक जे हैं । ते सब फल इक धर्महिं के हैं॥
तातैं धरम न तजियत भाई । धरमबिरुद्ध अरथ दुखदाई ॥
गुरु पितु बृद्ध जु अपनौ राजा । जु कछु कहहि भ्रम काज अकाजा
वह कारज अबिचारित कीजे । ताहि न फिर दुसराइ सुनीजे ॥
तातैं जु कछु नृपति की बानी । सो हम मनबचकाय प्रमानी ॥
मोहिं न मम माता के ताईं । नृप सिवाइ दूसर गति नाईं ॥
नृप जीवत मम सँग मम माई । चलन कहत यह उचित न भाई॥
अब तुम कहहु सुमंगल बातैं । होइ न बिघन हमहिं बन जातैं॥
आयसु देहु जु बन करि आऊँ । तुम सौं बहुरि मिलहुँ सुख पाऊँ॥
जीवन कितक जु धरम तजीजे। लोभबिबस ह्वै अजस न लीजे।

दोहा ।

या बिधि बन के गमन कौ करि निश्चय मन माँह ।
करत भये तहँ जननि की परिकरमा सियनाँह ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकविंशति सर्गः ॥ २१ ॥

छन्द।

पुनि राम लक्षमन कौ सरोष बिलोकि यौं बोले तबै ।
तुम तजहु भ्रात बिषाद सब नहि क्रोध कौ अवसर अबै ॥
मोकौं भयौ जु न तिलक ताकौ दुख न कछु उर पर धरौ ।
बन जात मुहि आनन्द अति यातैं तुमहुँ सुख संचरौ ॥

दोहा।

जा तैं सङ्कहिं केकई करौं न तैसी बात ।
मेरे बचन प्रमान करि सुखी होहु तुम भ्रात ॥

चौपाई।

भरतजननि जु न कछु दुख पावै। मोकहँ वहहि सु करतब भावै ॥
सपनिहुं अहितचहहुँ नहि ताकौ। हौं सेवक अस मातु पिता कौ ॥
कहुँ कयकेई के मनमाहीं । उपजहि भ्रम कछु ऐसौ नाहीं ॥
राजलोभ रामहिँ अस आयौ । गयह न बन जो मोर पठायौ ॥
लहि सन्ताप जु यौं कछु कैहै । वह सँताप मोकहँ दुख दैहै ॥
तातैं बनहिँ अबहिँ मैं जैहौं । धारि जटा बलकल सुख पैहौं ॥
भरतजननि तबहीं हरषैहै । निजसुत कहँ अभिषेक करैहै ॥
पठवत मोहि जु दण्डकमाहीं । दोष सुभरतजननि कौ नाहीं ॥
होनहार नहि मिटत मिटाई । यह निश्चयकर जानहु भाई ॥
कयकेई कहँ कुमति जु ऐसी । कबहुँ हती न भई अब जैसी ॥
भाषतही मम गुनन सदाहीं । चहतजु ही अति हित मनमाहीं ॥
अधिक जु निजसुत तैं मुहिँजानै । वहहिसुपठवति बनहिँनिदानै ॥
होनहार यह ऐसी आई । का हू यामहि दोष न भाई ॥
राजतिलक कहँ कहँ बनवासू । या बिधि होतब कीर बिलासू ॥

होत न कछु निज उरहि जु कूटैं । बिन भोगहिँ होतब नहिँ छूटैं ॥
कवन ठौर किहिदिनबिधिकौनै । कोज।नहिँ किहि कहँ का हौनै॥
हानि लाभ सुख दुख जयहारी । जस होतव तस होत निहारी ॥
रवि शसि ग्रास करत नभ राहू। लहत सुबन्धन अहि गजनाहू ॥
करि करि तप ऋषिराज बड़ेई । छोड़ि नियम मनसिज बस भेई॥
हमहुँ दसा निज सुमुख सुनावैं । पावत राज पछुहु बन जावैं ॥
जहँ देखहुँ तहँ कारन हौनी । करत जु विष अमृतहु की हौनी
कोटिहु जतन मिटत नहिँ हौनी। क्योंहू ह्वै न सकत अनहौनी ॥
चिन्ता विष हर यहहि इलाजू । होतब सौ नहिँ पैयत बाजू ॥
हौं तौ यहहि समुझि मन बोधौं। तुमहुँ लखन या विधि उरसोधौं
तजहु क्रोध परिहरि सब शोकै । को अस प्रबल जो होतब रोकै॥

दोहा ।

नृप कौ दोष न दोष कछु कयकेई कौ मान ।
जु हम चले बन कौ सु यह हौनहार बलवान ।

इति श्री अयोध्याकांडे द्वाविंशतिः सर्गः ॥ २२ ॥

छन्द ।

यौं सुनि वचन रघुबीर के धर धीर वच लछमन कह्यौ ।
जो तुम कहत सो सत्य सब यामै न कछु हम सुख लह्यौ ॥
तुम से समर्थन कौं उचित नहिँ दैव को बल मानिबौ।
बलहीन दीनन हित कह्यौ यह होनहार प्रमानिबौ ॥

दोहा ।

भरतमातु अरु नृपति कौ देखि दृगनि छल छन्द ।
सो तुम होनी मानि कै जात बनहिं रघुनन्द ॥

चौपाई ।

देन कह्यहु प्रथमहिं तुमहीं कौं । नृप जु तिलक जाहिर सबहीकौं
सो अब ह्वै तिय के वस राजा । देत भरत कहँ राजसमाजा ॥
लखन अछत अनरथ यह ऐसौ । क्यों ह्वै सकत कहत नृप जैसौ॥
करहु छमा तुम जो रघुराई । तौ मैं लेहुँ नृपहिँ समुझाई ॥
को नृप तैं बड़ शत्रु हमारौ । देत जु तुम कहँ देशनिकारौ ॥
बिषयविबस नृप को छल बानी । मानहिँ तुम बिन को अस प्रानी
तुम जो यह इक बचन उचारौ । जो होतब सो टरहि न टारौ ॥
तौ अब जु हम कहत सो हौनौ। यहहि मान बैठहु ह्वै मौनी ॥
चलहु न चलहु रहहु इत ऐसे । लै जैहै बन होतब कैसे ॥
हौं इक लषन सु तुव ढिग ठाढ़ौ। को अब चहत तुमहिँ बन काढ़ौ॥
ताहि हनहुँ धरि धूर मिलाऊँ । निजभुजबल यमसदन पठाऊँ॥
राजतिलक तुम कहँ अब देहौं । सब के लखत तबहिँ सुख पैहौं।
त्रिभुवन संग दशहु दिगपाला । चढ़ि आवहिँ करि कोप कराला
तौ सबहुन कौं मारि चलाऊँ । इकछत राज तुमहिँ करवाऊँ ॥
वृद्ध नृपति की गनति कहा है । जो बनितावस होइ रहा है ॥
कहत जु तुम कहँ बनहिँ पठायौ। जैहै वहहि बिपिन दुखछायौ ॥
कीन्ह दुहुन मिल यह अभिलाषा। भोगहिँ राज भरत सुख साषा॥
होउन की यह आशा ऐसी । आजुहि भसम करहुँ लहि जैसी॥
मम-बल दैव न कुपथ चलैगौ । हौं न दिखहुँ जो तुमहिँ छलैगौ

करहु राज बहु बरषन ताईं । पुनि करिहैं तुव तनय रजाईं ॥
तब तुम राजऋषिन की नाहीं । कीजहु बास बिपिन के माहीं॥
जौ यह बिनति हमारी मानौ । तौ अभिषेक अबहिं निज ठानौ॥
ऐहै बिघन करन जो कोऊ । पैहै प्रानबिरह अब सोऊ ॥
नहिं सोभा रथ सुभुज हमारे । भूषन धनु असि बानन भारे ॥
ए सब शत्रु हनन के काजैं । हौं धारत निजबल छबिछाजैं ॥
असि गहि सीस रिपुन के काटौं। भुजबल प्रबल सुरेस उचाटौं ॥
धनुषधरहिं लखि मोहि जु आवै। को अस पुरुष जो सबल दिखावै
एक बान तजि त्रिभुवन छेदौं । बहु सर-बाह इकहि पुनि भेदौं॥
आजुहिं अब मम अस्त्रन केरौ । लखि परिहै परभाव घनेरौ ॥
सुनहु राम ए सुभुज तिहारे । ह्वैहहिं चन्दनचरचित भारे ॥
धरि भूषन बहु दान करैंगे । पालि सुजन सुख प्रजनि भरैंगे॥
तातैं अब आयसु मुहि दीजै । जु कछु होइ करतव सु करीजै ॥
हौं इक तुव चरनन कौ चेरौ । जु कछु कहहु सो करहु सबेरौ॥

दोहा ।

लखनबचन सुनि राम यौं भे बोलत तिहिं ठाँइ ।
पितु के बचनन कैसहूँ मोसौं उलँघे जाँइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रयोविंशतिः सर्गः ॥ २३ ॥

छन्द ।

यौं रामचन्द्रहिं पितुबचन में समुझि दृढ़ जननी तबै ।
रोवति बिकल बोलत भई सुन तनय मोकहँ दुख सबै ॥
देख्यौ न दुख सपनेहुँ तुम सो बसहुगे क्यौं बिपिन मै ।
पुनि भषहुगे फल मूल किहि बिधि पूजनीय जु न्टपन मै ॥

दोहा ।

म जहाँ तुम रहहुगे वहै बिपन सुभ देश ।
 बिन मो कहँ शोक यह देहै दुसह कलेश ॥

चौपाई ।

ु तजत नहिँ बछरहिँ जैसैं । हौं न तजहुँ तुव सँग अब तैसैं॥
सुनि जननिबचन रघुराई । भे बोलत सुनु ममवच माई ॥
ान उचित इक पति की सेवा। पति प्रभु पति तीरथ पति देवा॥
 जु कहुँ दारुन दुख नाहू । तौ तिय ताहि गनहि सुखलाहू॥
तितजिहिँ तिय को को नाता। जेठ जनक सुत मातु न भ्राता॥
िवहिँ निशिदिन निजस्वामी। देत तिनहिँ सुभ गति खगगामी
पितजहिँ निजपतिहि न नारी। होइ जु अन्ध बधिर अघकारी ॥
र नपुंसक बालक बूढ़ौ । कोढ़ी कूर कुटिल मतिमूढ़ौ ॥
िहीन पुनि पतित जुवारी । दुखदायक तस्कर व्यभिचारी ॥
नकब्यहु नहिँ निजपति तैसौ। वेद कहत तिय सुधरम ऐसौ ॥
सेवन तजि ब्रत उपवासू । करहि जु तिय तौ नरकनिवासू॥
 मान जननि मत मेरौ । नृपहि संग सब बिधि भल तेरौ॥
ारमज्ञ भरत मम भ्राता । सेवहिगौ तोकहँ तजि माता ॥
वियोग नृप अतिअकुलैहै । तो बिन कौन ताहिँ समुझैहै ॥
हु द्विज पूजहु सब देवा । निशिदिन करहु नृपतिकीसेवा॥
 आगमन प्रतीछहु आछैं । यों सब सुख पावहुगी पाछैं ॥
शल्या सुनि सुतबच ऐसे । बोली बचन सरलहिय तैसे ॥
त सकहुँ कहि तुम बन जाऊ। जु हित होइ सो करहु सिहाऊ॥

होइ सुमंगल सुभग तिहारी । तो सम मोहि न दूसर प्यारी ॥
जब बन करि आवत देखौंगी । तुमहिँ तबहिँ सुभदिन लेखौंगी॥

दोहा ।

यौं कहि कौशिल्या जननि किय मङ्गल उच्चार ।
दीबे कौ आसिष बिबिध करत भई सु बिचार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुर्विंशतिः सर्गः ॥ २४ ॥

छन्द ।

करि आचमन मंगल बचन बोली सुकौशिल्या भलैं ।
हे राम करि बनबास बेगि सुआइयौ मम सुभ थलैं ॥
पाले जु तू ध्रुव धर्म ते मग चलत तुवरच्छा करैं ।
जो किए नित सन्ध्या नियम ते नित्य तुव बाधा हरैं ॥

दोहा ।

दीन्हे विश्वामित्र के जे आयुध बहु मंत्र ।
ते सब तुव रक्षा करैं योग यज्ञ जप यंत्र ॥

चौपाई ।

सुपितु-मातु-गुरुजन-सिवकाई । आनद करहिँ तुमहिँ रघुराई ॥
समिध कुसा द्विज परबत देवा । पालहिँ तुमहिँ समुद नद रेवा॥
सिंह सरप खग मृग बनचारी । होंहि तुमहिँ सुखदायक भारी॥
लोकपाल गनदेवत जेते । रहहिँ तुमहिँ सम दच्छिन तेते ॥
रितु संवत दिन रात मुहूरत । तुम कौं रहहिँ सदाँ शुभ पूरत ॥
सुम्रिति पुरान निगम ऋषि साती। अवनि अकाश नखत ग्रह बाती॥
निशिचर असुर पिशाच गयन्दा। वृक बानर बन करहिँ अनन्दा॥

हि पराक्रम सिद्ध सदाहीं । पावहु सुख दुख सपन्यहुँ नाहीं॥
शिल्या करि या बिधि कूजा। कीन्हि सकल देवन की पूजा ॥
न विप्रन की बोल समाजैं । होम करायहु सुतहित काजैं ॥
ाग स्वस्तिबाचन करवायौ । दीन्हो धन बिप्रनि मनभायौ ॥
र सन्तुष्ट जु सुरगन आछैं । आसिषबचन कहै ता पाछैं ॥
हनत हुव मंगल जोऊ । सुरराजहिँ वह तुम कहँ होऊ ॥
ात हरत सुतहित बिनताहीं। किय मंगल वह तुमहिँ सदाहीं॥
ातमथन करि इन्द्र सुहायौ । हनन हेतु असुरन पर धायौ ॥
जु अदित मंगल उच्चारौ । सो नित करहिँ सहाय तिहारौ॥
द फिरत बामन कहँ जोऊ। भौ मंगल तुम कहँ वह होऊ ॥
हिँ चलत रघुपति बन काजैं। और सकल सुर मंगल साजैं ॥
कहि पढ़ि मंत्रहि इक गोली। दिय रक्षनहित पुनि यह बोली॥
हु राम मिलहु उर लाई । सूँघहि सिर मुख चूमहि माई ॥

दोहा ।

ाचन्द्र तब जननि के पग पर कीन्ह प्रनाम ।
आसिष आवत भये बैदेही के धाम ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचविंशतिः सर्गः ॥ २५ ॥

छन्द ।

यों आइ सीताके सदन रघुराज पहुँचत भे तबै ।
पति राजतिलक बिलोकिवै सिय हरषसंयुत ही तबै ॥
तहँ दीनमुख लखि राम कौं अति महिसुता कंपत ठई ।
लखि सीयमुख रघुवंशमनि की मति अमित व्याकुल भई ॥

दोहा ।

लखि रघुपति की सो दशा सिय बोली बिललाइ ।
कहा भयौ जु न राज कौ आये तिलक दिवाइ ॥

चौपाई ।

पुष्य नखत नृपतिलक तिहारौ । क्यों न भयहु किहिबिघनबिचारौ
छत्र न चमर न पँचरँग पंखा । बजत न दुन्दभि शंख असंखा ॥
बन्दीजन न बिरद बिरदावैं । शुभ अभिषेक न बिप्रहु छावैं ॥
देखहु करत न नजरि प्रजाहू । संग न गज रथ तुरँग उछाहू ॥
सिंहासन नहिँ नहिँ सुख वैसौ । भयहु कहा सुख मै दुख ऐसौ ॥
सुनि सियबच बोले रघुराई । जु कछु कथा सो सकल सुनाई॥
पितुबच मान अबहिँ बन जैहौं । चौदह बरस बिति पुनि ऐहौं ॥
आयहु तोहिँ मिलन के हेतू । करिहैं राज भरत कुलकेतू ॥
मम गुन भरत समीप न कहियो । कौशिल्यहिँ सेवत नित रहियो ॥
प्रातहिँ उठि नति नृप की कीजो । भूपतियन के पाँइ परीजो ॥
भरत शत्रुघन एक समाना । समुझि हियहिँ करियो सनमाना
नृपसेवहि सुख लहियतु भारौ । नाहीं तौ दुख दखल अपारौ ॥
जु कछु भरत कौ आयसु होऊ । मनवचकरम सँचरिये सोऊ ॥

दोहा ।

हौं पितुबानि प्रमान कर करन चल्यौ बनबास ।
तूँ धरि धीरज रहु इतहिं मम आवन की आस ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षष्टविंशतिः सर्गः ॥ २६ ॥

छन्द।

यों सुनि वचन निज नाथ के सियवचन बोली रोस मैं।
तुम से समर्थन कौं उचित नहिँ यों कहब ऐसे समै ॥
पितु मातु बेटी सुत बहू निज पुन्य सो आनद लहै ।
पति के सुपुन्यन सों लहत सुख नारि इक यह श्रुति कहै ॥

दोहा।

नक न जननी बंधु सुत सुखद न सखीसमाह ।
हे लोकहु परलोकहू नारिन कौं गति नाह ॥

चौपाई।

तुम्हरे आगे जु चलहुँगी । कुस कण्टक निजपगनि दलहुँगी
कोमल पद धरि तुम स्वामी। वन विचरहु इमि ममअनुगामी
ां मुहि निज सँग करि लीजे। बरजत हौं न गमन बन कीजे॥
बिन सुख सुरलोकहु नाहीं। मोहिँ सुखद इक तुवपदछाहीं॥
निजनककृत अज्ञा एही । पतिसेवन कीजहु वैदेही ॥
ां हौं तुव सँग न तजौंगी । पितुगृह सम वन बिषम भजौंगी
समरथ त्रिभुवन पालैं कौं । क्यौं बरजत मुहि बन चालैं कौं॥
दल मूल सुभग भखि लैहौं। तुमहिँ न दुख दूषन कछु दैहौं॥
परवत निर्झर नद नारे । हौं लखिहहुँ प्रभु संग तिहारे ॥
विधि बितहिँ जु बर्ष हजारौ। तौ नहिँ कछु स्वर्गहि सुखभारौ॥
अब नाथ हमहिँ तजि जैहौ। तौ फिर मोहि जियति नहिँ पैहौ॥

पद।

तिहारे संगही बन जैहौं। पुनि पुनि प्रभु सौं कहत जानकी
अवध मै रैहौं। जो न जाहुँ तौ पितु बिदेह कौं का फिर

बदन दिखैहौं ॥
अपनै जियत भूमि जननी कौं कुल कलङ्क न लगैहौं ॥
पलकनि धूर झारि तरवन की बिमल नीर लै ध्वैहौं ।
प्यासिहुँ अनप्यासिहुँ चरनोदक भरि अंजुलिन अचैहौं ॥
पल फल फूल मूल साकादिक रचि पचि बेस बनैहौं ।
प्रथम जिमाइ जोरि कर दोऊ बहुरि प्रसादी पैहौं ॥
दिन अथवत पुनि परनकुटी मैं किसलय-सेज बिछैहौं ।
चरन पलोटि स्वाइ सनमुख ह्वै पगन लाग सुख लैहौं ॥
बड़े भोर उठि तुम ते पहिलैं जल झारी भर लैहौं ।
आठहु याम रैन दिन छिन छिन सेवा-चोर न ह्वैहौं ॥
चौदह दिन समान याही विधि चौदह बरस बितैहौं ।
पदमाकर फिर बरस पन्द्रहें नाथ साथही ऐहौं ॥ ४ ॥

दोहा।

यौं सुनि सीता के बचन बोले राजकुमार ।
क्यौं तोकहँ बन लै चलहुँ तहँ दारुन दुखदार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तविंशतिः सर्गः ॥ २७ ॥

छन्द ।

तब कहत सिय सौं राम यौं बन मैं दुसहदुख भूरि हैं ।
गिरि गुहह मैं गज सिंह गर्जत रहे नाद सुपूरि हैं ॥
छूटे फिरत मदमत्त गज लखि नारि नर उठि धावहीं ।
नद नदिन उतरत मक्कर मच्छ बिलोकि जन धरि खावहीं ॥

दोहा ।

ये कंटक सूल से बनमग छए अपार ।
ताहिं मझावत चालिबौ क्यों ह्वै सकत तुम्हार ॥

चौपाई ।

कोमल अति चरन तिहारे । गिर गह्वर कङ्कर अनियारे ॥
वल्कल बसन असन फलमूला । भूमिसयन सबिबिधि प्रतिकूला॥
नाहर वृक बन्दर बहु भालू । करत नाद जनु गरजत कालू ॥
कपट कोटि कर निशिचर धावैं। नरहिँ लखत तुरतहिँ धरिखावैं॥
अजगर व्याल बिहँग बिकराला। आतप कबहुँ कबहुँ पुनि पाला॥
जौ तोहिँ जु तहँ छलि लैहै । तौ मोकहँ बड़ अपजस ह्वैहै ॥
उपवास करब बन माहीं । तूँ सपनिहुँ दुख जानत नाहीं॥
कहुँ काल कराल अन्हैबौ । निजकर तोरि फलन कौ खैबौ॥
पितर अतिथिन की पूजा । बन बसि ब्रत यह और न दूजा॥
पियास सदहिँ सहिबो है । मोह लोभ क्रोधहिँ दहिबो है ॥
र रहब तुव अति कठिनाई। बिपिन बिपति बहु जात न गाई॥
बचन मम जनकदुलारी । घरहिँ रहहु बन बिच दुख भारी॥

दोहा ।

गुरसासु-पग सेइवौ अति हित आयसु मोर ।
बुझि हियै सिय रहहु घर सबहिं भाँत भल तोर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टविंशतिः सर्गः ॥ २८ ॥

छन्द ।

यों सुनि बचन पिय के तबहिँ सिय के नयन असुआन सों ।

भरि भे बिलोकत राम के कहि सकत नहिँ कछु बानि सों॥
पुनि रोकि लोचनबारि बरबस धीर धरि महिनन्दनी ।
बोलत भई रघुनाथ सों मृदुबानि पतिमतिफन्दिनी ॥

दोहा ।

त्रिभुवनपालक प्रानपति रघुपति राजिवनैन ।
तुम सिवाय मम जीव कौं कहुँ दूसरि गति है न ॥

चौपाई ।

मोहि जु तुम सिष सुमुख सुनाई। सो सुनि सबहुन के मनभाई ॥
करहुँ कहा रहि सकत न प्राना। तुम्हरे बिरह दुसहदुख नाना ॥
तुम जु मोहि बनबिपति सुनाई। तुम्हरे संग सुसब सुखदाई ॥
बाघ बराह बिपिनचर जेते । तुमहिँ देखि डरिहैं सब तेते ॥
तुम ढिग रहत सकल सुख मोहै। तहँ मुहि छलहि प्रबल अस को है
पति के बिरह दुसहदुख जैसौ । होत तियनि नर कहँ नहिँ तैसौ
हौं जु हुती जब पितुग्रह माहीं। आयौ तब यक बिप्र तहाहीं ॥
शुभ सामुद्रिकजाननवारो । मोहि निरखि तिहिबचन उचारो
यह कछु दिन निजपतिसँगलागी। बिपिननिवास करिहिअनुरागी ।
सत्य होहु वह द्विज की बानी । तातैं मुहि न तजहु धनुपानी ॥
पढ़त बिप्रबर बेदनमाहीं । तियनतजहिपतिसँग जिमिछाहीं
करि यह लोक सुपति सिवकाई। मरिहुँ न तजहि सँगहि जरजाई॥
तौ वह पति परलोकहु माहीं । ताहिँ मिलत कछु संशय नाहीं॥
पति बन जाइ करहिँ तप भारी। यह न उचित घर रहहि जु नारी
कहहुँ कहा बहु तुम सौं स्वामी। तुम समुझत सब अन्तरजामी ॥
या कहि जनकसुता पुनि रोई । तुम बिन नाथ हमर नहिँ कोई॥

दोहा ।

करत भए तब सीय कौ संबोधन रघुवीर ।
तदपि न सो मानत भई समुझि बिरह की पीर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनत्रिंशतिः सर्गः ॥ २९ ॥

छन्द ।

लखि प्रेम पति कौ सीय पुनि कछु रोस कर यौं बच कहे ।
मम पितु जनक नररूप तिय तुमकौं सुयह जानत न हे ॥
तब मोहि दीन्ही ब्याह जो तहँ अति महाबल जानि कैं ।
तुम लै चलत नहिँ संग मुहि डर बनचरन कौ मानि कैं ॥

दोहा ।

उचित नाथ तुम कौं न यह तजत मोहिं पुर माहिं ।
घर तरुनी पति बिपन मैं यह न भली कछु राहिं ॥

चौपाई ।

कोटि करहु सँग हौं न तजौंगी । तजि भरतहिँ भरतहि न भजौंगी
सत्यवान नृप सँग सावित्री । बनहिँ गई जिमि परम पवित्री॥
त्यों चलिहहुँ बन संग तिहारे । तुम इक जीवनप्रान हमारे ॥
तुम्हरे सँग तप तपिहहुँ आछैं । सुख भोगहु भोगहुँ तुम पाछैं ॥
तुम्हरे सँग मग मनु मखतूला । फूल सरिस बनकण्टकसूला ॥
धूमहु धूर कपूर समाना । बलकल बसन सुमखमल नाना॥
रवि शशि सम पुनि घाम जुन्हाई। परबत महल बिपिन सुखदाई॥
कङ्कर कठिन कमलदल जैसैं । टन कुश सयन मृदुल पर ऐसैं॥
शिखरशिला जनु गिलमगलीचा । दण्डक बिपिन मनहुँ सु बगीचा

पत्र मूल फल भषन पियूषा । कडुवा कठरस मनहुँ मठूषा ॥
पवन प्रचण्ड मनहुँ खसपंखा । परिजन सम खग मृगहु असंखा॥
मोकहँ सुख सँग नाथ तिहारे । तनिक दुख न पैहँहुँ बनभारे ॥
सुखसेवन करिहहुँ वनमाहीं । झारि चरन रजकरन सदाँहीं ॥
धोइ चरन चरनोदक लैहौं । श्रमसीकर करि पवन सिरैहौं ॥
पगनि पलोट जु मग हरखाई । हरिहँहुँ हरख सुनहुँ रघुराई ॥
एतेहु पर मुहिँ सँग जु न लैहौ। मोहिँ जियत तुम क्यौं बन जैहौ॥
तुम्हरे लखत अबहिँ बिष पीहौं। करत सौंह छिन एक न जीहौं ॥
या कहि सिय पियपायन लागी। रोई कछु करुना-दुख-पागी ॥
बचन बियोगबिकल वैदेही । तनमन की कछु खबरि न जेही॥
सूखि अधर बदन कुम्हिलाना । छोड़न चहत मनहुँ तन प्राना ॥
यौं लखि दुसहि दसा सियकेरी। भे बोलत रघुपति मुख हेरी ॥
करहु न सोच चलहु बन काजैं । जनकनृपतिनंदिनि सुख साजैं ॥
तो बिन मुहिँ सुख स्वर्गहुँ नाहीं। दुख न संग विचरत बनमाहीं ॥
मोहिँ न भय कहुँ काहू तें है । परमपतिव्रत ब्रतव्रति तें है ॥
मुहिँ देखत तुहिँ तात अयारी । पैहै खगनि न जनकदुलारी ॥
मैं तुव मन समुझन के लाने । घरहिँ रहहु ए वचन बखाने ॥
ताकौ तजहु बिषाद पियारी । हौं न तजहुँ तुहि दृढ़ब्रतधारी ॥
नृपबच मानि बनहिँ चलनौ है। पितुआयस न कबहुँ टलनौ है ॥
परगट देव जनक जननी है । जिनहिँ सेइ सिधि होत धनी है॥
इनहिँ त्यागि जो देवन टोहै । ता समान जग मूरख को है ॥
करि सेवन निज मातपिताकौ। जिन न और दूसर ब्रत ताकौ॥
देव दनुज नर गँधरब जेते । ब्रम्हलोक पहुँचे सब तेते ॥

तातैं निज पितुआयस जो है । बीसबिसिहुँ करनै वह मोहै ॥
को तुव सम तिय जनकदुलारी। निजकुल-उचित जु बात बिचारी॥
अब न विलम कछु करहु तयारी। चलहु बनहिँ ममसँग सुखभारी॥
द्विजन भिखारिन भोजन देहू । पूजहु मुनि गन सहित सनेहू ॥
वाहन बसन विभूषन जेते । दै डारहु बिप्रन सब तेते ॥

दोहा।

ता पाछैं परिचारिकनि सेवक-जनन बुलाइ ।
समाधान करि देहु कछु पुनि बन चलहु सिहाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

छन्द।

इमि रामसिय सम्बाद सुनि तहँ लखन बहु व्याकुल भये।
तन तजत कंप न पुलिक पूरन सुद्दग आसुनहीं छये ॥
अति दीन जल बिन मीन जिमि पुनि धीरि धर सिर नाइ कैं॥
कर जोरि श्रीरघुनाथ सों बोले बचन मन पाइ कैं॥

दोहा।

जु तुम चले सिय सहित बन हौं न रहँहुँगो धाम।
तुम आगे लै धनुष सर प्रथम चलहुँगो राम ॥

चौपाई।

यों सुनि लखनबचन रघुबीरा । बोले धरमधुरन्धर धीरा ॥
सुनहु भ्रात ममबच हितवारो । तूँ इक मुहि प्रानन तैं प्यारो ।
मेरे तुमहिँ सखा तुम भ्राता । तुमहिँ बंधु तुम सब सुखदाता॥
तुमहिँ जो मैं कहुँ सँग लै जैहों। तौ न जियत कौशिल्यहि पैहों॥

क्योंहू फिर न सुमित्रा जीहै । हमहुँ तुमहुँ सिय बिन बिष पीहै॥
कामुक नृप बस कयकेई के । भे दुखदायक अब सबही के ॥
भाइ भरत पुर-अवधि-रजाई । केवल सेवहिंगौ निज माई ॥
मम मातन की खबर न लैहैं । जननिबिबस दारुन दुख देहैं ॥
तातैं सुनहु सिखापन मेरौ । हौं जानत लछमन मन तेरौ ॥
मो बिन तोहि कहँहुँ कल नाहीं। मम हित रहहु तदपि घरमाहीं ॥
बिपति परें धीरज धरि जीजे । जनिनजनकगुरु- सेवन कीजे ॥
यहैसमुझिनिजजननिजिआवौ । बृद्धनृपतिसेवन ठिक ठाओ ॥
घर न भरत सत्रुघन न भ्राता । मोहि चलत पुनि को पुरत्राता ॥
मो बिन गुरु पितु मात प्रजाहू । हौंहहिं सकल बिकल दुखदाहू॥
कीजहु तुम तिन सब कौ बोधू । हौ सब लायक बिगतबिरोधू ॥
जाकि राज प्रजा दुख पावै । सो न कबहुँ नृप सद्‌गति पावै ॥
यहहि समुझ निवसहु घरमाहीं । सेवहु जननिजनकपदछाहीं ॥
पालहु प्रजन द्विजन सनमानी । यों लछमन यह मम सिखमानी ॥
ए सुनि बचन लखन धरि धीरा । बोले बचन सुनहु रघुबीरा ॥
दीन्ह जु मोह सिखापन स्वामी । कहहुं कहा तुम अंतरजामी ॥
तुम्हरे तेज भरत डरिहैगौ । जननी कौ सेवन करिहै गौ ॥
सकल प्रजा अनुचर जन जेते । धरि धरमहिं पालहिगौ तेते ॥
जो कहुँ भरत कुमतिबस ह्वैके। करिहैं राज सबन दुख दैके ॥
तौ मैं लखन सुमित्रानंदन । करिहौं भरत भुजन कौ कंदन ॥
कोऊ करहि जु भरत सहाया । ताहिँ हनहु तहँ परहरि दाया ॥
कौशिल्यहिँ तब राज करैहौं । मित्रन सुख सत्रुन दुख दैहौं ॥
यह न सोच कछु निज उरकीजे। राम कृपानिधि मुहि सँग लीजे॥

लै धनुबान कुदाल कुठारा । ल्यावहुंगौ फल मूल अपारा ॥
सीयसहित बन बिहरहु स्वामी । हौं सेवक तुम्हरौ अनुगामी ॥
बिहरत सोवत जगत तिहारी । दै चौकी करिहहुँ रखवारी ॥
नाथ बिपिन घर लछमन चेरौ । तुमहिँ न कछु बड़ अपजस मेरौ ॥
तातैं हौं न रहँहुं घर कैहूँ । तुमहि छोड़ि अजसहि क्यौं लैहूं ॥
तुमबिन मोहिँ न स्वर्गहु चहिए। तुवपद लखहु दुखहु सुखलहिए ॥
बन बिचरत करिहहुं सिवकाई । हा हा मुहि न तजहु रघुराई ॥
या कहि चरन गहे पुनि गाढ़े । दुसह शोक सागर के बाढ़े ॥
तबहिँ राम लछमनहिँ उठायौ । पौंछि दृगन निजउरहिँ लगायौ ॥
रघुपतिलख्यहु खलनमुख ऐसो । अथवत अरक कमल घन जैसौ ॥
तन धन सदन सनेह न जाकैं । केवल प्रभुपदपंकज ताकैं ॥
यौं लखि लखनदसा रघुराई । बोले बचन चलहु सँग भाई ॥
लै आवहु मम आयुध आछैं । लेहु सीख सब सौंता पाछैं ॥
मख मैं बरुन सुअस्त्र दिए हैं । भूप बिदेहहि जनक लिए हैं ॥
ते मुहि दायज मै तिन्ह दीन्हैं । ह्वै प्रसन्न ते हम सब लीन्हैं ॥
ते सुजज्ञ मुनि के गृह माहीं । आयुध सकल धरे इकठाहीं ॥
द्वै अभेद बखतर छबि छाए । द्वै तरकस अक्षय मनभाये ॥
धनुष दोइ पुनि द्वै तरवारैं । ते आयुध लै आवहु धारैं ॥
मुनि बसिष्ट बर नाम सुजग्यो । तिनहिँ लिखैं आयहु जुग्रुतग्यो ॥

दोहा ।

मुनि सुजज्ञ के सिष्य जे ते सब ल्याओ जाइ ।
हौं अबहीं धन आपुनौ दैहौं द्विजन बुलाय ॥

इति अयोध्याकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

छन्द ।

यौं मुनि बचन रघुबीर के लघु बीर हिय हरषित भए ।
लहि प्रान से लछमन तबै जु सुजग्य के मन्दिर गए ॥
तहँ अग्निहोत्र बिशाल शाला सु मुनि कौं बंदन कियौ ।
तुमकौं बुलायहु राम या कहि सकल शस्त्रन कौं लियौ ॥

दोहा ।

करि सुजग्य संध्या करम आए जहँ रघुनाथ ।
मुनिहिं राम सीता सहित उठि नायौ पग माथ ॥

चौपाई ।

अति सनमानि मुनिहिँ बैठाए । रतनकड़ा कुण्डल पहिराए ॥
हीरहार कंठी भुजभूषन । दै बोले मुनि सौं कुलपूषन ॥
देत जु सिय तुम्हरी पतनी कों । रतनविभूषन लेहु सु ती कौं ॥
करकंकन केयूर नयूनी । मुकुतहार किंकिनि चुनि चूनी ॥
सुभग सीस मनिनूपुर लेहू । पुनि सीतहिँ सुभ आसिष देहू ॥
रतनजटित सैय्या यह लीजे । शत्रुंजय गज ऊपर चढ़ीजे ॥
लेहु दछिना सुवरन-ढेरी । करहु कृपा यह विनती मेरी ॥
तब सुयज्ञ सुभ दान सुलीन्हौं । राम सियहिँ पुनि आसिष दीन्हौं
पुनिप्रभुकह्यहु लखनसों जावहु । मुनिअगस्तिकौंशिकहिँ लियावहु
तिन सिर करहुँ रतन अभिषेकू । दै हजार धेनुन सविवेकू ॥
जे द्विज नित जननीहि असीसैं । तैतरीय साखायुत दीसैं ॥
तिनहिँ देहु रथ वसन सुदासी । बहु भूषन कंचन की रासी ॥
सचिव समंत्रादिक पुनि जेते । दै धन बसन सतोषहु तेते ॥

जे द्विज कठसाखा पढ़ि ऐसे । धरहिँ दण्डवत संयुत तैसे ॥
तिनहिँ बुलाय जु सहित सनेहू। ऊँट असी भरि रतननि देहू ॥
तंदुल भरि वृष एक हजारा । पुनि है सत भर मूंग सिँघारा ॥
इक हजार गोधन पय काजैं । देहु तिनहिँ लछमन तुम आजैं॥
कौशिल्या ढिग बिप्र हजारा । ब्रह्मचरज ब्रत धरहिँ कुमारा ॥
तिनहिँ देहु व्याहन के काजैं । इक इक सहस मुहर सुख साजैं॥
यों सुनि लखन सकल द्विज आने। ताही बिधि बिधिवत सनमाने॥
बहुरि राम निज अनुचर गाढ़े । भे देखत रोवत सब ठाढ़े ॥
दै तिन कहँ बहु धन समुझाये। मृदुल मनोहर बचन सुनाये ॥
तुम हमरी बहु सेवन कीन्हौ । तुमहिँ न हम कबहूँ कछु दीन्हौ
अब तुम सब यह समय बिचारौ। तजहु न मम महलन कौ द्वारौ॥
सूनौ रहहि न लछमनगेहू । देत तुमहिँ घर-भार सुएहू ॥
जबलगि हमआवहिँबन करिकैं। तबलगि तुम इत रहहु सम्हरिकैं
या कहि राम सुकोष बुलाये । धन मँगाइ कर रास लुटाये ॥
वृद्ध तरुन बालक जन जोऊ । धन तैं बिमुख रह्यहु नहिँ कोऊ॥
त्रिजट नाम इक तहँ द्विज दीना। गरगगोत पुनि दरबबिहीना ॥
बड़ परवार कुटुम गृहमाहीं । तिन हित बेदि सुकन्दु सुठाहीं॥
सकल कुटुम पालति भे ऐसैं । बोली युवति सुपति सौं तैसैं ॥
तूँ अति वृद्ध तनय सब बारे । तजि कुदार सुनि बचन हमारे ॥
मिलहु जाय अबहीं तुम रामै । वे दैहहिँ तुव बहु धन धामै ॥
यों सुनि त्रिजट तरुनि की बानी। चलत भयहु अति अचरज मानी
फाटे बसन सदन सुख नाहीं । पहुँचौ द्विज चलि राम तहाँहीं॥
भृगुमुनि सम तपतेजनिधाना । कंपत सीस कर लकुट सठाना॥

डयौढ़ी पाँच उलँघि ढिग आयौ। रामहिँ लखि तब बचन सुनायौ॥
हे रघुपति ममओर निहारौ । हौं अति बिरध कुटम घर भारौ
बहुत तनय तहँ तरुनी जाया । करहुँ कहा नहिँ छूटति माया ॥
दारिदविबस निकसि बन जाऊँ। साक मूल फल दल लै आऊँ ॥
यों पोषहुँ निजकुटम घनेरौ । अब आयहु तौसर पन मेरौ ॥
यों सुनि त्रिजटबचन रघुराई । कछु परिहसि यह बानि सुनाई॥
लखहु बिप्र तुम ए बहु गाईं । बच्छनसहित बिभूषनछाईं ॥
फैंकहु तुम निज लकुट भमाई। भुजबल परहि जहाँ लगि जाई॥
तुम तितनी गायन गनि लेहू । यामैं करहु न कछु सन्देहू ॥
यों सुनि रामबचन द्विज बूढ़ौ । बाँधि सुपट कटि भुजबल गूढ़ौ॥
लीन्ह लकुट गहि सुकर मझारैं। फेंक्यौ परयहु सुसरजू पारैं ॥
देखि सबन मिल अचरज खायौ। राम तबहिँ द्विज निजउर लायौ
पुनि परि पाय त्रिजट बैठाये । जोरि सुकर ए वचन सुनाये ॥
हौं तुव तेज तकन कै ताईं । लकुट फिकायहु सठ कौ नाईं ॥
छमियहु यह ममकृति परिहासू। हौ तुम गुरु हम तुम्हरे दासू ॥
पुनि रघुपति तब तेतीं गाईं । द्विज आश्रमहिँ सकल पहुँचाईं॥
बहुरि बसन मनि बहु धन दीन्हैं। अति सन्तुष्ट त्रिजट द्विज कीन्हैं॥
ह्वै प्रसन्न तब तहँ द्विजईसा । देत भयहु रामहिँ सुअसीसा ॥

दोहा ।

दानसिरोमनि राम इमि दै धन करि सनमान ।
द्विज प्रोहित गुरु सेवकनि किय संतुष्ट समान ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्वात्रिंशतिः सर्गः ॥ ३२ ॥

छन्द।

यौं धन लुटाय सुभिच्छुकनि को राम दशरथ मिलन कौं ।
भे चलत सिय लछमन सहित पदचर मझावत गलिन कौं ॥
तब नगर के नरनारि सब चढ़ि चढ़ि अटनि देखत भये ।
रोवहिँ सबै उर सीस धुनि कर मीजि दारुन दुख छये ॥

दोहा।

भे भाषत सब परसपर लखि लछमन सिय राम ।
देख सक्यहु नाहि अवध कौं अति आनँद बिधि बाम ॥

चौपाई।

जिन रघुपति सँग दल चतुरंगा। चलत हुत्यौ इन गलिन अभंगा॥
ते अब लखहु चले पदचारी । संग लखन पुनि सिय सुकुमारी॥
छोड़ि सकल सुख रस बिष जैसैं। समुझि धरम ध्रुव चलि भे यैसैं॥
सिरपर छत्र न पायन पनहीं । सत्यसुमिरि दुख सुख सम गनहीं॥
जा सियकौ मुख कमल समाना। देखत हे न कबहुँ खग नाना॥
सो सिय जात लखहु मगमाहीं। यातैं अब कछु बड़ दुख नाहीं॥
जियत पिशाचिन इक कयकेई। लागी नृपहि हनन के बेई ॥
तातैं नृप अस सुत के ताँईं । बनहिँ पठावत रिपु की नाँईं॥
कयकेइहि इमि सब मिलि दूखैं। शोक अगिनझारन झपि सूखैं॥
इहिँ दोषिनि दुरमति इमिठाटी। उलहत आनँद बेलि उपाटी ॥
रघुकुल बिमल कमल बनमाहीं। हठिनि परी इमि हिम की नाईं॥
नारिचरित हरिहरहु न जानैं । नरमतिकितिक जु कछुअनुमानैं
कहँहिँ कछू करतब कछु ठानै । बिषसम अमृत अमृतबिषमानै॥
हे कयकेइहिँ राम पियारे । किहिकारन बन करन निकारे॥

समुझी परत न तियमति ऐसी । कीन्हि कुटिल कयकेई जैसी ॥
कवन बात जल्पहिँ न सुरापी । भषहिँ कहा नहि वायस पापी ॥
अस को जाहिँ न काल सँघारै । कवनकरम जु न तियकरि पारै॥
सत्य कहत सब वेद पुराना । नारिन की मति प्रलयनिदाना॥
यह डाइन अब अवध बिगारी । काढ़े राम जगतहितकारी ॥
रघुपतिदुख सब दुखित प्रजा है । दीनमलिनमुखअिगतिविभा है॥
लगत न कहुँ पुर लखहु बुहारी । जल न भरत पुनि कहुँ नरनारी॥
जरत न चूल्ह करत नहिँ पाकू । होत न कहुँ तपजप मख ताकू॥
पियत न पय उर लगि सुतवारे । हय गय गो वृष चरत न चारे ॥
रोवत पर बिन मनहुँ पखेरू । जो जहँ लखहु सु दुखित घनेरू॥
यौं पीड़ित अब यह रजधानी । भोगहि इक कयकेई रानी ॥
हम सब मिलि रघुपति सँग जैहैं। रामरहित पुर हम तजि दैहैं ॥
होहिँ नगर वन वन पुर ह्वैहैं । सीयसहित रघुपति जहँ रैहैं ॥

दोहा ।

यौं वच सुनत प्रजान के नृपगृह पहुँचे जाइ ।
बोले तबहिं सुमंत्र सौं सीतापति रघुराय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रयस्त्रिंशतिः सर्गः ॥ ३३ ॥

छन्द ।

अब हे सुमंत्र कहौ नृपति सौं राम ड्योढ़ी पर खरे ।
सुन सचिव तबहीं दुखित दशरथ सौं वचन इमि उच्चरे ॥
हे राज तुव सुत रामचन्द्र लुटाय धन द्विजगनन कौं ।
सिष लै सुमित्रन सौं चहत अब रावरे दरसनन कौं ॥

दोहा ।

तब बोले नृप सचिव सौं ल्याउ सकल रानीन ।
तियनसहित लखिहौं सु सुत राम जु धरमधुरीन ॥

चौपाई ।

तब सुमंत्र नृपआयस पाई । ल्यायहु सब रानीन बुलाई ।
साढे तीन सतक नृपरानी । आईं तबहिँ कही नृप बानी ।
अब रामहिँ तुम सचिव बुलाओ । राखितिनहिँ ममप्रान बचाओ ॥
जाय सचिव तब रामहिँ ल्यायौ । देखि नृपति तबहीं उठि धायौ ॥
करि अभिलाष लगैहहुँ छाती । तजिहौंसुतहिँ न कौनहुँ भाँती ॥
यह बिचार करि धावत माँहीं । परेहु सु मुरछित ह्वै तिहिठाँहीं ॥
सीय लखन अरु राम तहाँहीं । नृपहिँ उठावत भे गहि बाँहीं ॥
हाइ हाइ हाहा कहि बानी । रोईं तबहिँ सकल नृपरानी ॥
करुना कटक निकट लखि छायौ । राम उठाय नृपहिँ उर लायौ ॥
नृपति जबहिँ कछु चेतन भयऊ । राम सियहिँ उर लाय सु लयऊ ॥
बहुरि बहुरि उर लाय बिलोकै । सकहि न बचन उचार सशोकै ॥
समुझि सचेत नृपहिँ रघुराई । छ्वै पदजलज सु बानि सुनाई ॥
सुनहु जनक ममजनक बिधाता । नृपतिसिरोमनि त्रिभुवनत्राता ॥
देहु सु मुख सिष हौं बन जैहौं । तुव प्रतापबल भल सुख पैहौं ॥
दै आसिष मुहिँ मंगल ठानौ । प्रेमबिबस कछु सोच न आनौ ॥
संग चलत लक्षमन बैदेही । बहुत कह्यहु मानत नहिँ येही ॥
तातैं अब दूनहुन सिषि दीजे । धरि धीरज धर्महिँ रखि लीजे ॥
बोल्यौ नृपति तबहिँ अकुलानौ । सुनहु राम ममबचन प्रमानौ ॥
करहुँ कहा कयकेई छल्यऊ । जा कारन तूँ बनकहँ चल्यऊ ॥

जायाजित अतिअधम न मोसौं । को अब सत्यसदन पुनि तोसौं ॥
होइ पतित पितु ताहिँ निहनियै । यामै कछु पातिक नहिँ गनियै ॥
निहनि मोहिँ निज राज सम्हारौ। मिटहि तबहिँ दुखदुसह हमारौ॥
तृनवत तजहु न अवधरजाई । सुरसिरोमन तुम रघुराई ॥
गयहु राज पुनि पैयत नाहीं । कोटि जतन करि पचब वृथाँहीं ॥
यौं सुनि राम तबहिँ पुनि बोले । धरमधुरंधर बचन अडोले ॥
करहु राज तुम जुग जुग राऊ । हमहिँ बिलोकि न धरम छुड़ाऊ॥
धरम गये कछु हाथ न आवै । पापसहित अपजस जग गावै ॥
मुहिँ अभिलाष न राज करैं कौ। द्रोह न दुख कछु वन बिचरैं कौ॥

दोहा ।

नभ वितान रवि शसि दिया फल भख सलिल प्रबाह ।
भूम सेज पंखा पवन अब न कछू परवाह ॥

चौपाई ।

राज करहिँ मम प्रानपियारे । भ्रात भरत रघुकुलउँजियारे ॥
चौदह सम कछु बिधि कै नाहीं। जाहित हम वन करन न जाहीं॥
तुव पन पालि बिपिन करि ऐहौं। पुनि तुव पदपङ्कज सिर नैहौं ॥
यौं सुनि नृपतिमनहिँमनसोक्यौ। पुनि पुनि रामबदन अवलोक्यौ॥
लीन्ह बहुरि सुत कण्ठ लगाई । बानी प्रेमबिवस भरि आई ॥
रामहिँ जब नृप रहत न जान्यौ। तब याबिधि पुनि वचन बिधान्यौ
कहि न जात कछु प्रभुकी माया। भोगहि पति ठानहिँ अघ जाया॥
कासौं कहहुँ तरुनिकुटिलाई । ममकरनी जिहिँ धर मिलाई ॥

दोहा ।

जतननि बड़े प्रवीन नर शिला चढ़ावत सैल ।
डार देत बलहीन इमि सुगुन दोष की गैल ॥

चौपाई ।

सुत इक रात रहहु मम पासू । कीजहु भोर विपिनमगवासू ॥
चिरजीवहु मग लहहु भलाई । तुम सम प्रिय मुहिँ को रघुराई ॥
हौं चाहत सुख राम तिहारौ । तुम बिन मंगल मरन हमारौ ॥
सुनि पितुबच रघुपतियहकह्यऊ । रह्यहुनमुहिँइकछिनइतचह्यऊ ॥
धरम जु आजु अबहिँ करिलैहौं । ताकौ फल फिर काल न पैहौं ॥
करतब कालिह सु आजुहिकीजे । जैहौं विपन प्रनति मम लीजे ॥
आज रहँहुँ तौ बड़ दुख येई । ह्वैहै दुखित जननि कयकेई ॥
तातैं अबहिँ चलहुँ बन काजैं । बनकरि पुनिलखिहहुँ ममराजैं ॥
यौं सुनि बचन नृपति दुखभयेऊ । हा हा हा कहि भूपर पय्यऊ ॥
रोईं उर सिर धुनि सब रानी । कयकेई इक तँहँ हरखानी ॥

दोहा ।

लखि सुमंत्र ऐसी दशा तजि धीरज दुख पाइ ।
सचिव सीयपति पगन पर पऱ्यौ मूरछा खाय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

छन्द ।

जब जागि मुरछा तें सुमंत्र उठ्यौ तबहिँ कछु बार मै ।
करि क्रोध कयकेईहि सौं बोल्यौ सुदुःख अपार मै ॥
तूँ करत कत कुलनाश पापिनि जो नृपहिँ दुख दै रही ।
ह्वै भरतमात न तोहिँ चहियत जो कठिन हठ लै रही ॥

दोहा।

नृप दशरथ से सुपति कौं तूँ मति करु अपमान ।
नारिनं कौं सुत तैं अधिक है भरता यह जान ॥

चौपाई।

रघुकुलरीति यहहि चलि आई। जो बड़ सुत सो करत रजाई ॥
लोपि सुरीति न तूँ सुख पैहै । जो निजसुत सौं राज करैहै ॥
तौ हम सब पुरजन गन जेते । राम जहँहिँ तहँ बसहहिँ तेते ॥
एकहु बिप्र न अब इत रैहै । ऊजर अवध नगर सब ह्वैहै ॥
तातैं इक सिष मम सुनि लेहू। रामहिँ जान न बनकहँ देहू ॥
निजपतिसँगसिय तजत न देखौ। रहत न घर लछमन अवरेखौ ॥
भरत न राज करहिगौ च्याहीं । रामबिरह नृप जीहहिँ नाहीं ॥
तजहु क्रोध यह करहु बिचारू । जातैं लहहु न अपजस भारू ॥
राजतिलक यह भरतहिँ देहू । राखहु रामहिँ सहित सनेहू ॥
चाहत कियहु न रामरजाई । त्रिन तुल तकत त्रिजगठकुराई ॥
ज्ञान बिराग धरमधर पूरे । हैं इक राम नृपतिसुत रूरे ॥
राम रहहिँ अपने घर माहीं । यह बर माँगु नृपति सौं च्याहीं॥
जो मम मत यह उर न धरैगी । तौ रोवत भर जनम मरैगी ॥
ह्वैहै अजस न कछु कर ऐहै । दारुनदोष दुसहदुख पैहै ॥
सचिव सिखापन मधुर सुनायौ । जुहित सदहुँ परनाम सुहायौ ॥
तदपि न कयकेइहिँ उर आनौ । सचिव तबहिँ यह वचन बिधानौ
महि न फटत लखि दुरमति तेरी। शापहु लगत न बिप्रन केरी ॥
धिक तोकहँ धिक तुव प्रभुताई । धिक तुव जननिजनक जिनजाई
सुरतरू काटि जु नीम लगाई । पय सींचहु नहिँ लहत मिठाई॥

जस तुव जननि भई तूँ तैसी । हौं जानत तुव मातु सु जैसी ॥
एक समै तुव पितु के ताईं । दिय बरदान सु इक द्विजराई ॥
या जग जंतु जनावर जेते । तिनकी बच समुझहु तुम तेते ॥
यों कैकय नृप सब की बानी । समुझत भयहु मनहुँ मुनिज्ञानी ॥
एक समय इक खग कछु कह्यऊ। सोसुनिसमुझिजु तुव पितु हँस्यऊ ॥
निरखि जननि तुव पूँछन लागी। कारन कवन हँस्यहु बड़भागी॥
हँसनिहेत यह मोसौं कहिये । मम उर सोच भयहु सो दहिये॥
तब नृप कह्यउ न तोहिँ सुनाऊँ। कहहुँ जु तौ तुरतहि मरि जाऊँ॥
बोली तब तुव जननि सरोसौं । जियहु कि मरहु कहहु अब मोसौं ॥
भे बूझत नृप द्विज सौं तबहीं । जो तुम कहहु करहुँ सो अबहीं॥
तब द्विज कह्यउ जु तुम्हरी रानी। पीवहि विष कै मरहिँ अयानी॥
तदपि न तुम नृप भूलिहुँ कहियौ। जो जगमहँ निजजीवन चहियौ॥
तबहिँ तजी नृप तुव महतारी । कीन्ह्यहुँ राज लह्यउ सुख भारी ॥
त्यों तूँ करत जननि की हाईं । साँचौं यह उपषान दिखाई ॥
तजत न नर पितुप्रकृतिहिज्योंहीं। मातुप्रकृति त्रियतजत न त्योंहीं ॥
जो तूँ जननि कुमति अनुसरिहै। तौ तुव बचन न कोऊ करिहै ॥
हठ तजि राज दिवावहु रामै । पावहिँ वृद्ध नृपति बिसरामै ॥

दोहा ।

कयकेई सुनि सचिव के बचन न उत्तर दीन ।
रह्यहु सिटाय सुमंत्र तब जल बिहीन जनु मीन ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

छन्द ।

यों सुनि सचिवसम्बाद दशरथ ह्वै दुखित बोले तबै ।
बन लै चलहु सँग राम के चतुरंग सेना सजि सबै ॥
बंजार बेपारी बनिक नट निरतकारी पुनि चलौ ।
चलि भील सायुध कछुक आगें बिपिन मग सोधहिं भलौ ॥

दोहा ।

बधत बाघ सिंहनि हनत पीवत मधुर महूष ।
यों कर बल हरवल चलहिं लै सर धनुष बदूष ॥

चौपाई ।

राम लखन सर सरित अपारू । सिययुत करहिँ सुबिपिनबिहारू
सम धनकोष सकल लै जावैं । बन बस मुनिन सुयज्ञ करावैं ॥
भरत अवध महँ भुगतहिँ राजू । मोहि न कछु काहू सन काजू ॥
यों सुनि नृपतिवचन कयकेई । अतिभय पाय उसास न लेई ॥
रुकि गौ कण्ठ नयन भरि आये । सूखि गयउ मुख अँग अकुलाये॥
नृप ढिग पटक सुपट आभूषन । लागी दैन पतिहिँ वह दूषन ॥
लाजहि तजि नृप सनमुख ह्वै कैं । बोली वचन रचन यह कैकैं ॥
तुम सम भूप तुमहिँ झूठभाषी । पुत्रबिवस पातिक अभिलाषी ॥
करि पुनि सून भरत कौं दैहौ । यामैं कहहु कहा भरि पैहौ ॥
यों सुनि नृप बोलत पुनि भयऊ। प्रथमहिँ किन तूँ यह कहि लयऊ
सूनै नगर न ममसुत रैहै । ह्वै न सकत अब जो तूँ कैहै ॥
यों सुनि भूपवचन करि क्रोधू । बोली भरतजननि हतबोधू ॥
नृपति सगर असमंजहि जैसें । काढ़हु राम कहहिँ अब तैसें ॥

सुत काढ़त न करहु सकुचाई । तुव कुलरीत यहहि चलि आई ॥
तब नृपकह्यउ निलजधिक तोकौं। आवत लाज न मारत मोकौं ॥
सचिव तबहिँ सिद्धारथ नामा । नीतिनिपुन बोल्यहु सुन बामा॥
सो अस मंजु सुजन सुत कोई । ताकहँ पकरि डुबावत होई ॥
इहिँ अपराध सगर तिहिँ काढ़ौ। हुत्यहुजु सबविधि पातक बाढ़ौ॥
राम न तस अपराधहु कीन्हौ । पाप करम सपन्यहुँ नहिँ चीन्हौं
जु कछु राम अघ तेरौ जानौ । होइ सुकहु तजि सकुच निदानौ
सो सुनि नृपति सुतहिँ तजिदैहै। यामै कछु न कलङ्कित ह्वैहै ॥
चलत सुराह जु ताहि निकासै । तौ इन्दुहु कौ तेज बिनासै ॥
निरखिलोकगति अब मति बोलै। भरतजननि नृप है नहिँ भोलै॥
पुनि बोल्यहु नृप तिय सौं तैसौ। मानहिगी जु न यह बच ऐसौ॥
तौ तूँ धरमरहित अब ह्वैहै । सतजनमहुँ लगि सुगति न पैहै॥

दोहा ।

हौं जैहहुँ सँग राम के बन कौ हिय हरखाइ ।
तूँ इत राज भरत्त कौं दैकरि रहु सुख पाय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

छन्द ।

यौं सुनि भरतजननी नृपति कौ बाद राम लजाय कैं ।
बोलत भये तब तहँ दुहुन सौं ए बचन समुझाय कैं ॥
हौं बसहुँगी बनमै सुमुनि सम तहँ न सेवा चाहिये ।
दै दान गज कौ देत अंकुस अब न सोच उमाहिये ॥

दोहा।

ज्यों दीन्ह्यौ बनबास त्यौं ल्यावहु चीर पिटार ।
कुटिल कुदारी फावड़ा करहु न सोच बिचार ॥

चौपाई।

कयकेई सुनि तहँ उठि आपै । ल्याई चीर तबहिं तजि तापै ॥
लेहु चीर पहिरहु रघुराई । तजि लाजनि यह बात सुनाई ॥
राम तबहिं बर बसन उतारे । पहिरे चीर सुलखन निहारे ॥
पुनि लछमनहिं सुपहिरे चीरू । लखि सियदृगनि सुउनह्यउ नीरू
बोली लै कर चीर सु ऐसैं । सुन तिय चीर पहिरतीं कैसैं ॥
या कहि चीर सु यक गलघाला। लै यक करहिं रही जनु माला॥
देखि तबहिं निजकर रघुबीरू । भे बाँधत बसननि पर चीरू ॥
यह गति निरखि सकल पटरानी। बोलीं तबहिं दुखित ह्वै बानी ॥
सुनहुराम यह सिय कि ताईं । लै बन जाहु न, राखहुँ छाँहीं॥
पितुवच तुम अरु लछमन पालौ। सियतन मलिनकुचीर न घालौ
यों रघुपतिवच सुनत भयेई । सिय तन चीर सुबाँधत भेई ॥
मुनिबशिष्ट बोले लखि लीला । कयकेइहिं सों करि अतिगीला॥
तूँपापिन कछु नीक न कीन्हौ । जो नृप निजनायहिं ठगिलीन्हौ
अजहूँ कछु न गयहु सिष लै तूँ। सीतहिं जान बनहिं मति दे तूँ॥
राज करहिं सिय सीलनिधाना। सुतियबिबाहित सुपति समाना॥
पालहिं पितुवच लछमन रामा। करहिं अवनि रच्छन सिय नामा
जो सिय सँग निजपति कै जैहै। तौ न अवध महँ कोऊ रैहै ॥
महिपमहल रच्छक सब षोजा । जैहहिं सियसँग बिगति मनोजा
भरतहु शत्रुहनन बन जैहैं । कोटिहुँ बिधि यह राज न लैहैं

जहँ न राम तहँ पुर बन ह्वै है । रामसहित बन सुपुर दिखैहै ॥
ह्वै प्रसन्न नृप भरत बली कौं । दैहहिँ जो निजराज थली कौं ॥
तदपि भरत नहिँ लैहहिँ राजू । तूँ जु करत कुकरम किहिकाजू ॥
तूँ उड़ि किन नभ ऊपर छावै । तहँतैं पड़ि महि किन मरजावै ॥
तदपि न तुव बच तनय तिहारौ। मानहिगौ न कबहुँ युग चारौ ॥
रहहि राम तजि अस इत को है। खग पसु कीट नगर नर जो है॥
सूनैं नगर तुही इक रैहै । ह्वै डाइनि सम पुनि पछितैहै ॥
तातैं चीर सियहिँ उतराओ । बसन बिभूषन तन पहिराओ ॥
रथहिँ चढ़ाय सुदासिनि दैकैं । पहुँचावहु घर या बिधि कैकैं ॥
चीर पहिरि सिय बनकहँ जाहीं। यौं बर तूँ तब माग्यौ नाहीं ॥

दोहा ।

यौं बसिष्ट के बचन सुनि कयकेई चुप कीन ।
रघुपतिबदन बिलोकि सिय चीर पहिर तँहँ लीन ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

छन्द ।

यह रीति सौं जु अनाथवत सिय चीर तहँ पहिरे जबै ।
इमि देखि पुरजन मुनि सकल नृप कौं विनिन्दित भे तबै ॥
सुनि भूप कयकेईहि सौं पुनि कहत भे वच दुख लहैं ।
सुकुमार सिय बन जोग नहिँ सुबशिष्ट यह साँची कहैं ॥

दोहा।

जनकदुलारी कौं जु तूँ दिए चीर पहिराय ।
या बिधि मोसौं कब तबै लीन्ही ही ठहराय ॥

चौपाई ।

सीता नहिँ कछु तोर बिगारी । जो या कहँ तूँ चहत निकारी ॥
यह तूँ बरतैं अधिक जु ठानी । इहिँ अघ परिहहि नरक अयानी
यों सुनि सुपितुबचन रघुबीरा । भे बोलत नृप सों धरि धीरा ॥
कौशिल्या ममजननि विचारी । या कहँ शोकसमुद अतिभारी ॥

दोहा ।

जा बिधि या मम शोक सौं प्रान तजै नहिं राय ।
जब लगि हौं आवहुँ बहुरि सो तुम करहु उपाय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टत्रिंश: सर्ग: ॥ ३८ ॥

छन्द ।

मुनि बेष धारहिँ राम कौं लखि नृपति विलपति अति भयौ।
रुकि सकत नीर न लोचनन कौ सूखि तन तबहीं गयौ ।
यह कहत भौ पूरब जनम हम पुत्र बहुतन के हनै ।
ताकौ लह्यउ परिनाम दुख यह सो न कछु भाषत बनै ॥

दोहा ।

कयकई दिय दुःख बहु तदपि कढ़े नहिं प्रान ।
चीर धरहिं लखि राम कौं अबहुँ न जनम सिरान ॥

चौपाई ।

को जानहिँ हमकहँ दुख भोगू । कितिक बदे लहि रामवियोगू ॥
प्रगट पिशाचिनि केकयजाई । देत दुसहदुख निजहित छाई ॥
या कहि नृपति कह्यउ हे रामा। हे ममजीवन ममबिसरामा ॥

गिरयहु भूप इमि मुरछा खाई । पुनि छिनमहँ कछु सुधिबुधिपाई
रोय सुमन्तहिँ सौं नृप कह्यऊ । ल्यावहु रथ अब कछु नहिँ रह्यऊ
तिहुन चढ़ाय सुरथ के माहीं । पहुँचावहु अपनी हद ताहीं ॥
यौंसुनि सचिव सुरथहिँ लिआयौ। तौस-कसी नृप तबहिँ बुलायौ ॥
तासौं भूषन बसन मँगाये । सकुचिबिबस सियकहँ पहिराये॥
ससुर सासु पग-परि तहँ सीता । सोचत मनहिँमनै सुपुनीता ॥
वृद्ध सासुपगसेवकताई । करमबिबस कछु करन न पाई॥
बिफल भयहु मम सबि अभिलाषू। दारुनदुख कछु जात न भाषू ॥
समुझि सुसिय हिय की अकुलाई। कौशिल्या उर लीन्हि लगाई ॥
दीन्हि असीस रहहु इहि बाती । दूधनि पूतनि फलहु सुभाँती ॥
इक सम पुत्रबधू जे चारी । तिनमहँ तूँ मम प्रानपियारी ॥
तुव पितु जनक अवनि महतारी। रघुकुलकलश ससुर नृप भारी ॥
रघुपति पति यह बिपति जु आई। यामै इक तुव धरम सहाई ॥
तोषि पोषि तुहि मैं इमि राखी। पालत पलक सदहिँ ज्यों आँखी
राख्यहुँ तोहिँ सुपलँगहिँ माहीं । दैन दियहु पग भूपर नाहीं ॥
कछु न काज कबहूँ करवायौ । निरखिनिरखि तुवमुख सुखपायौ
सो तूँ अब पतिसँग बन काजैं । ह्वै पदगामिनि चलत जु आजैं ॥
तौ सुन ममसिष जनकदुलारी । तूँ इक सबलायक कुलनारी ॥
बिपति समय जो पति सिवकाई। करहि न जुवति सुअसती गाई॥
पतिब्रत पूरन कुलनारी कौं । पतिगति पतिपतिपतिप्रियजीकौं
होइ सधन निरधन निज स्वामी। क्रूरहु कुटिल कुमारगगामी ॥
तदपि न ताहि कबहुँ अपमानी। कायहुँ मनहुँ बचहुँ सनमानी॥
यों सुनि सासुबचन छितिजाई । निज कर जोरि सुबानि सुनाई॥

दिय जु सिषापन यह तुम नीकौ। सदहिँ सुखद मम तन मन जीकौ
हौं जानत इक पतिसिवकाई । यहहि जननि पुनितुमहिँसिखाई
लहि सुत धाम धनहु जगमाहीं। इक पतिबिन बनितहिँसुखनाहीं
ससुर सु सुत पितु मात सुभ्राता। ए सब मिलि परमित के दाता॥
सरबस बगस अमित सुखरासू । है बनितन इक पति सुन सासू॥
कौशिल्या सुनि इमि सियबानी। हरष शोकमहँ मगन दिखानी॥
बोले राम तबहिँ जगत्राता । करु न सोच अब कछु मममाता
सेवत नृपहिँ सु इक निसि जैसैं। कटि जैहहिँ चौदह सम तैसैं ॥
तब तुव बहुरि मिलहुँगौ आई। यह सुनि जननि सुबानि सुनाई

दोहा ।

चिरंजीव कहि जीव कहि जगजीवन कहि बच्छ ।
फिर आवत लखि विपन तैं कब लगायहैं वच्छ ॥

चौपाई ।

या कहि जननि सुआसिष दीन्ही। चरन परसि रघुपति नतिकीन्ही
पुनि कर प्रनति सकल मातनकौं। बोले वचन सुनाय सबनि कौं ॥
मोसौं परहु जु कछु अपराधू । सो छमियहु तुम सुमति अगाधू
रामबचन सुनि सब नृपरानी । रोईं करि करुनामय बानी ॥

दोहा ।

जिन महलन विच बजत हे बीन मृदंग समुदाय ।
तिन महलन महँ ह्वै रही हाय हाय इक हाय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

छन्द ।

तब करि परिक्रम नृपति कौं तहँ राम लक्ष्मन जानकी ।
पुनि सकल मातन कौं प्रनति किय बोध बानि प्रमान की॥
त्योंहीं सुमित्रा के परसि पग पुनि प्रनति करतैं भए ।
सुत लखन कौं लखि लखनमातु सराहि सिखवन यों दए ॥

दोहा ।

तूँ बनबासहि के लिये पायो जनम अपीच ।
सुखहुँ दुखहुँ तजियो न कहुँ रामचरन बन बीच ॥

चौपाई ।

सु भल बिचार तनय तुम कीन्हा। चलत सियहिँ रामहिँ सँग दीन्हा
पुत्रवती तिय वहहि गनाई । जासु तनय सेवहि रघुराई ॥
कीन्हि सुफल जीवन तुहि मेरौ। ह्वै सिय राम पगन कौ चेरौ ॥
कीन्ह जु जनम जनम जप जोगू। तीरथ दान नियम तजि भोगू ॥
तिनकौ अवहिँ परम फल पायौ। निजप्रभुसँग बनबिचरब भायौ ॥
जस घर तस बन तस सुरलोकू। सेवत प्रभुहिँ न कछु कहुँ शोकू॥
पाइ जनम यह रघुकुलमाहीं । दान करब मख करब सदाहीं ॥
परमधरम पुनि रनहिँ करीजै । गो गुरु नृपहित तनहिँ तजीजै॥
जेठनि केरि सदहिँ सिवकाई । रविकुलरीति यहहि चलिआई॥
सो तुम सुत भल करन बिचारी। कीन्हाहुँ मोहि जगत उँजियारी
जाहु रामसँग बिलम न ठानौ । जननि जनक सियरामहिँ जानौ
दण्डकबिपिन अवध करि लेखौ। अवध सुअब दण्डक अवरेखौ ॥
या कहि तवहिँ सुमित्रा माई । राम लखनयुत सिय उर लाई ॥
दिन अथवत जनु चक्रित चकही। जु उर दुसहदुख कहिनहिँसकही

बहुत असीस जबै सिषि दीन्हीं। तिहुनतबहिँ बनहित मतिलीन्हीं
तबहिँ सुमन्त्र सुबचन सुनायौ । रथ पर चढ़उ जु मैं सजि ल्यायौ
कयकेई के बचन प्रमानै । आजुहिँ बिपिन तुमहिँ प्रभु जानै
यों सुनि सचिवबचन तब सीता। बसन बिभूषन सहित पुनीता॥
निजपति आयसु पाइ तहाँहीं । चढ़त भई प्रथमहिँ रथमाहीं ॥
लै निज निज आयुध दुहुँ भाई। भे बैठत रथ पर हरषाई ॥
तबहिँ सुमन्त्र सुरथ दौरायौ । पुर सब गजब गरदहीं छायौ ॥
निकसत झूमि बनकहँ सिय रामै। भे निकसत पुरजन तजि धामैं॥
पीटहिँ उर सिर धुनि धुनिधावैं। गिरहिँ उठहिँ रथ पथहिँ पछावैं
प्रभुसँग पुरजन चल भे ऐसैं । गंग भगीरथरथ पिछु जैसैं ॥
मग मग शोक समुद उमड़ानौ । बिनहुँ प्रलय जनु प्रलय दिखानौ
चढ़ि बहु बिपति अवध पर आई। आनँद अवलि सुमारि भजाई ॥
रोवत पुरजन रथसँग जाहीं । जिनहिँ खबरि तनमन की नाहीं
कहहिँ पुकारि सुमन्त्र सुनीजे । रामरथहि झूमि जलद न कीजे॥
या बिधि हमसब सँगसँग चालैं। देखत रामबदनछबिजालैं ॥
कौशिल्या-उर कुलिशकठोरा । फाटत जनु सहि दुखभकझोरा॥
धनि सियतिय धनि लछमनभाई। सेवहिँगे प्रभुपद बन जाई ॥
एही समय सुदशरथ-रावा । राननियुत बाहिर कढ़िआवा॥
देखत रामरथहिँ की ओरै । ज्यौं चन्दहि चहि रहत चकोरै॥
रोवहिँ सकल नृपतिसँग रानी। बहुव्याकुल जिमि झष बिनुपानी

दोहा।

भाषत राम सुमंत्र सौं तूं अब रथ दौराउ ।
सचिव थाँभ रथ राम कौं यौं उचरत नृप राउ ॥

चौपाई ।

सुनि सुमन्त तब कीन्हि विचारू। बचन दुहुन के सकहु न टारू ॥
करहुँ कहा यह बड़ सन्देहू । सचिव बिचार कियहु तब एहू॥
नृपति जु मोहि उराहन दैहैं । तब मोकहँ प्रतिउत्तर पैहैं ॥
हौं न सुनी तब तुम्हरी बानी । यहहि समुझि रथगतिअतिठानी
बढ़ि पुरजन आसुन की धारा । कीन्हि समित मग धूरि अपारा॥
हा सुत राम हगन के तारे । हा जानकि हा लछमन प्यारे ॥
तजहु न मोहि चलहु बन लीन्हे। यों बिलपति नृप रथ हग दीन्हे॥
दौर चल्यहु नृप रथ के पाछैं । समुझायउ तब सुजनन आछैं ॥
आवहिँ पुरुष जु फिर घर आछैं। उचित न दौरव ताके पाछैं ॥
या कहि सबनि नृपति मुरकायौ। गहिगहि कर पगपरि समुझायौ

इति श्री अयोध्याकांडे चत्वारिंश: सर्ग: ॥ ४० ॥

छन्द ।

इहि भाँति महलन तैं कढ़त श्रीराम कौं ताही समै ।
अति घोर आरतनाद चहुँ दिसि तैं उठ्यौ सुनि सुर भ्रमै ॥
रोवैं सकल रानी बिकल करि करि बिलाप बिधान कौं ।
कित गौ अनाथन कौं जु नृपसुत नाथ तजि इह थान कौं॥

दोहा ।

मानत हो जो हम सबनि कौशिल्या सम जानि ।
लखि न परत सो इन हगनि हाइ जानिकीजानि ॥

चौपाई ।

कयकेई इह विष बगरायौ । जु नृप रामकहँ बनहिँ पठायौ॥

सुन्टप बिचेत परयहु महिमाहीं । जाहि खबर कछु अपनी नाहीं॥
इक रघुपति बिन महल मसाना। सुजन सुपुरजन प्रेत समाना ॥
बिजन बिपिन सम बागबिलोकी। कोऊ चल किन रामहिँ रोकी॥
लै नृप सँग हम सब बन जैहैं । कयकेई मुख दरस न लैहैं ॥
यों कहिकहि उरसिरधुनि रानी। रोवहिँ गिरहिँ उठहिँ बिललानी
यों सुनि रानिनकेर बिलापू । बिकल भयहु नृप लहि परितापू
जप तप होम सुमष सिवकाई । द्विज न करत कहुँ बिन रघुराई॥
धूँध उठति रवि परत न जानी । भषत न हय हाथी त्रिन दानी॥
चुनत न चुन चुपचाप पखेरू । पियत न पय पुनि बिकल बछेरू
शनि त्रिशंकु गुरु बुध कुज एते । पीड़ित ससिहि करत नभ तेते॥
प्रगट प्रकास रहित नभ तारे । छायहु धूम उठत घन कारे ॥
झंझा पवन प्रचंड जु चाली । गरजत गगन सकल भुँइँ हाली ॥
पुरजन भोजन करत न कोऊ । जाहि लखहु तहँ रोवत सोऊ ॥
मातनि सुत पूतन महँतारी । भूलीं सबनि सबै निज प्यारी ॥

दोहा ।

हा प्रभु हा सिय हा लखन यों कहि बिलपत लोग ।
रोवत मानहु अवधपुर लखि रघुबीरबियोग ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

छन्द ।

जबलौं दिखाइ परी सु रथरज तलगि नृप ठाढ्यौ रह्यौ ।
जब धूरिहु न परी नजर तबहीं दुसहदुख दिल दह्यौ ॥

ह्वै मूरछित गिर पर्य्यहु दशरथ भूप भूपर ता समै ।
जनु छिन्नमूल अतूल सुरतरु पर्य्यहु रज की रास मै ॥

दोहा ।

कौशिल्या गहि दाहिनी बाँह उठायौ राउ ।
कयकेइहिं आवत निरखि बोल्यौ नृप मति आउ ॥

चौपाई ।

परस न मोहिँ भरतमहँतारी । तूँ मम प्रान बिनाशनवारी ॥
रामहिँ बनहिँ पठायौ जोतैं । को अब अतिपापिनि तिय तोतैं ॥
मैं पति तोरि न तूँ मम नारी । हौं त्यागेहु तुहि लखि अघिभारी ॥
तुव मत मानि भरत महिमाहीं । करहि राज तौ ममसुत नाहीं ॥
कौशिल्या लिय नृपहिँ उठाई । पोंछी धूरि जु अँगअँग छाई ॥
तहँ नृप रामचरनरज माहीं । लखि चिन्हित यह कह्यउ तहाँहीं ॥
जो ममसुत हय रथ गजगामी । हौ सोवत सुख सेज सुधामी ॥
सो अब आज बिपिनतरुछाहीं । क्यों परिहहिँ त्रिन आसनमाहीं ॥
मनहुँ अनाथ फिरत बन ऐसैं । राम कहहु सुख पैहहिँ कैसैं ॥
धनि बनचर जे लखिहहिँ रामैं । करिहहिँ सफल नयन बनितामैं ॥
अतिकोमल पद जनकदुलारी । कुलिशकठिन मग कण्टकभारी ॥
क्यों चलिहहिँ तहँ सिय रघुराई । करहुँ कहा मुहि मीचि न आई ॥
श्वापदसबद सुनत भयभीता । अतिभय पाइ डरहिगी सीता ॥
अब केकइ तूँ बिधवा ह्वै कैं । करु यह राज भरत सँग लैकैं ॥
हौं बिन राम जियहुँगो कैसैं । करत बिलाप फिर्य्यहु नृप ऐसैं ॥
दृगनि राज मग देखत सूनौं । पहुँच्यहु नृप महलन दुख दूनौं ॥
रामलखनसिय बिन धन धामा । यों लागत जनु प्रेत अरामा ॥

पुनि नृप कह्यउ सुनहु सब आओ। कौशिल्यागृह मुहि पहुँचाओ॥
ड्यौढ़ीदार तबहिँ गहि बाँहीं । भे पहुँचावत नृपहि तहाँहीं ॥
जाइ नृपति सेजहिँ तहँ बैठौ । नखसिख मनहुँ पिशाचिन ऐठौ॥
ऊँचे सुर दुहु कारन उठाई । मुहि तजिगे कित हा रघुराई ॥
बारहिँ बार यहहि कहि रोवै । धरहि न धीर न परहिँ न सोवै॥
भरि भे जासु दृगनि रघुराई । नींद लहहि तहँ क्यौं समुआई ॥
नृपहि भई निशि काल निशासी। आधिक निशि यह बानि प्रकासी
रामजननि कर परसहु मोकौं । भयहुँ अन्ध अब कछु न बिलोकौं

दोहा ।

या बिधि करत बिलाप बहु बैठौ दशरथ भूप ।
सुतबियोगबस अति बिकल भयौ औरही रूप ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥

छन्द ।

इमि देखि बिलपत नृपति कौं बहु शोक कौशिल्या कियौ ।
लखि बिपति पति की पुत्र बन मुहि चाहियतु नहिँ अब जियौ॥
इह गेह कयकेई कुटिल इक फिरहिगी साँपिन भई ।
जिहिँ काटि सुरतरु-बाटिका बिष बेलि यह ऐसी बई ॥

दोहा।

कयकेई के दासि ह्वै भीख माँगि पुर माहिं ।
रहते राम जु तौ इतौ होतौ दुख मुहि नाहिं ॥

चौपाई ।

पुत्र बिपिन जननी गृहमाहीं । यातें बड़ अब कछु दुख नाहीं ॥
तापर सवतिबचन कटु सहिबौ । पति बेसुधि धिक जीवित रहिबौ
मीच जु कहुँ अपनै बस होती । तौ न इतौ दुख सहियत रोती॥
करहुँ कहा दुख सह्यउ न जाई। ह्वैहैं अब किहि बिधि रघुराई ॥
कटुवा कठ फल मूल अनैसे । क्यौं भषिहहिँ वनबसि तिहुँ तैसे
अति कोमलतन जनककिशोरी। समुझत कछु न जनम की भोरी
सो वनबिच अब किहिँ बिधि ह्वैहै। कण्टक लगत कहा मुहि कैहै ॥
यौं दुखदुसह भयहु उर माहीं । दाड़िम फलवत फटत सुनाहीं॥
मैं उहि जनम कलुष बहु ठाने । तिनकै फल अब हृगन दिखाने॥
आवत फिरि बन तें सिय रामै । कब लखिहहुँ लहि हृग बिसरामै
चौदह बरस कटत अब कैसें । छिनछिन पलक कलप सत जैसें
कयकेई यह अनरथ कीन्हौं । जान बिपिन सिय रामहिँ दीन्हौं

दोहा ।

हौं न जियहुँगी राम बिन बाढ़त शोक अपार ।
या कहि कौशिल्या बिकल रोई महल मझार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

छन्द ।

इमि निरखि कौशिल्याहि बिलपति तब सुमित्रा आय कैं ॥
धरि धीर तहँ बोलत भई ध्रुव धर्मपथ समुझाय कैं ॥
तुव तनय राम गये जु बन पितुबचन पुन्य प्रमानि कैं ॥
ऐसे समर्थन कौं न कहुँ दुख सोच तजु यह जानि कैं ॥

दोहा ।

सत्यसन्ध करिवैं नृपहि गये जु बन कौं राम ।
तिन हित उचित न सोच तुहि समुझि देखि परिनाम ॥

चौपाई ।

जाइ तनय यक तुहिँ फल पायौ। जाहि सुपितुपन पालन भायौ ॥
राम इकहि त्रिभुवन के त्राता । पुनि ता सँग लछमन लघुभ्राता
करिहहिँ लखन सुप्रभु सिवकाई। पैहहिँ दुख न ससिय रघुराई ॥
त्रिभुवन परिकरि रघुबर साका। गाड़ी सुजस सरूप पताका ॥
सत्यसदन शुचि राम शरीरा । लगिहहि तिनहिँ न तात समीरा
ह्वै है रवि जिन परि शशि रूपै । देखि विपिनमहँ त्रिभुवन भूपै ॥
कौशिकमुनि दिय आयुध जेते । प्रभुपालन करिहहिँ सब तेते ॥
रामचन्द्रसर शत्रुनिहन्ता । चहहि करहिँ तौ अन्तक-अन्ता॥
तातै बस रामहिँ के धरिनी । बीर न भोगहिँ जोग जु बरनी॥
चौदह बरस बिताइ भलैंई । ऐहहिँ राम बहुरि सुथलैंई ॥
तादिन जु सुख तुमहिँ देखहिगी। तबहिँ सुजीवन धनि लेखहिगी॥
रवि के रवि पावक पावक के । जम के जम प्रतिपालक सब के॥
जानत जाननहार सुभेवा । राम सकल देवन के देवा ॥
जो सिय सो श्रियरूपहि जानौ। इहहि समुझि कछु दुःख न ठानौ
जहहिँ राम सिय तहँ सुख सारे। विपति न तहँ कछु भयहु न भारे
सुख सौं विचर बिपिन रघुराई । करिहहिँ राज अवध पुनि आई
चीर पहिर रघुपति बन गयऊ । यह बड़ दुख पुरबासिन भयऊ॥
जिनके सँग सिय जनककिशोरी। तिनहिँ न दुरलभ कछु चहुँ ओरी
धरहिँ धनुष सँग लछमन भाई। जो जानत प्रभुपद-सिवकाई ॥

समरथ राम न सोचनजोगू । इक जिनकै बस त्रिभुवन लोगू॥
सो तूँ रामजननि अब ह्वैकैं । सोच न करु कछु मम मति लैकैं
वेगिहिँ राम विपिन करि ऐहैं । तोहि सकल सब बिधि सुख दैहैं
करि तूँ अब सम्बोधन सब कौं । बिकल परयहु रनिवास जु कबकौं
बिरहि तपन रामहिँ अब एतौ । उचित न तुहि दुख ठानत जेतौ
यों कौशिल्यहिँ बोधि सुमित्रा । ह्वै चुप तहहिँ रही जनु चित्रा।

दोहा ।

सुनि सु सुमित्रा के बचन कौशिल्या धरि धीर ।
तजि बिलाप सम ह्वै रहीं दही न उर की पीर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

छन्द ।

जा समै निजपुर तैं निकसि बन कौं चले रघुनाथ हैं ।
तब नगरबासी विप्र सब छोड़त न रथ कौ साथ हैं ॥
फिरिफिरि करत बिनती यहहि घर चलहु द्विजबच मानिकैं ।
तहँ तदपि राम फिरे न मग तैं सुपितु-बचन प्रमानि कैं ॥

दोहा ।

संग लगे पुरजनन सौं बोले श्री रघुराइ ।
करत जु हम पर प्रेम सो करहु भरत पर जाइ ॥

चौपाई

भरत भ्रात मम अज्ञाकारी । करिहहि तुम पर प्रीत सुभारी॥
भरत सु अब जुबराज तिहारे । तिनहिँ मनहुँ बच मान हमारे॥
नृप दशरथ दुख लहहि न जैसैं । तुम सब मिलि अनुसरियहु तैसैं

ज्यौं ज्यौं राम सिषापन देहीं । त्यौं त्यौं प्रेमविवस जन ह्वैहीं ॥
आये द्विज तब रघुपति आगैं । आसिष देत सु अति अनुरागैं ॥
वय के बिरध कँपत सिर तैसैं । जाहु न बन बरजत जनु ऐसैं ॥
सुरथ हयन सौं तिन यह काह्यऊ। उत्तम कुल तुम जन सुख लह्यऊ
त्यौं रामहिँ तुम फिरहु पुरी कौं। आनँद देहु सबनि के जी कौं ॥
है तुम्हरे श्रुति सुनत सबै हौ । क्यौं द्विजवचन उलँघि बन जैहौ
रन बन तैं पहुँचाउब गेहू । प्रभुहिँ धरम निज तुम्हरौ एहू ॥
यौं सुनि राम द्विजन की बानी । करुनानिधि प्रभु सर धनु पानी॥
रथ तैं उतरि उबहनै पाइन । चलि भे रहहिँ हरहिँ चितचाइन
जा बिधि बिमल बिरधद्विजराजू। पावहिँ खेद न मम सँग आजू ॥
द्विज लखि सँग रामहिँ पदचारी। मिलि सबहुनि यह बानि उचारी
आवत बिप्र लखहु महिभरता । सुमुख बाजपेयन के करता ॥
तिनकैं शुभ छत्रन की छाहीं । चलहु नाथ उन सबके नाहीं ॥
अति खर सूरज किरन तिहारैं । लागत लखि बड़ खेद हमारैं ॥
वेद पढ़ब धन महिदेवन कौं । आये हम सब छोड़ि सुवन कौं॥
वह द्विज तजि निजमखआरम्भा। तुम्हरे सँग आवत निरदम्भा ॥
हौ तुम धरम सुपथ के ज्ञाता । तातैं फिरि अब चलहु सुत्राता॥
तौ ह्वैहहिँ सब के मख पूरे । हे रघुपति पुर चलहु जरूरे ॥
यौं द्विजवचन सुनत रघुराई । तमसा नदितट पहुँचे आई ॥

दोहा ।

तब सुमंत्र घोड़ान कौं छोरि पियायौ नीर ।
प्रथम वास रघुपति लियौ तँहँ तमसा को तीर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

छन्द ।

तहँ राम लखि सिय की तरफ छिन लखन सों बोले तबै ।
यह है बिपिन के बास की निशि प्रथम ता महँ तम छबै ॥
सो ये सकल खग मृग बिलोकहु बन लगत जनु सून है ।
उत भयहु ह्वै है अवध मैं अब जो दुसहदुख दून है ॥

दोहा ।

जननि जनक कौं सोच बड़ मुहि आवत इह ठाँइँ ।
रोवत रोवत रैन दिन कहुँ न अंध व्है जाँइँ ॥

चौपाई ।

इकहि बोध अब मम मन माहीं । ऐहहि भ्रात भरत तिहि ठाहीं ॥
सुपितु मातु सम्बोधन करिहै । कबहुँ न धरम सुपथ परिहरिहै ॥
समरथ भ्रात भरत सब लायक । है सबकहँ सब बिधि सुखदायक ॥
यों गुन सुमिर भरत भ्राता के । करहुँ न सोच सुपितु माता के ॥
ह्वै सचेत अब लछमन भाई । रहहु सदाँ तुम बन बिच आई ॥
आज न मूल सुफल कछु खैहौं । केवल जल पानहिँ करि रैहौं ॥
बचन सुलछमन सौं कहि ऐसैं । बोले राम सचिव सौं तैसैं ॥
तुम सुमन्त्र हय रथ रखवारी । ह्वै सचेत राखहु बन भारी ॥
तब सुमन्त्र निन तुरगन आगैं । बहुबिधि नाखि सुरखि सुभ जागैं ॥
बहुरि सचिव रघुपति ढिग आयौ । सन्ध्या करत प्रभुहिँ लखिपायौ ॥
तब सुमन्त्र सँग लछमन जी के । नव दलि तोरि तरुन के नीके ॥
परनकुटी रचि सेज बिछाई । सोये तहँ सिययुत रघुराई ॥
करत दुहू प्रभु गुननि बखाना । भे जागत धरि धनुष सुबाना ॥
लहि मग श्रम पुरजन द्विज जेते । भे सोवत जहँ तहँ सब तेते ॥

देखि सबनि सोवत रघुराई । बोले बचन सु लछमन भाई ॥
लखहु लखन द्विजगन पुरबासी । सुरदुरलभ तजि ग्रह सुखरासी ॥
आये चलि मम सँग अब ऐसैं । त्यागि सकल सुख सिय तुम जैसैं
कोटिहुँ बिधि अब ये न फिरैंगे । जो बरजहुँ तौ कुवन गिरैंगे ॥
सोवत छोड़ि इनहिँ इत यातैं । वेगि चलहु रथ चढ़ि अध-रातैं॥
राजधरम यह श्रुतिगन गावैं । निजकृत दुख न प्रजा कहुँ पावैं
लखन कह्यउ तब मम मत एही । होहु सवार सहित वैदेही ॥
तबहिँ सुमंत्र सुरथ सजि लायौ । तिहुन चुपहिँ तिहि पर बैठायौ
हाँकि हयन तरि तमसा पारै । पहुँचि राम बोले तिहि बारै ॥
सुनहु सुमंत्र स् यक मत मेरो । उत्तरदिशिओरहिँ रथ फेरो ॥
कछुक दूर चलि फिर बन काजैं । हाँकहु रथ यह वेगि सु आजैं ॥
या बिधि पुरजन खोज न पैहैं । आपहि आप पुरहिँ फिर जैहैं ॥
सुनि सुमन्त्र याही बिधि चालौ । प्रजनि छलनिहित होइ उतालौ

दोहा ।

तहँ तजि सोवत यजनि कौं यौं छल करि रघुनाह ।
गए निकसि अति दूर बन को जानैं किहिं राह ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

छन्द ।

तहँ होतहीं परभात पुरजन विप्रगन जागे सबै ।
देखे न तित रघुवंशमणि तब दीन ह्वै बोले तबै ॥
धिक हम सबन कौं नीदवस जे ह्वै अचेत परे रहे ।
अब जाइ देखहिंगे कहाँ श्रीरामपद जे चितचहे ॥

दोहा ।

इकै कहत इति रचि चिता करिए अगिनप्रवेस ।
राम बिना अब अवध मैं है न जाइवौ बेस ॥

चौपाई ।

एकै कहहिँ न पावक धसिये । चौदह बरस बिपिनहीं बसिये ॥
ऐहँहिँ राम बिपिन करि जबहीं। सँगही सँग पुर चालब तबहीं ॥
इकहिँकहहिँविधिबिनतिसुनीजे। हम पर प्रलय अबहिँ रचिदीजे॥
योंकहिकहिरथपथहिबिलोकनि। खोजहि लेत चले जुत शोकनि॥
पायहु रथ पथ खोज जहाँ लौं । गे चालत सब लोग तहाँ लौं ॥
जब न खोज रथ कौ कहुँ पायौ। जित तित लोग बिलोकन धायौ
राम राम कहि सिर उर धुनहीं। बिकल भ्रमत रोवत पुनिपुनिहीं॥
इकहिँ कहत सोवत सिय रामै। लैगौ होहि न सचिव सुधामै ॥
या विधिबिलपति अतिअकुलानै। भे आवत सब निज निज थानै॥

दोहा ।

गिरे मूरछित व्है गृहनि पुरजन बिकल बिहाल ।
इकनि एक चीन्हत नहीं परे मीन जनु जाल ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥

छन्द ।

या विधि नगरवासी सकल निज निज गृहन मैं आय कैं ।
सुत भ्रात नारिन कुटुमयुत रोवत भये अकुलाय कैं ॥
बैठत न कोऊ हाट बिच पुर बाट सब सूने परे ।
कहुँ पाइ सरबसहू न पावत नैक सुख इमि दुखभरे ॥

दोहा ।

कहँहिं सुपतिनी पतिन सौं इक लछमन अब धन्य ।
जो सेवहिंगो रामपद प्रभु सँग निवसि अरन्य ॥

चौपाई ।

नारिनमहँ धनि धनि इक सीता। जो लखिहहि प्रभुचरन पुनीता॥
ह्वैहहिँ धनि सरसरित बिपिनकै। न्हैहहिँ जहँ प्रभु सकल नृपन कै॥
सुफल सफल तरु तेई ह्वैहैं । तोरि सुफल जिनकै प्रभु खैहैं ॥
तातैं तुम सब पुरुष हमारे । चलहु बिपिन सेवहु नृप प्यारे॥
हम नारी सब तजि पुर या कौं। सेवहिँगी बन जनकसुता कौं ॥
राज अवध करिहहि कयकेई । इत न उचित रहिबौ मति येई॥
भरतमातु जिहिँ निजसुखचाही। दै दुख देह सुपति की दाही ॥
राम लखन सिय पुर तैं काढ़े । को अस जिहि न दिये दुखगाढ़े॥
गोमर गृह परि पशु कै नाहीं । रहव न उचित सु अब इहिँ ठाहीं
कुटिल कसाइन कैकयजाई । यह लैहहि नृपप्रानन खाई ॥
तब यह राज लुपत सब ह्वैहै । भरतजननि सबकहँ दुख दैहै ॥
जस जननी तस भरतहु जानौ । यामहँ कछु सन्देह न मानौ ॥
तातैं नीक मरब बिष खाई । कै सेवहु बन चलि रघुराई ॥
यौं कहि रोइ नगर की नारी । दै दै बहु कयकेइहिँ गारी ॥
तब लगि रवि अथयहु तम छायौ। काहू कतहुँ न दीप जगायौ ॥
आगम निगम पढ़त नहिँ कोऊ। कहत न कहहुँ कथा पुनि सोऊ
लागे सुदृढ़ कपाट दुकानन । लगत बजार बिजन जनु कानन॥

दोहा ।

या विधि घर घर अवधपुर रह्यहु शोक इक छाइ ।
करुनावरुनालय बिना करुना कहाँ समाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥४८॥

छन्द ।

या छलहि सौं तजि नगरबासिन राम चलि रातिहुँ भले ।
लखि रवि उदय सन्ध्या सु करि पुर देश देखत पुनि चले ॥
प्रभु कौ निरखि पुर पुरन के जन नृपहि दै धिक यों कहैं ।
भल किय न दशरथ जो सुतहिँ बनवास दिय तिय के चहैं॥

दोहा ।

इकहिं कहैं भल कीन्ह नृप बनहिं पठाए राम ।
भए सफल हम सबनि के दृग दिषि दिषि छबिधाम ॥

चौपाई ।

यों तहँ सुनत जनन की बातैं । गोमति नदि उतरे प्रभु प्रातैं ॥
चलत भये पुनि दखिनदिशा कौं। बिपिन दिखावत जनकसुता कौं
लखु सिय यह कौशल मम देशू । दिय मनु लिय इक्ष्वाकु नरेशू ॥
यों सुनि सिय प्रभुसौं यह कह्यऊ। दूरि कितक अब दण्डक रह्यऊ॥
यों सुनि सियबच सुख के गाये । अस को जाहि न आँसू आये ॥
बहुरि सचिव सों प्रभु यह भाषे। बन करि छाय अवध सुख साखे॥
लै आयसु पुनि मातु पिता के । हौं ऐहहु इत हित मृगया के ॥
कौनहुँ बिसन बिबस नहिँ ह्वै हैं। हनि बाघनि गौवनि सुख दैहौं॥

दोहा ।

या बिधि बहु बातैं करत मंत्री सौं रघुराइ ।
पहुँचे कोशल देश की शुभ सीमा पर जाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनपंचाशत: सर्ग: ॥ ४९ ॥

छन्द ।

तहँ सोम कोशल देश की लखि अवध सन्मुख होइ कैं ।
बोलत भये रघुनाथ यौं दृग देखि मन्दिर जोइ कैं ॥
हे देश हे पुरदेव तुम सौं सीष मागत गमन कौं ।
बन करि उरिन ह्वै भूप सौं फिर लखहुँगौ तुम सवन कौं ॥

दोहा ।

रोवति लखि तहँ के जनन बोले प्रभु समुझाइ ।
तुम सब मिल मो पर दया राषैं रहियौ भाइ ॥

चौपाई ।

दुखदायक यह समयौ ऐसौ । भयहु हमहिँ तुमहूँ कौं तैसौ ॥
तातैं निज निज काज करीजै । हानि लाभ दुख सुख न गनीजै॥
करहु जाइ तुम निजनिज काजै। हौंहूँ अब बन जैहहुँ आजै ॥
चौदह सम कछु बिधि कै नाहीं। मिलव बहुरि हम तुम इहिठाहीं
यौं सुनि रामबचन दुख बाढ़े । भे रोवत जहँ तहँ जन ठाढ़े ॥
जब लगि तिन रघुपति रथ देखौ। तबलगि दृगनि सफल करिलेखौ
दृगनि-ओट जब प्रभु रथ भयऊ। निजनिज मग तिन सबहुनलयऊ
देखत राम बिपिन पुर ग्रामा । ब्रज आकर बहु देश अरामा ॥

जात चले द्रुमि बन मगमाही । सुनत निगमधुनि जहहिँतहाँहीं॥
कहुँ राजन के थान सुहाये । देखत गंग सुतट तहँ आये ॥
कमल सुगन्ध पवन तहँ सीरौ । तन सुखदायक चलत जु धीरौ॥
कहुँ रवि गंग गँभीरनि धारैं । कहुँक भयङ्कर शबद उचारैं ॥
सारस कहुँ सोभित बहु हंसा । कमल लसत कहुँ कहुँ मुनिबंशा
तहँ सुमन्त सों प्रभु यह कह्यउ । आजु इतहिँ निशि चहियत रह्यउ
इंगुदि तरु तर करि बिसरामा । देखहिँगे सुरसर छबिधामा ॥
सुनहु सचिव यह गंग सुहाई । पतित पुनीत करनि श्रुति गाई॥
सुरसरि यह इक सुरगन सैनी । सेवत मनबांछित फलदैनी ॥
जीवत जन्तु पियत जल याकौ । ते पावत पुनि पान सुधा कौ ॥
आपु कुटिल गतिगामिनि देखौ। सेवत देति सरलगति लेखौ ॥
नृपति भगीरथ सुजस पताका । सोभित मनहु सरदनिशि राका॥
जानहु जननि सुदेव धुनी कौं । जियत मरिहुँ सुख देत दुनीकौं
यों सुनि सचिव सुरथ के ताईं । ल्याइ उतारत भयहु तहाँईं ॥
उतरे राम लखन अरु सीता । निरखति गंग तरंग पुनीता ॥
बाँधि तुरँग तहँ सचिव सचेतू । खयहु रह्यहु प्रभु सेवन हेतू ॥
तब निषाद नृप गुह यह नामै । आयहु सुनि निजदेशहि रामै ॥
सुनतहिँ तिहिँ जनु सरबस पायौ। प्रभुहि मिलन चलि पायनआयौ
लखि प्रभुचरनन कीन्ह प्रनामा । आगैं राखि नजरि बहु सामा ॥
फिरफिर प्रनतिकरहिँ हियहरषै । रामबदन दृग भरि भरि परषै ॥
भगतिबछल रघुपति सब भाँती । लीन्हयहु गुहहि लगाइ सुछाती॥
पुनि गहि बाँह सुढिग बैठायौ । बूझि कुशल बड़ प्रेम बढ़ायौ ॥
तब कर जोरि बचन गुह कह्यउ। सफल जनम मम आजुहिँ भयउ

अधम जाति जो शवर गनायौ । सो प्रभु तुम निजउरहिँ लगायौ॥
सपरिवार मुहि पावन कीन्हौ । जानि सुजन दूत बासु जु लीन्हौ॥
शृंगवेरपुर माह चलीजै । सबहुन केर सफल दृग कीजै ॥
इह सब देश तुम्हर रघुराई । हौं सेवक मुहि जो फरमाई ॥
सो मैं करहुँ सहित परिवारा । मम भागनि आगमन तुम्हारा॥
हैं ये प्रभु पकवान मिठाई । सेजैं सुखद सयनहित छाई ॥
सुरथ हयनहित चिन यह दानै। बसन बिभूषन भूरि खजानै ॥
सकल माल पुर देश तिहारौ । लागत यामहँ कछु न हमारौ॥
यों गुहवच सुनि प्रभु तव कह्यऊ। तुव लखि प्रेम तृपित उर भयऊ।
तुमसे नृप ह्वै पदचर आये । मोहि मिलन हम सरवस पाये॥
कीन्हि जु नजरि सकल सुभसामा। सो हम लीन्हि धरहु तुम धामा
हौं पितु आयसु लहि बन आयौ। चीर पहिर तजि भोग सुहायौ॥
तातैं मोहि न कछु यह चहनै । सुफल मूल भषि बनवसि रहनै॥
ये दशरथ नृप हय लखि लेहू । इनहित हरितहरित चिन देहू॥
यों सुनि तवहिँ मगाय मसाला। दीन्ह हयनि गुह सुचिनविशाला
तवहिँ राम किय संध्योपासन । करि जल पान बिछाइ कुशासन
आइ तवहिँ तहँ लछमन सीता। रामचरन पुनि धोइ पुनीता ॥
भरि अँजुरिन चरनोदक लीन्हौ । ताही जल अभिषेक सुकीन्हौ ॥
परनकुटी रच प्रभु पौढ़ाये । सुकरन चरन पलोट सुवाये ॥

दोहा ।

सचिव लखन गुह अत्र लै जागत रहे सचेत ।
सुख सोये रघुबीर तँहँ सोभन सिया समेत ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचाशत सर्गः ॥५०॥

छन्द ।

तहँ देखि जागत लखन कौं कर जोरि गुह बोले तबै ।
तुम स्वै रहहु निहिंचिन्त इत हम देहिंगे चौकी सबै ॥
अब मुहि न प्रिय कछु राम सम यह धर्म कौ सौं करि कहौं।
इनके प्रसादहि सौं धरमयुत काम अर्थ सबै लहौं ॥

दोहा ।

तब लछिमन गुह सौं कह्यौ हौं न जगत भय पाइ ।
क्यों सोवहु परभूमि पर जहँ सोवत रघुराइ ॥

चौपाई ।

पुर तजि रामचले जिहिँ छिन तैं। हौं इक नींद तजी तिहि दिनतैं
वन विच प्रभु सुख सेवक सोवै । यह अनरथ सब सुधरम खोवै ॥
आलस तजि निजप्रभु सिवकाई। करि किनकहँ न लही प्रभुताई॥
जे प्रभु राम सुरासुर जेता । ते सोवत चिन सीय समेता ॥
रामजनमहित सुमुख अलेषे । किय दशरथ तब ये सुत देखे ॥
तिनहिँ भेजि वन नृप न जियैगो। यह बड़ सोच सुमम उर हैगो॥
यह अनाथ पुनि पृथिवी ह्वैहै । कोऊ अवध बसत नहिँ रैहै ॥
कौशिल्या अरु हमरी माता । तजिहैं प्रान न कोऊ त्राता ॥
जियहि तजियहि सुमित्रा माई । इक शत्रुघन सुप्रेमहिँ पाई ॥
बीस बिसहुँ कौशिल्या मरिहै । तबहिँ नृपति निजतन परिहरिहै
नृपकहँ तहँ दैहहि जो आगी । ह्वैहै पुरुष वहहि बड़ भागी ॥
वहहि अवध कौ भूपति ह्वैहै । सुर दुरलभ सुख सहजहिँ पैहै ॥
हम न नृपहिँ जीवत देखैंगे । धिक जीवन तब निज लेखैंगे ॥

दोहा ।

यों बहु बिलपत लखन कौं गई बीत वह रैन ।
सुनि बिलाप गुह दुख लह्यो रह्यौ न चित में चैन ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकपंचाशत सर्गः ॥ ५१ ॥

छन्द ।

तब होतहीं भुनसारु जगि श्रीराम लछमन सौं कह्यौ ।
अब चाहियत उबर्यौ सुगँगहित मन कहूँ छिति छै रह्यौ ॥
सुनि लखन गुह सौं सचिव सौं सिषि मागि आगैं चलि भये ।
गुह नाव तबहिँ मगाय निजकर जोरि भे बोलत ठये ॥

दोहा ।

हे रघुनाइक नाउ दृढ़ है यह सुरसरि तीर ।
कहहु जु कछु सो करहुँ मैं बोले तब रघुवीर ॥

चौपाई ।

सब सन भूषन जनकदुलारी । पुनि फावड़ सुकुदार पिटारी ॥
इनहिँ चढ़ावहु प्रथमहिँ आछैं । लखनसहित हौं चढ़िहहुँ पाछैं॥
या कहि राम कवच तन कस्यऊ। कटि तुनीर असि धनु कर लस्यऊ
यों सजि गंग समीप चलेई । तब सुमन्त इमि बोलत भेई ॥
करहुँ कहा फरमावहु स्वामी । क्यों रथ अछित भयहु पदगामी
तब कर गहि निजकर प्रभु बोले। सुनहु सचिव ममवचन अडोले॥
जाहु पुरहि नृपसेवन ठानौ । सबहुन सों मम कुशल बखानौ॥
अब हौं वन जैहहुँ पदचारी । सुनि सुमन्त पुनि अरज उचारी॥

को अस जो बरजहि तुम काजैं। बनहित जिनहिं पठायहु राजैं॥
तुम दुख लहि निजधरम सम्हारा। सियहु लखन लिय संग तुम्हारा॥
तुम तीनहुँ सद्गति के भागी। इक मुहि तजि कत करतअभागी॥
कयकेई अघ कीन्ह जु ऐसैं। ताकौ बदन निरखिहहुँ कैसैं॥
या कहि सचिव सुरोवत भयऊ। राम तबहिं पुनि बचन सुकह्यऊ॥
सुनहु सचिव मम रघुकुलमाहीं। तुम सम सुहृद सु दूसर नाहीं॥
जो तूँ मम सँग बन बिचरैगौ। तुव प्रतीत तौ नृप न करैगौ॥
कामबिबस नृप सुठि सठियानौ। ह्वै तियबिबस बिकल बिललानौ॥
असनृप तियहितकहहिसुकरियौ। भूलिहुँ ममगुन तहँ न उचरियौ॥
जो सेवक नृप मन की करई। तापर प्रभु मन बच क्रम ढरई॥
हौं निज हित तुम्हरौ भल चाहौं। यातैं तुमहिं न बन लै जाहौं॥
मम प्रनाम कहि नृप सौं आछैं। फिरि ये बचन उचरियहु पाछैं॥
राम कह्यउ चौदह सम ताईं। करि बनबास मुनिन के नाईं॥
पगनि परसि पुनि प्रनति करूँगौ। जो नृपहुकुम सुसिरहि धरूँगौ॥
यौं सुनाइ नृप कौं सुभ बानी। कयकेई आदिक नृपरानी॥
मम प्रनाम तिनसौं कहि दीजौ। कौशिल्यहु सौं प्रनति कहीजौ॥
सिय लछमनहू की हुति पाछैं। जननि पाँउ परियहु तुम आछैं॥
पुनि नृप सौं यह बात कहीजे। बोलि भरतकहँ तिलक करीजे॥
तब तूँ भरतहि तैं सुख पैहै। ममबियोग दुख तब न सतैहै॥
भरतभ्रात सौं कहियो ऐसैं। कयकेई नृप दशरथ जैसैं॥
त्यौं मम जननि सुमित्रा आदी। सब मातनि की देखहु दादी॥
या बिधि तुव परलोक न जाई। त्यौं तुम ठानहु पाइ रजाई॥
यौं सुमंत्र सुनि प्रभु की बानी। पुनि कर जोरि सुबानि बखानी॥

तुम बिन जाहुँ नगर जो ऐसें। नृप कों बदन दिखैहुँ कैसें ॥
जूझहिँ रनमहँ अति रथि जैसे। सारथि रथ घर ल्यावत तैसै ॥
तुम बिन मोहि निरखि पुरबासी। पैहहिँ दुसहदुखन की रासी ॥

दोहा।

मातुल के गृह राम कौं हौं आयहु पहुँचाइ।
कौशिल्या सौं भाषिहौं क्यों झूठ बचन सुनाइ ॥

चौपाई।

बन रामहिँ तजि आयहु ऐसें। अप्रिय बचन कहहुँगौ कैसें ॥
चालहिंगे न तुरँग पुर ओरी। तुम बिन करहुँ जु जतन करोरी
तातैं रहिहहुँ संग तिहारे। हौ तुम जीवन प्रान हमारे ॥
मोहि जु सँग लै चलिहहु नाहीं। सरथ जरहुँगौ पावक माहीं ॥
तातैं मोह तजहु मति स्वामी। हे रघुपति प्रभु अन्तरजामी ॥
ये रथ हय करि तुम्हरी सेवा। पैहहिँ सुगति जु चाहत देवा ॥
मैं न अवध पुनि सुरपुर चहहूँ। तुम बिन नाथ न कहुँ सुखलहहूं
बिपिनबास ब्रत पूरन पाऊँ। तुमहिँ चढ़ाय सुरथ पर आऊँ ॥
तबहिँ अवधपुर धसिहहुँ ऐसें। मम दिलदाह दहहु तुम तैसें ॥
या कहि सचिव पगन पर पय्यउ। विलपत रोवत दृगजल झय्यउ ॥
तबहिँ राम निजकरन उठायौ। करि बोधन पुनि बचन सुनायौ॥
सुनहु सुमन्त्र भगति जो तेरी। हौं जानत चितचाह घनेरी ॥
जा कारन तोकहँ पठवाऊँ। पुरहि सुमन मैं सुमति सुनाऊँ॥
जब तूँ सरथ अवधमहँ जैहै। तब कयकेई दुख कौ जैहै ॥
जानहिँगी तब साँचहु रामा। गे बनकहँ तजि निज धन धामा॥

नहिँ तौ झूठ कहहिगो राजै । तुम न सुतहि भेज्यहु बन काजै॥
तोहि निरखि जब आँखिन लैहै । तबहिँ नृपतिकहँ साँची कैहै ॥
तातैं तुम अब पुर कौं जाऊ । बोलि भरतकहँ तिलक दिवाऊ॥
हौ तुम सचिव नृपति सम मेरे । हौं पुर तज्यहु भरोसिहुँ तेरे ॥
सकल सम्हार करहु पुर जाई । दुख न लहहि कछु लछमनमाई॥
तुम समान को अस हितकारी । तजहिँ न प्रान सुमम महतारी॥
है तुव सिर सब घर छर भारू । जाहु करहु पुरकैर सम्हारू ॥
यौं सुमन्त्र सौं कहि रघुराई । बोलि गुहहि यह बानि सुनाई॥
मोर रहब इत उचित न मीता । बनबसि तप करिहहुँ सहसीता॥
तातैं बटपय देहु मगाई । ल्यावहु गुह बट दूध दुहाई ॥
सुकच जटा दुहुभाइन कीन्है । बलकल चीर पहिर ब्रत लीन्है॥
मुनि समान बर मेष बनाई । भे बोलत गुह सौं रघुराई ॥
तुम निजराज करहु पुरमाहीं । हम तुम मिलब बहुरि इहिठाहीं
तुम सम को अस शुद्ध हमारा । बनहिँ जात बहु किय सतकारा॥
तुम्हरे प्रेम पुनि भगति अलेखी । कहहुँ कहा निज आँखिन देखी
अचल प्रेम अस तुम उर माहीं । रहहि सदा प्रिय जिय की नाहीं॥
या कहि राम लखन अरु सीता । चढ़त भये लखि नाव पुनीता ॥
तबहिँ मलाहन सौं गुह कह्यऊ । नावहि पार लगायब चह्यऊ ॥
प्रभुहिँ पार पहुँचावहु आछैं । ह्वै सचेत निज काछनि काछैं॥
तबहिँ राम आचमन सु कै कैं । नौका मंत्र पढ़ाहु सुचि ह्वै कैं॥
सुरसरि बिच चलि नाव जु आई। तबहिँ सीय यह बिनति सुनाई॥
हे भागीरथि तरलतरंगे । मनमथ मथन सिरोरुह संगे ॥
जगपावनि मुद मंगलमूला । रहहु सदाँ प्रभु पर अनुकूला ॥

ये नृपसुत पितुआयस पाई । बरस चारि दस बन बसि माई ॥
छेम कुशल जब ए फिर ऐहैं । रघुपति राजतिलक पुनि दैहैं ॥
तब तुव पूजन करिहहुँ आई । दै लाखन गोगन इकहाई ॥
अन्न बसन दै बिप्रन आछैं । तुम्हरी प्रीति निमितता पाछैं ॥
सुघट हजारन भरि मदिरा सौं । बिबिध मास अन्नन की रासौं ॥
यौं बिधिवत करिहहुँ बहु पूजा। तो सम और न तीरथ दूजा ॥
पुन्य सुथल तुव तीरनि जेते । बिधिवत पूजहुँगी सब तेते ॥
यहहि कहत पारहिं तरि लागी। उतरे राम ससिय बड़भागी ॥
तबहिं राम-उर यह अवगाही । दियहु मलाहन कहँ कछु चाही॥
लै सिय उरहारहि रघुराई । दैन लगे तिनकहँ उतराई ॥
तबहिं मलाहन प्रभु सौं कह्यऊ। तुमहिं देखि हम सरवस लह्यऊ॥

दोहा ।

तारक तारक सौं न कहुँ कछु उतराई लेत ।
रीत सनातन राम यह बहहु पार करि देत ॥

चौपाई

यों केवटवच समुझि गुसाईं । प्रेम अचल दिय सब के ताईं ॥
भये चलत तहँ तैं दुहु भाई । सीयसहित निजपगनि सिहाई॥
कह्यउ लखन सौं प्रभु मग जातैं। आगैं चलहु सचेत इहाँ तैं ॥
हौं पिछलगि बिचसियकरिलीजे। या बिधि गमन बिजन बन कीजे
इहहि रीति चलि भे पदगामी । लखन सीय पुनि त्रिभुवनस्वामी
जब लगि देखि परे रघुराई । तब लगि सचिव रह्यउ दृग लाई
या बिधि चलत भई जहँ साँझू। इक तरु तर उतरे बन माझू ॥
बन बराह तहँ इक संघार्यौ । चीतर रोज सु साँभर मार्यौ ॥

बनपशु चार निहनि रघुराई । ह्वै शुचि सुभग सिकार बनाई ॥
सकल सुरनकहँ परसन कै कैं । तामहँ सीय लखन कौं दै कैं ॥

दोहा ।

किय भोजन बाकी सु प्रभु तरु तर कुसनि बिछाइ ।
खरे रहे तहँ लखन इक पौंढे सिय रघुराइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्विपंचाशत सर्गः ॥ ५२ ॥

छन्द ।

या रीति सन्ध्या करि जु पौंढ़े प्रभु सुलछमन सौं कह्यौ।
यह बिन सुमन्त्र निशा प्रथम अब बिजन बन जागि बच कह्यौ
पुनि आजु नृप बहु दुखित ह्वै हैं कैसे सुख पाइहै ।
वह भरत आये पर नृपहि हनि राजतिलक दिवाइहै ॥

दोहा ।

हम तुम बिन बसतीय के कहा करैगौ राइ ।
जिहिं केवल निजि कुमति सौं लिय दुख सीस चढ़ाइ ॥

चौपाई ।

अब मै यह निहचै करि जाना । अरथ धरम तैं काम प्रधाना ॥
मूढ़ पुरुष इक तिय हित लागी। तजहि तनय दाहहिँ तन आगी
भरत सुतिययुत अवधपुरी कौ । भोगहिगौ सुख लहि नृप टीकौ
नृप ह्वै हहि परलोकनिवासी । हम बन फिरत तहीं सुखरासी॥
अरथ धरम तजि केवल कामै । जो सेवहि तौ दुख परनामै ॥
तासु दसा जानहु तुम ऐसी । अबहिँ भई दशरथ की जैसी ॥
नृपकृति हित हमरे बन काजू । मिलहि भरतकहँ राज समाजू॥

या हित लीन्ह जनम कयकेई । दीवहि दुख कौशिल्या वेई ॥
बहुत सुमित्रहु कौं दुख देहै । निहनि दुहुनि तब कहुँ सुखपैहै
तातै लछमन तुम पुर जाऊ । दुहु मातनकहँ सरत जिवाऊ ॥
दुहु जननिनि सुहिबहुबिधिपालौ। ममजीवत तिन लह्यउ कसालौ॥
सेवा जोग भयौ मैं जबहीं । तजि जननिनिहिँ आयहुवनतबहीं
तातैं धिक मोकहँ जगमाहीं । जासु जननि बिन सुत की नाहीं
मो सम सुत जनि जननिदुखारी। ऐसी होहि न कौनहुँ नारी ॥
मो सम सुत जननिहुँ दुखदाता। कोऊ जनहिँ न सुख चहि माता॥
सुकहु सारिकनि प्रीति अपारी । आवहिँ पिंजर पर जु बिलारी ॥
काटि चरन चोंचहि तिहि केरौ। मारि भगावहि जु रिपु घनेरौ ॥
हौं हनिसक्यहुँन रिपु जननीकौं। मोतैं भल सुत पच्छिनही कौं ॥
मैं भुजबल लहि कछुनहिँकीन्हौं। केवल जननी कौं दुख दीन्हौं ॥
हौं न डरत जम सौं रचि रारी। इक परलोकहि कौ डर भारी ॥
पुनि डर बड़ अधरम तैं मोकौं। तातैं पुरहि पठावत तोकौं ॥
छोड़ि धरम बिक्रम कौ करिबौ। उचित न मुहि बिन कारनलरिबौ
बिलपि राम इमि जन की नाहीं। भे रोवत निरजन बन माहीं ॥
बोले लखन बिनय अभिलाषे । सत्यबचन प्रभु तुम सब भाषे ॥
तुम बिन अवध भई अब ऐसी । चन्दरहित मावस निसि जैसी ॥
तजहु बिलाप करहु सुख सैना । तुमहिँ जियत जननिन दुखहै ना
सुनि बिलाप अस हम अरु सीता। लहियतु बहुत बिषाद अचीता॥
आपुहिँ योग न अस परतापू । हौ तुम आनदकन्द कलापू ॥
जनकसुता अरु हम ए दोऊ । तुम बिन छिन न जियहिँगेकोऊ
जननि जनक शत्रुघन जु भ्राता। तुम बिन चहहुँ न सुरपुर साता

दोहा ।

या बिधि बहु बातैं उचरि राम लखन दुहु बीर ।
सुनिशि बिताई तरु तरैं लै सर धनुष तुनीर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रिपंचाशत सर्गः ॥ ५३ ॥

छन्द ।

तहँ होत प्रात चले तबहिँ प्रभु प्रागदेशहिँ जाइ वैं ।
मग मग बिलोकत विपिन बहु तीरथ त्रिबेनी न्हाय वैं ॥
लखि भरद्वाजमुनीश आश्रम प्रभु सुलछ्मन सौं कह्यौ ।
मुनि होमधूम पवित्र जगपावन करत नभ छ्वै रह्यौ ॥

दोहा ।

गंग जमुन जल मिलि सुनहुँ गरजत जनु घनघोर ।
तीरथपति अघ बिजय हित किय जनु दुंदुभि सोर ॥

चौपाई ।

या बिधि वचन कहत रघुराई । मुनि आश्रम ढिग पहुँचे आई॥
मुनि शिष्यन पर आयस लैकैं । गे मुनिनिकट सहरषित ह्वैकैं ॥
किय प्रनाम निजनाम सुनाई । हौं दशरथसुत सँग लघु भाई ॥
जनकसुता यह जो ममजाया । चाहत हम सब तुमरी दाया ॥
दशरथ हमकहँ बनहिँ पठाये । सुबड़ लाभ तुव दरशन पाये ॥
मानि सुपितुबच फल दल भोगी। हौं बसिहहुँ बन ज्यों रिषिजोगी
यों प्रभुबचन सुनत मुनिराई । बिनसी सुसिधि मनहुँ पुनिपाई॥
तजि आसन मुनि प्रभु सों भेटे । लाइ उरहिँ सुख सकल समेटे ॥

अँग अँग पुलकि नयनजल छायौ। प्रेमविवस मुनि आदर ठायौ ॥
अरघ आचमन आसन दीन्हौ । दै फल मूल सु पूजन कीन्हौ ॥
यों मुनि बहु रघुपति सनमानै । बैठि तहहिँ इमि वचन बखानै॥
मम जप तप मष सुकरम साजू । भे अब सुफल तुमहिँ लखिआजू
गंग जमुन संगम लखि लीजे । मुनिममबिनति इतहिँथितिकीजे
सुनिमुनिबच रघुपति यह कह्यऊ। निज निवसव मम इत नहिँचह्यऊ
यह थल निकट अवधपुर तें है । मुहि सुनि नगर सकल इत ऐहैं
तातैं कहु इक तपथल कहिये । सुख सों सीयसहित जहँ रहिये॥
रामवचन सुनि मुनि तब कह्यऊ। बसिवैं जुगति सुथल जो अह्यऊ॥
चित्रकूट इक गिरवर नीको । परमपवित्र सुखद सबही को ॥
चित्रकूट गिर सिषिर निहारैं । अघ बिनसहिँ हुलसहिँ सुखधारैं
तहँ तप करि सबहुन सिधिपाई। चारिहु फलनि फल्यौ गिरिराई॥
चित्रकूटगिर सिषिर विलोकैं । खर सूकर पहुँचत सुरलोकैं ॥
तहहिँ बहत मन्दाकिनि गंगा । सुपय पयस्विनि तरलतरंगा ॥
वन प्रमोद तहँ लसत सुहायौ । रहत सकल मुनिगन तहँ छायौ॥
मरकट भालु सुखग मृग नाना । सोभित ललित लतान विताना॥
कन्द मूल फल दल अति नीके। है गिर वन बिच स्वाद अमीके॥

दोहा ।

चित्रकूट बरनन सुनत सुनिशि बिताई राम ।
न्हाइ त्रिबैनी माँगि सिष मुनि कहँ कीन्ह प्रनाम ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुःपंचाशतः सर्गः ॥ ५४ ॥

छन्द ।

तब है सुआसिष राम कौं मुनि भरद्वाज कह्यौ यहै ।
जमुना उतरि वट स्याम नामक उच्च अति प्राचीन है ॥
ताकौं करहिँ सिय जाइ प्रनपति निज मनोरथ गाइ कैं ।
तुम चहहु तौ तहँ बास कीजहु चहहु आगैं जाइ कैं ॥

दोहा ।

है तहँ तैं इक कोस पर विपन भयंकर भार ।
चित्रकूट कौ मग वहहि मैं देखहुँ बहु बार ॥

चौपाई ।

यदपि राम तुम त्रिभुवन ज्ञाता। सुर मुनि मनुज सबनि के त्राता
राह तदपि मैं तुमहिँ बताई । छमियहु यह बड़ मोर ढिठाई॥
लेहु असीस हमरि चिरजीजे । तुव पदप्रेम लहहुँ बर दीजे ॥
या कहि मुनि निजआश्रमकाजैं। फिरत भये तहँ तब रघुराजैं ॥
किय प्रनाम मुनिकहँ कर जोरी। सुमुनि चले निज आश्रम ओरी॥
भरद्वाजमुनि मन दृढ़ करिकैं । द्वै पग चलहिँ सुसाहस धरि कैं॥
होइ रहहिँ पुनि छिनइक ठाढ़े। लखि वै रामचरन छवि बाढ़े ॥
ज्यौं त्यौं मुनिइमिनिजथलगयऊ। राम तबहिँ लछमन सौं कह्यऊ॥
हौं वड़भागि सुनहु लघु भाई । जु मुनिकृपा करि राह बताई ॥
यों कहि प्रभु गे जमुनातीरै । काटे तरु लखि सलिल गँभीरै॥
रचिवोहित चढ़ि तिहु चलिभेई। सामाजुत मझधार गयेई ॥
भाषी तबहिँ जमुन सौं सीता । हौं एहहुँ बन करि जु पुनीता॥
तव तुव प्रीति निमित बहु गाईं। देहहुँ द्विजन विभूषन छाईं ॥

सो घट सुभग सुरानि भराई । पुजिहहुँ तोहि तरनि की जाई ॥
यहहि कहत पहुँचे उहि पारैं । वोहित लग्यहु सुदखिन किनारैं ॥
सीय उतरि बटस्याम समीपै । जाइ प्रनति किय सुपरि महीपै ॥
जोरि सु कर सियबचन उचारी । है तूँ मम पतिव्रत रखवारी ॥
होहु क्यौं न तुम बट दृढ़ मूला । परिहित धरहिं सुदल फलफूला ॥
सुवट मोहि तुम यह वर देहू । घटहि न घट तैं रामसनेहू ॥
रामसहित बन व्रत करि आऊँ । दरशन पुनि सामुन के पाऊँ ॥
तबहिँ चली तहँतैं रघुराई । सीयसहित बन विपिन मझाई ॥
राम कह्यउ लछमन सौं एही । तोरहु फल जु चहहि वयदेही ॥
जमुना तैं इमि चलि इक कोसू । प्याहिहिँ उलँघि विपिन मगठोसू

दोहा ।

मारि मृगनि पचिपल विमल करि भोजन सुख पाइ ।
नदी तीर पर बसत भे ससिय लखन रघुराइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचपंचाशत सर्गः ॥ ५५ ॥

छन्द ।

उठि तहाँ तैं प्रभु न्हाइ प्रातहिँ चित्रकूटहि कौं चले ।
मग मग दिखावत सीय कौं बन विपिन सोभागन भले ॥
फूले पलासनि विल्वफल धव खदिर वृन्द लतान कौ ।
इत लखहु लखन मधूप तरु तरु पर पियूष समान कौ ॥

दोहा ।

नचत मोरकर सोर वह चित्रकूट गिरि अंग ।
लख्यो परत मधुमत्त जहँ मंजु गुंजरत भृंग ॥

चौपाई ।

सुन्दर बिपिन बिचित्र पखेरू । निरमलजल मुनि बसत घनेरू ॥
चित्रकूटगिरिराज निहारौ । जासु सचिव मुनिगन श्रुति चारौ ।
बहु गिरि मरकट सैन अपारू । बन्दीजन सुक सारिक चारू ॥
छत्र बिटपि बट पटु पिक डाढ़ी । कुरर नकीब करत धुनि गाढ़ी ॥
महत मोरछल मोर पुकारैं । सु कबि सु कीचक सुजस उचारैं ॥
जो आवत गिरिराज समीपै । देत तबहिँ फल चार महीपै ॥
करत राम इमि सुगिरि बखानैं । बालमीक के पहुँचे थानैं ॥
मिलिमुनिसौं प्रभु कीन्ह प्रनामा । लख्यहु सुगिरि थल थल अभिरामा
दै असीस मुनि प्रभु सनमानैं । निजकर तोर सुफल दल आनैं ॥
सुमुनि कुशासन दीन्ह बिछाई । ससिय लखन बैठे रघुराई ॥
तबहिँ राम लछमन सौं कह्यऊ । सूखे सुतरु लिआयब चह्यऊ ॥
परनकुटी रचि रहिये इतहीं । तबहिँ लखन उठिगे बन तितहीं
काटि सुकाठन कुटिय बनाई । छाइ तिननि बड़ि बाड़ि लगाई
परनकुटी लखि प्रभु सुख पायौ । बहुरि लखन सौं यह फुरमायौ ॥
मारि मृगनि ल्यावहु बहु मासू । करिहहुँ ग्रहपूजन सुखरासू ॥
लखन तबहिँ मृगमारि लियाये । जोरि सु कर ये बयन सुनाये ॥
हमहू रत अब ग्रह मष कीजे । परनकुटीमहँ पुनि पग दीजे ॥
या कहि कृष्ण कुरंग कौ मासू । बारिअगिनिसिधिकियअतिआसू
न्हाइ तबहिँ प्रभु ग्रह मष ठाना । दिय सब देवन कौं बलिदाना ॥
जुहुत सेष पल रघुहु सुहायौ । सो तहँ तबहिँ तिहुन मिलिखायौ

दोहा ।

करि भोजन सुख सौं बसे परनकुटी महँ जाइ ।
नहिं सुमिरत सुख औधि कौ सु बिसराम तहँ पाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षटपंचाशत सर्गः ॥ ५६ ॥

छन्द।

यौं प्रभु सुमन्त्रहि छोड़ि सुरसरि उतरि दच्छिन पार ह्वै।
चलि चित्रकूटहि मैं बसे तब सचिव दीन अपार ह्वै॥
गुह सौं कहत गुन राम के ठिक ठौरही ठाढ़ौ रह्यो।
तहँ आइ प्रभु बिरतन्त सब गुह के सु हलकारन कह्यौ॥

दोहा।

भरतद्वाज मुनिराइ सौं मिल प्रभु प्राग अन्हाइ।
उतरि कलिंद्री गे जहाँ चित्रकूट गिरिराइ॥

चौपाई।

सुनत सचिव पुरकहँ चलि भयऊ। हाँकि हयन रथचढ़ि दुख छयऊ॥
सोचत मनहिँ मनहिँ मग ऐसैं। का ह्वै वदन दिखैहहुँ कैसैं॥
ल्यायहु प्रभुकहँ सुरथ चढ़ाई। क्यौं पुर धसिहहुँ बिन रघुराई॥
किय जलपानि न कहुँ कछु खायौ। रोवत है दिनमहँ पुर आयौ॥
साँझ समय तिहिँ अवध निहारी। सु छबिरहित जनु विधवानारी॥
सुनि न परत कहुँ सोर सरावा। कोऊ पुर मग नजर न आवा॥
मग लखि सून सचिव तब सोचौ। का सबहुन निजजीवन मोचौ॥
या बिधि राजदुआरहिँ आयौ। सुनि पुरजन सब पूछन धायौ॥
तब सुमन्त्र तिनसौं यह कह्यऊ। हौं सिखि लहि पुर आवत रह्यऊ॥
गे प्रभु गंग उतरि उहि पारै। सुनि पुरजनगन बिकल अपारै॥
हा राघव हा दशरथनन्दन। हा सिय हा लछमन जगवन्दन॥
यौं कहि कहि सिर उर धुनि रोवैं। रामरहित रथ जो जब जोवैं॥
कहुँ दस बीसक कहुँक पचासू। पुरजन कहहिँ सुलेत उसासू॥
देखहिँगे कबधौं पुनि रामै। प्रतिपालक पितु सम गुन धामै॥

अब न कहूँ सुख प्रभुबिन पैबौ । धुनत धुनत उर सिर मरि जैबौ॥
उभकि झरोखन ह्वै पुर नारी । रोवहिं रथ लखि दुसहदुखारी॥
या विधि सुनत सुमन्त बिलापू । राजभवन पहुँच्यहु तन तापू ॥
ड्यौढ़ी उलँघि चल्यहु रथत्यागी । महल महल रोदन धुनि जागी॥
या बिधि कहहिं सकल नृप बामैं । आयहु सचिव बिपिन तजि रामैं
कौशिल्या सौं कहधौं कहिहै । रामजननि अब जियत न रहिहै
सुनत सु यों रानिन की बातैं । देख्यहु नृपकहँ सचिव जहाँतैं ॥
तहँतैं करत प्रनति ढिग आयौ । रामकथित बिरतन्त सुनायौ ॥
सुनि दशरथ मुरछित ह्वै परेऊ । हा हा रव महलनमहँ भयेऊ ॥
तबहिं सुमित्रहु कौशिल्याहू । नृपहिं उठाय लिये गहि बाहू ॥
कछु सचेत लखि बचन सुनायौ । सचिव राम ढिग तैं यह आयौ॥
करि अनीति प्रथमहिं जगमाहीं । अब न उचित जो बोलत नाहीं॥
तुम्हर शोक सुनि अवध बिनासू । ह्वैहै अबहिं उठहु तजि त्रासू ॥
कयकेई दूत है नहिं यातैं । सुनहु सचिव सौं सुत की बातैं॥
कौशिल्या यों उचरि तहाँहीं । लहि मुरछाहि परी महि माहीं

दोहा ।

रोई नृपरानी सबै सदा दुहुन की देखि ।
को अस जो न दुखी भयौ अति अभाग निज लेखि ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तपंचाशतः सर्गः ॥ ५७ ॥

छन्द ।

तब नृपति तजि मुरछा बिकल अति सचिव सौं बूझत भये ।
लै प्रान मन मम तोहि तजि कित रामचन्द्र कहाँ गये ॥

किहि तरुतरैं बसि परत कैसैं सुख सयन गृह छोड़ि कैं ।
क्यों रहत निर्जन बिपिन बिच निज तन दुसहदुख ओड़ि कैं ॥

दोहा ।

तात बयार लगी न जिहिं सो सिय अति सुकुमार ।
तजि रथ निज पाइन चली किहिं बिधि विपिन मझार ॥

चौपाई ।

राम लखन मोकहँ का कह्यऊ । सियहुँ कहा पुनि बचन उचर्यऊ ॥
भोजन सयन गमन तिहु केरौ । कहहु होइ छिन जीवन मेरौ ॥
गदगद बानि सुमन्त बखानी । नाथ सुनहु रघुबर की बानी ॥
करि प्रनपति तुम नृप सौं आछैं। मम प्रनाम कहियहु ता पाछैं ॥
छेम कुशल पुनि मम कहि दीजो। कौशिल्या सौं प्रनति कहीजौ ॥
पूछि कुशल यह बिनती कहियौ। सेवत चरन नृपति के रहियौ ॥
अगिनहोत्रशालामहँ जाई । सोइ अगिन करु धरम सिहाई ॥
करु सनमान सु कयकेई कौ । भरत मान रखु नृप सम नीकौ ॥
कहियहु कुशल भरत सौं मेरी । दै असीस दीजहु सिखि फेरी ॥
इक सम सब मातन सब मानौ। जु नृप हुकुम सो सिर धरि ठानौ
बहुरि नृपति सों यहहि कहीजे। राज अवध को भरतहि दीजे ॥
यौं कहि राम नयन भरि लीन्हें। लखि लछमन बोले रिस कीन्हें ॥
रघुपति अस अपराध न ठायौ । जो इनकहँ नृप बनहिं पठायौ ॥
कामबिबस नृप तियबस ह्वै कैं । किय शुभकाज अशुभ बर दै कैं ॥
तातैं हम सबहुन दुख छायौ । नृप यामहँ कहु का फल पायौ ॥
दैव बिबस होनी जो जानौ । तदपि दोष नृप सिर मड़ानौ ॥
बिन बिचार कारज यह ऐसौ । कोऊ करत न नृप किय जैसौ ॥

पितु करिहौं न नृपहि ठिकठानौ। भ्रात सुपितु प्रभु रामहिँ जानौ॥
रघुपति सम सुत काढ्यहु ऐसैं । दशरथ नृपति कहैहहि कैसैं ॥
या बिधि बहु लक्षमनबच बोले। जनकसुता कछु बचन न बोले ॥
रामबदन लखि सिय तहँ रोई । सूखि गयहु तन जनु बिष भोई॥

दोहा ।

बचन राम अरु लखन के कहे सु तुम सौं आइ ।
जनकसुता की जो दसा सो कछु कही न जाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टपंचाशतः सर्गः ॥ ५८ ॥

छन्द ।

यौं कहि सुमंत्र महीप सौं पुनि ये बचन बोलत भयौ ।
है सिखि सु मोकहँ राम गे बन हौं सरथ तितहीं ठयौ॥
कछु दिन रह्यौ गुह के निकट पुनि मोह बहुरि बुलाइ हैं ।
यह आस टूटी जबहिँ तब अँग अंग गे सिथिलाइ हैं ॥

दोहा ।

फिर्‌यौ तहाँ तैं लै रथहि देख्यो देस तुम्हार ।
दुखित सबै इक राम बिन काहु वै कछु न सम्हार ॥

चौपाई ।

फलत न फूलत सुतरु सुखानै । सुसर तपत जलचर बिललानै ॥
भूचर खचर जनावर जेते । चुनत न चुन जल पियत न तेते
बालक वृद्ध तरुन नर नारी । आयहु लखत दुखित अतिभारी
रामरहित रथ लखि जहँ जोऊ । हा रघुपति कहि रोवत सोऊ ॥

दीखि दुखित अब यह रजधानी। जासु विपति नहिँ जात बखानी
यों सुनि सचिववचन नृप रोयौ। बोल्यौ तबहिँ दुसहदुख भोयौ ॥
सुनहु सचिव सुन तिय की वानी। तुम सब सों मसलहत न ठानी॥
इक कयकेइहि के हित रामै । जान दियहु निरजन बनितामै॥
होनहार यहही कछु ऐसी । उपजी कुमति तबहिँ मुहि तैसी
ताकौ दुख अब सह्यउ न जाई। लै चलि मुहि तहँ जहँ रघुराई॥
कै पुनि सुतहि विपन तें ल्याओ। बहुरि रामकहँ हगनि दिखाओ॥
रहि न सकत अब प्रान हमारे । बिन देखहिँ इक रामपियारे ॥
यों कहि नृप अतिव्याकुल भौई। हा राघव हा राम कह्यौई ॥
हा सिय हा लछमन हा रामा। तुम बिन मोहि न कहुँ विसरामा
हौं अनाथवत मरत यहाहीं । क्यों तुम आइ विलोकत नाहीं ॥
यों नृप बिलपत शोक नदी मै। भौ डूबत अति व्याकुल जी सें ॥
रामबिरह जलधार अपारा । दोउ है बरदान किनारा ॥
जिय ग्राहक ग्राहिनि कयकेई । उठत उसास भ्रमत भ्रमतंई ॥
रज परि हग सलिल सुकाँदा । आरत शबद भयङ्कर नादा ॥
बिथुर रहे सिर बार सिवारू । डूबत नृप तहँ लहत न पारू ॥
रोइ कहत नृप हे रघुराई । हौं डूब्यहु किन होत सहाई ॥

दोहा ।

यौं विलपति नृप गिरि पर्‍यौ तवहिं मूरछा खाइ ।
कौशिल्या लखि कहि उठी होत कहा अब हाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

छन्द ।

अति रोइ कौशिल्या तबहिँ इमि सचिव सौं बोलत भई ।
जहँ गे लखन अरु राम सीता हाइ हौं तहँ नहिँ गई ॥
अब मोहि तूँ लै चल सुमन्त्र जहाँ गये चलि राम हैं ।
सुतमुख बिलोकैं बिन लहत नहिँ प्रान कहुँ बिसराम हैं ॥

दोहा ।

सुनि कौशिल्या के बचन बोल्यौ सचिव सुबैन ।
तुमहिं उचित इमि सोक नहिं हैं बन राम सुचैन ॥

चौपाई ।

करत लखन तहँ प्रभु की सेवा । तुव सुत सब देवन को देवा ॥
पाइ सुपति सँग तहँ बयदेही । बन बिचरत जिमि निजगृह गेही ॥
सीय निरखि सरिसरित बिहंगा । बिबिध सुतरु सुरग्राम कुरंगा ॥
बूझत नाम जबहिँ जहँ जाई । राम लखन तहँ देत बताई ॥
बनमहँ सिय इमि रहत सुखारू । जनु निजबागनि करत बिहारू ॥
बन गज बाघ निरखि मृगराई । डरति न सिय प्रभु भुजबलपाई ॥
तिनहित सोच करहु मति ऐसैं । राम सुखित बन बसि ऋषि जैसैं ॥
फल फल मूल भखति नित नीके । तिनहिँ न बिपति सुपति जे सीके ॥
पालत पितुपन बसि बनमाहीं । जहँहिँ राम सुख सकल तहाँहीं ॥

दोहा ।

सुनि सुमन्त्र बचनहिं लह्यौ कौशिल्या बिसराम ।
लैं उसास भाषति भई हा राघव हा राम ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

छन्द ।

या बिधि सुकौशिल्या बिलपि बच नृपति सों बोली तबै ।
तुमकौं दयानिधि सत्यब्रत तिहुलोक जानत है सबै ॥
सियसहित सुत कौं बनहिँ भेजत सु वह करुना कित गई ।
क्यों सहहिंगे दुख राम लछमन जनकनन्दनि ए दई ॥

दोहा ।

जु सिय सुभोजन करतही भरि कंचन के थार ।
सो बन कैसें कराहिगी कुफल मूल आहार ॥

चौपाई ।

बीन मृदंग सुनतही तैसें । केहरि रवि सुनिहहि सो कैसें ॥
कब लखिहहुँ सुतबदन सुभाँती । कुलिशकुठोर फटत नहिँ छाती॥
अस अबिबेक न तुमकहँ चहिए । काढ़ि सुतनि मम तनमन दहिए
बन करि राम सुजीवत ऐहैं । क्यों तब राज भरत तजि दैहैं ॥
अमृतहु सम किन होइ जु वैसें । जूठ न खात न द्विज वर जैसें ॥
त्यौं इह भरत भुगत ठकुराई । भोगहिंगे न कबहुँ रघुराई ॥
ज्यौं बनबाघ वृकन के मारे । भषहिँ न मृग पलवल के भारे॥
या बिधि बड़ पुरुषन की रीती। भोगहिँ भूमि जु निजबल जीती॥
इक मखहुत बचि रहत जु सामा। ज्यौं आवत नहिँ बिय मष कामा
त्यौं गतिसार जु राज तिहारौ । चाहहिगौ नहिँ पुत्र हमारौ ॥
पूँछ परसि जिमि सहत न सेरु । त्यौं सुभाव सु पुरुष कौ हेरु ॥
जो अधरम ठानहि तिहि दंडै । सो नर क्यौं कहुँ पातक मंडै ॥
अघलखि राम भरत के ताईं । काढ़हिंगे न सु रिपु की नाईं ॥
चहँहिँ राम तौ त्रिभुवन नासैं । भसम करहिँ चहि बहुर प्रकासैं॥

राम डरत इक अधरमही तैं । सुमन सहित सब इन्द्रिन जैतैं ॥
तुम असमुत कँहँ राज छुड़ायौ । जाकौ कहहु कहा फल पायौ ॥
मीन भषत मीनाहिँ जल जैसैं । यह अनरथ किय नृप तुम तैसैं ॥
मोकँहँ अवगति कहुँ नहिँ सूझैं । दुसह सोच सोचहिँ मन मूझैं ॥
निगम कहत गति नारिन काजैं । निजपति सुत पुनि बंधु समाजैं ॥
ह्वै पति तुम ममगति यह कीन्हीं । तजिपुनिसुतहुँ बिपनगतिलीन्हीं
कहत बंधु जो कछु तुम कहऊ । तातैं ठौर न मुहि कँहुँ रहऊ ॥
गयहु राज यह निहचै जानौ । नृप पतिनी दैहहिँ तजि प्रानौ ॥
सचिव पुरोहित सब मरि जैहैं । भरत जननि अरु भरत सु रैहैं ॥
राम जननि नृप सौं कहि बानी । किय रोदन सुत सोक समानी ॥
हा सुत हा रघुपति हा बच्छा । होत न कत मम दृगनि प्रतच्छा ॥

दोहा ।

यौं कहि कौशिल्या तबहिं परी मूरछा खाइ ।
निरख नृपति सुमिरत भयौ निज करनी अकुलाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

छन्द ।

या विधि जु कौशिल्या नृपति सौं क्रूरवच बहुतै कहै ।
तब दीन ह्वै दशरथ्थ तहँ निज कुमति हो सोचत रहै ॥
बोले सु कौशिल्याहि सौं कर जोर इमि ताही समै ।
तैंहूँ करत अस रोसु अबतौ को जिवावत है हमै ॥

दोहा ।

ह्वै प्रसन्न सुन मम बचन तो सम को प्रिय मोहि ।
कबहुँ रोस ठानत नहीं कहा भयौ अब तोहि ॥

चौपाई ।

निजपतिहोहि जु अतिअघकारी । तदपि न ताहि तजित कहुँ नारी
पति परतच्छ तियन कौ देवा । तातैं तिनहिँ उचित पतिसेवा ॥
सो तूँ सब जानत का कहँऊँ । मैं इक तुव परसनता चहँऊँ ॥
कहु मति दुखद बचन दुखमाहीं । त्रिभुवन महँ तोसम तिय नाहीं॥
यौं कहि नृपति दुखित ह्वै रोयौ । रामजननि जब निज दृग जोयौ॥
कौशिल्या लखि तबहिँ डरानी । काँपत तन दृग बरसत पानी ॥
स्वामि सुकर निज सिरपर राखी । रोदन करि परिपाँइन भाखी ॥
हौं तौ इन पाँइन की चेरी । छमहु नाथ बड़ चूक जु मेरी ॥
हनहुँ चहहु चाहहु मुहि पालौ । हौं अतिअधम जु दीन्ह कसालौ॥
देहु गारि पुनि ममसिर फोरौ । बिनति यहहि तुम कर मति जोरौ
जु तिय सुपति सौं कर जुरवावे । सो न कबहुँ कहुँ सदगति पावै ॥
हौ तुम नाथ सदहुँ अनुकूला । सत्य धरम सुद मंगलमूला ॥
करहुँ कहा सुतशोकहि पाई । अनुचित बानि सु तुमहिँ सुनाई
धीर धरम श्रुत श्रवन सुमासै । इन सबहुन इक शोक बिनासै ॥
सहहिँ जु अरि आयुध रनमाहीं । शोक तनक तिहिँ सह्यहु न जाहीं
ये बिन सुत दिन पाँच गयेई । शोकबिवस सर सम सम भेई ॥
या बिधि बचन कहत रबि डूबे । मुदित उलूक चकित चकऊबे ॥

दोहा ।

सुनि कौशिल्या के बचन इमि नृप लहि कछु चैन ।
नींद बिवस पौंढत भए निरखि रैन निज नैन ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

छन्द।

पुनि कछु सचेतन ह्वै नृपति सुतबिरहवस अँग अँग दहै।
निजमनहिँमन निजकृत करत तिनकी फलनि सुमिरत रहै॥
पुनि राम कौं बन गये छठही राति के आधै समै।
बोले सुकौशिल्याहि सौं दशरत्थ डूमि बड़ दुख हमै॥

दोहा।

पदमाकर को कौन कौं सकै सुदोष लगाइ।
जो जैसे बीजन बवै सो तैसे फल खाइ॥

चौपाई।

मो सम नृप मतिमन्द न दूजौ। किय अघकरम बनत नहिँ कूजौ
सहसा कर्म करहि जो कोऊ। मो सम गनहु कुमूरख सोऊ॥
काटि रसाल बिपिन रसिरासू। सेवहिँ फूल न निरखि पलासू॥
सुफल समय सोचत जन जैसैं। मोर करम जानहु तुम तैसैं॥
हौं पितु जियत हुतो जुबराजा। लहि बय तरुन सुभग तन साजा
भयहु सबदवेधक सर वाही। तूँ न हुती मोकहँ तब ब्याही॥
एक समय बरषा ऋतु आई। किय मेघन चहुँओर अवाई॥
हरित लता तरु तरु लपटानी। रिमिझिमि झरनि झरतघनपानी
बाढ़े नदिन नदिन परवाहू। छायहु तम लखि परत न राहू॥
हौं मृगया बस तबहिँ हुतोई। सबद सुनत मृग मारत भोई॥
इक निशि आधिक राति तहाँहीं। आयहु इक ऋषि सरजू माहीं॥
भरिवै नीर सुघट लै आयौ। नीर भरत घट रव यौं छायौ॥
हौं जान्यहुँ यह रव गज कीन्हौ। तानि कमान तबहिँ सर दीन्हौ॥
सर लागत मुनि तबहिँ पुकारौ। बिन अपराध कवन मुहि मारौ॥

हौं मुनि नीर भरन द्रुत आयौ । जननि जनक हित भयहु कहायौ
काहू कबहुँ न काहुँ दुख दीन्हौ । धारि जटा बलकल तप कीन्हौ॥
निहनि मोहि वह का फल पैहै । हनत हन्यहुँ लखि पुनि पछितैहै
सुजनन कौ न करम यह ऐसौ । गुरु तिय गमन विनिन्दित जैसौ
सु मरन कौ मुहि सोच न एतौ । सोच जनक जननी कौ जेतौ ॥
जे वय विरध अबल अरु आँधे । जीवत मम मोहहि के बाँधे ॥
मो बिन अब जीवहिंगे कैसें । हौं द्रुत या विधि मरहुँ अनैसें॥
यों सुनि करुन वचन मुनि केरौ। मैं चलि तहहिँ गयहु दुख घेरौ॥
लख्यहु जाइ वह सुमुनि कुमारा। पर्यहु विकल मम सर कौ मारा
मुनि मुहि देखत वचन उचारौ। मैं का किय अपराध तिहारौ ॥
जननिजनकहित जलकहँआयौ । तुम सरहनि मुहि ह्रयहिँ गिरायौ
आँधे जननि जनक मम दोऊ । बिनजल मरि जैहहिँ अब सोऊ॥
ह्वैहहिँ द्रुत यह आस जु कीन्हैं। आवन चहत तनय जल लीन्हैं ॥
मम तप तपश्रुत सेवन जेतौ । गयहु व्रयहिँ देखत दुख एतौ ॥
दोऊ तृषित न जानत ऐसौ । किय समगति सर हनि तुम जैसौ
जानि कहा करिहहिँ दृगहीनैं । पगबल-रहित विरध तन छीनैं ॥
तातैं तुम अब तिनढिग जाऊ । जु ममदशा सो सकल सुनाऊ ॥
तौ न तुमहिँ ते दैहहिँ श्रापै । नहिँ तौ भसम करहिंगे आपै ॥
यह मग ममआश्रम कौ जानौ। जाहु तहँहिँ अब विलम न ठानौ॥
करहु प्रसन्न दुहुन कौं जाई । याही मह इक तुम्हर भलाई ॥
खैंचहु सर मम मरम विघाती । सहि न सकहुँ दुख फाटत छाती॥
सुनत सुमुनिवच मम उरदाऊ । समुझितवहिँतिहिँयाविधिकहाऊ
जाति सुनहुँ ममधीरज धारौ । शूद्र जननि पितु वनिक हमारौ ॥

तुमहिँ न पातक द्विजबध केरौ। इहिविधि मरन हत्यहु इत मेरौ॥
याकहितहिँमुनिकँहँजमचाष्यौ। फिरगे नयन सकल तन काँप्यौ॥
खैंचहु जबहिँ मरम तैं बाना । कढ़िगे तबहिँ सुमुनि के प्राना॥

दोहा।

श्रवण नाम मुनि कौ मरन या बिधि लखि तजि धीर।
हौं छिन इक ठाढ़ो रह्यौ सोचत सरजूतीर॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः॥ ६३॥

छन्द।

या भांति बिन जानहिँ जुमुनिबधकृत महा पातक लह्यौ।
सो सोचि कौशिल्याहि सौं बिरतंत नृप पुनि यह कह्यौ॥
तब मैं कलस भर नीर सौं मुनि के सु आश्रम कौं गयौ।
तहँ जाइ मुनि के मातु पितु अति वृद्ध वय देखत भयौ॥

दोहा।

नयनहीन दोऊ तृषित मम पग आहट पाइ।
आयहु सुत यह जान बच बोल्यौ अंध सुनाइ॥

चौपाई।

सुत क्यौं इतक बिलंब लगाई। प्यावहु नीर तृषित तुव माई॥
कीन्ह कहा तुम सलिल बिहारू। तातैं बिलम लगायहु भारू॥
कह्यहु जु होहि जननि कछु तोसौं। तौ तुम क्षमहु कहहु पुनि मोसौं॥
तुहिँगत तुहिँमति तुहिँ पगप्राना। तुहिँजीवन तुहिँ नयननिधाना॥
लाग रह्यहु मन इक तोही सौं। बोलत क्यौं न बचन मोही सौं॥

यौं सुनि दीनबचन तिहि केरौ। हौं डरप्यहु तहँ तबहिँ घनेरौ ॥
मैं सुबचन तब तिनसौं कह्यऊ। हौं न तनय तुव दशरथ अह्यऊ॥
ल्यायहुं सलिल बिमल यह पीजे। मैं किय करम सुसब सुनि लीजे॥
हनत हत्यहु सरजू तट माहीं। बिपिनजंतु बहु खल के नाहीं ॥
तहँ जलभरत कलसरव छायौ। हौं समुझहु यह वनगज आयौ ॥
तबहिँ बान मैं ताकहँ मार्‍यौ। जाइ तहहिँ तुवतनय निहार्‍यौ॥
पर्‍यहु बिचेत जु सरके मारैं। पटकत मस्तक पाँइ पसारैं ॥
तासु बदन तैं जो सर काढ्यौ। मर्‍यहु सुतबहिँ बिलपदुख बाढ्यौ
तुम्हरसोचतिहिँबहुबिधिकीन्हा। प्रानन तजत सुहम सुनिलीन्हा॥
बिन जानहिँ अघ हम यह ठानौ। अबतुम करहु उचित जो जानौ॥
यौं ममबच सुनि तँहँ तैं दोऊ। शोकबिवस मुरछित भे सोऊ ॥
लहि नैसुक सुधि तबहिँ उचारे। सुनु दशरथ ए बचन हमारे ॥

छन्द।

जो तूं असुभ किय कर्म सो हमकौं न आय सुनाउती।
तौ सीस तुव सतटूक ह्वै अबहीं अवनि पर छावतौ ॥
जो जानि हनतौ मम तनय निज सीसधरि पातक महां।
तौ इन्द्रहू गिरतौ सरग तैं तुम्हरि तब्र गनती कहां ॥

दोहा।

तूँ नहि अब लगि जीवतौ जान जु हनतौ ताहि।
रहतौ रघुकुल कौं न कहुँ खोज सु मम उर दाहि ॥

चौपाई।

अब तुम हमकहँ तहँ लै चलऊ। मर्‍यहु पर्‍यौ ममसुत जिहिँथलऊ।
करगहि दुहुन तबहिँ तहँ ल्यायौ। जहँ मृततनय सु परस करायौ ॥

परसि ताहि तहँ मुरछित भेई । सुत सिर पर परि बहु बिलपेई ॥
तूं न करत कत हमहिँ प्रनामा । बोलत क्यौं न बचन अभिरामा ॥
उठहु लषहु बिलपति जननीकौ । ग्यावहु जल ज्यावहु मम जीकौ ॥
अब मैं कब सुनिहहु तुमबानी । आगम पढ़त अमृत रस सानी ॥
संध्या मुहि अब कवन करैहै । समिध हवनहित को लै ऐहै ॥
को दैहहि अब फल दल मूला । भयहु बिरंचि हमहिँ प्रतिकूला ॥
अंध जननि तुव हौं पितु तैसौ । पैहहुँ कब पुनि सुत तो कैसौ ॥
को अब हमर सु पोषन करिहै । निशिदिन सुख सेवन अनुसरिहै ॥
जाहु न सुत तुम अब जमद्वारैं । मरिहैं हमहुँ जु होत सवारैं ॥
मिलिजमसों कहिहहु यहबानी । हौ तुम रविसुत धरम निधानी ॥
करहु कृपा मम सुत पर ऐसैं । सेवहि बहुरि हमहिँ पुनि तैसैं ॥
तव जम हमहिँ अभय बर दैहैं । फिर न कबहुँ अपमृत्यु सतैहैं ॥
जननि जनक सेवन किय यातैं । हे सुत लहहु परम गति तातैं ॥
जे जूझत सनमुख रन माँहीं । परति पगनति जननि की ताँहीं ॥
पढ़त निगम विधिवत मखठानैं । दै महि देत सहस गोदानैं ॥
गुरु सेवहिँ जपतप ब्रत धारैं । जाइ सुहिमिगिरिमहँ तनगारैं ॥
ए सब लसत सुगति जग जैसी । हे सुत लहहु तुमहुँ गति तैसी ॥

दोहा ।

धुंधुमार शिविसुत नहुष सगर दिलीप नरेस ।
जुगति लही इन सबनि सो तुमहुँ लहहु सुत बेस ॥

चौपाई ।

काहुँ मम कुल कुगति न पाई । किय बिलाप इमिदुहुन सुनाई ॥
तब पुनि तिन सुत तरपन ठायौ । इन्द्रबिमान लियहिँ तहँ आयौ ॥

सुमुनि सुतहि तहँ लीन्ह चढ़ाई। किय मुनि बोधन बहु सुरराई॥
सुपितु मातकहँ सुतसिर नायौ। जोरिसुकर यह बचन सुनायौ॥
हौंकरि जसि तसि तुम्हरी सेवा। पायहु सुरग बसत जहँ देवा॥
ऐहहु बेग तुमहिँ सुर लोकैं। करहु न कछु तुम अब सुतशोकैं॥
यौंकहि मुनिसुत सुचढ़िबिमानै। सुरन सहित पहुँच्यह सुरथानै॥
तब अंधन यह मोसौं कह्यऊ। हनहुँ हमहिँ नृप लै सरवह्यऊ॥
हमहिँ न दुखकछु निज मरिबेकौ। तुम मार्‌यहु ममसुत जो एकौ॥
तासुत शोक मरत हम ऐसैं। सुतशोकहि मरिहहु तुम तैसैं॥
बिन जानहिँ मम हन्यहुँ अपत्या। तातैं तुमहिँ न लगिहहि हत्या॥
पै मरिहहुँ सुतशोकहि पाई। याबिधि मुहि पुनि श्राप सुनाई॥
दुहुन चितारचि तब तन दार्‌यौ। लीन्हि सुरगमग तिनहुँ सुचार्‌यौ॥
या बिधि दुष्ट करम जो करयऊ। ताकौ जुफल सुअवलखि परयऊ॥
यौं कहि नृपसुत शोकहि पाई। कौशिल्यहि पुनि बानि सुनाई॥
अबमुहि लखिन परत तूँ रानी। आयह काल अबहिँ मैं जानी॥
जे जमपुर कहँ करत पयानौ। सूझत तिनहिँ न तब कछु आनौ॥
है अब यह दुख मम मन माहीं। आवहिँ राम कुवहिँ जो वाँहीं॥
तौ मैं जियहुं कदाचित ह्याहीं। नहिँ तौ प्रान रहत अब नाहीं॥
सुतहि जु मैं बनवास करायौ। ताकौ अजस मरन फल पायौ॥
ममबच मान जु सुत बन गयऊ। ताकौ ताहि सुजस फल भयऊ॥
तज्यहु जु रामहिँ मैं अब जैसै। कोऊ कुसुत तजत नहिँ तैसै॥
अबकछु नयनन परत न दीसौ। डूबत मति तन जात जु पीसौ॥
ऐंठत अँग जमदूत दिखानै। अब बिन राम रखत को प्रानै॥
रामबिरह बस प्रानहुँ सूकै। रह्यहु न रुधिर सकल तन रूखे॥

पंद्रहसम लगि जिय जो कोऊ । रामबदन लखिहहि धनि सोऊ ॥
छिनछिन बढ़तजू राम वियोगू । इंद्रिन तज्यहु विषय रसभोगू ॥
यौं कहि रामजननि सौं बातैं । भयहु नृपति व्याकुल अधरातैं ॥
हा राघव हा राम पुकारा । हा सुत हा मम प्रान अधारा ॥
हा रघुपति हा अवधबिहारी । लेत न क्यौं अब खबर हमारी ॥
हा प्रभु हा लछमन हा सीता । हा कयकेयि कुमति अपुनीता ॥
रामजननि हा लछमनमाता । रामबिरह अब को मम त्राता ॥

दोहा ।

हा ममजीवन जगतपति हा लछमन के भ्रात ।
या बिधि लहि सुतशोक नृप तजे प्रान अधरात ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥

छन्द ।

तहँ होत बड़ भोरहिँ सुबंदीजन सुजस उचरत भए ।
बहु करत गायक गान बहु बिधि होइ ड्योढ़ी पर ठए ॥
सुनि गान खग जागे तबहिँ सुकआदि पुनि पिँजरान के।
कहि कहि सुनावत भे सबनि सुभ नाम श्रीभगवान के ॥

दोहा ।

लै जल चंदन बसनवर उदवरतनिनि समेत ।
आए गन खोजान के नृप अन्हवावन हेत ॥

चौपाई ।

दरसन हित दधि धेनु कुमारीं । पान करन हित औषधि न्यारीं ॥
भे ल्यावत सब मंगल साजा । करिकरि सिद्धि नृपति के धामा ॥

सुबहु खरे तहँ मन मन सोचैं । आज न क्यौं नृप नींदहि मोचैं ॥
दासीं तबहिँ जगावन आईं । निरखि नृपहिमृत अतिअकुलाई ॥
कौशिल्या अरु लछमनमाता । सोवतहीं तहँ विह्वल गाता ॥
सोवहिँ मृतक मनहुँ सब रानी । दासीं सकल निरखि हहरानी ॥
रोईं तबहिँ सबै मिलि दासीं । हा हा हा रव करि तन त्रासीं ॥
तिनकौ सबद सुनत दुहुरानीं । जागीं तबहिँ विकल बिललानीं ॥
परसि नृपति उर सिर कर माथा । रोईं कहि हा पति हा नाथा ॥
ह्वै मुरछित नरपति के ऊपर । गिरतभईं कटि तरु जिमि भूपर ॥
कयकेई आदिक नृप रानी । रोईं करि करुनामय बानी ॥
महल महल आरत रव छायौ । मनहुँ प्रलयघन सबद सुनायौ ॥

दोहा ।

नृप तिय साढ़ेतीनसै ह्वै अनाथ इक बार ।
रोईं सिर उर धुनि सबै का ह्वै कछु न सम्हार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

छन्द ।

उठि देखि कौशिल्या सुपति कौ सीस करि निज गोद मैं ।
बोली सु कयकेइहि सौं अति शोकजुत अविनोदमैं ॥
ए सवति दुखदाइनि कसाइन तोरि चितचाही भई ।
नृप मयहु ममसुत गौ बनहिँ मैं मरन चाहत नहिँ गई ॥

दोहा ।

हत्यारिन अब लौं न तूँ कछु समुझी उर माह ।
कुटिल कूबरी के कहैं हन्यौ रघूकुल नाह ॥

चौपाई ।

हा यह सुनि गति जनक बिदेही । जीवहि गौ नहिँ परम सनेही ॥
हा अब निपट अनाथ भई मैं । जो न तनय सँग विपिनगई मैं ॥
सुनिहहिँ रामजु नृपगति ऐसी । लखन सहित करिहिँ धौं कैसी ॥
बड़ दुख लहिहहि जनककिशोरी । बसत जु बनबिच बय की थोरी ॥
सुनत सुता दुख जनकनरेशू । तन तजिहहि लहि दुसहकलेशू ॥
हा अब मै न अवध में रैहौं । बिरचि चिता नृपसँग जरिजैहौं ॥
आइ सुजन तहँ समुझि तबैई । कौशिल्याहि उठाय सबैई ॥
लैगे दूर नृपति तैं ऐसैं । जनजीवन जम के जन जैसैं ॥
लै कराह इक तहँ भरि तेलू । दीन्ह सुनृप तन तामहँ मेलू ॥
सचिव बिचार करत सब ईहै । बिन सुत नृपतिक्रियाकिमि ह्वै है
तातैं नृपतन की रखवारी । राखहु तेल कराहहिँ डारी ॥
सुकरि उठाय तबहिँ नृपरानी । रोईं सब कहि आरतबानी ॥
हा नृप हम बिन राम जु दीना । तिनहिँ तज्यहु तुम यह कह कीना
हा हम ह्वै बस कइकेई के । जीवहिँगी न कहहुँ बिन पी के ॥
इक सुत राम हमर रखवारी । सो इहि पापिनि प्रथम निकारी ॥
खाइगई नृपकहँ कयकेई । को अस जाहि न भषिहहि येई ॥
यों कहिकहि नृपतिय सब रोईं । ह्वै बहु बिकल करुनरस भोईं ॥
हाहाकार नगरमहँ परयऊ । सुनि यह नृपनिजतन परिहरयऊ
यों सबहुन मिल पति रवि डूबौ । जनु दशरथनृप शोकहिँ ऊबौ ॥
रविहिअथौति रजनिअँधियारी । प्रगटी जिमि तसकर बिभिचारी

दोहा ।

भई कलप सम सो रजनि नरनारी पछितात ।
कयकेई कौं निंदहीं पुर मह दुख न समात ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

छन्द ।

या रीत रोवत शोक सों ज्यों त्यों सुनिशि बीती तबै ।
लहि प्रात प्रोहित सचिव सज्जन आय तहँ बैठे सबै ॥
सुबशिष्ठ सों बोली सभा इमि नृपति सुरलोकहिँ गये ।
श्रीराम गे कढ़ि बिपिन कों पुनि भरत मातुलगृह ठये॥

दोहा ।

बिकल अयोध्यानगर मैं अब राजा नहिं कोइ ।
महिरच्छक नरनाथ बिन नास लहत सब कोइ ॥

चौपाई ।

नृप बिन इन्द्र न बरसत पानी । रहत न धन ध्रुव धरम कहानी॥
बोवत बीज न महिमहँ कोऊ । पितु आयस सुत करत न सोऊ॥
सुपति अधीन रहहिँ नहिँ नारी। शत्रुनि हनहिँ न सेना भारी ॥
रहत न सत्य सभहु नहिँ सोहै । बागन मै बिहरत पुनि को है ॥
द्विज न करहिँ मख रिषिदृखपावैं। पढ़हिँ पुरान न श्रुतिपथ छावैं ॥
नट न नचहिँगावहिँनहिँगनिका। बैठत नहिँ हटवारिन बनिका॥
आवत चीज न दूर दिशा की । चलत न बात निगम चरचा की॥
गजरथ हय चढ़ि कढ़त न कोऊ। तन भूषित करि सकहिँ न सोऊ
पतिबिननारि असिस निशि जैसैं। बिन नृप राज सकल पुनि तैसैं।
इकनि भखहिँ इक भख के नाहीं। नृप बिन लहहिँ न दंड तहाँहीं॥
ज्यों तनमह लोचन जुग छाजा। सत्य धरम इक त्यों इक राजा॥
भूपति जननि जनक सबही कौ। निज पितु मातु सुकहिवेही कौ
नृप ज्यावहि पोषहि परिपालै । बगसै अभय हरहि दुखजालै ॥
नृप कुबेर नृप बसु नृप भानू । इन्द्र नृपति नृप बरुन बखानू ॥

नृपतनधरि हरि रक्खहिँ महीकौं। खल दण्डहिँ मण्डहि सबही कौं
इक नृपबिन अब अस अँधियारौ। रच्छउ छाय नृप करहु सँवारौ ॥
नहिँ तौ राज सकल बन ह्वै है। इक इक कै न कहे महँ रैहै ॥

दोहा ।

तातैं राजकुमार नृप करहु कि औरौ इष्ट ।
कै तुमहीं महिपाल ह्वै पालहु प्रजनि वसिष्ट ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

छन्द ।

यों सुनि वचन मंत्रीन के या मुनि तबहिँ बोलत भये ।
ह्वै केकई के सुबस दशरथ राज भरतहि दै गये ॥
तातैं पठावहु बेगि दूतनि जाहिँ चढ़ि घोड़ान पै ।
तहँ कहहिँ सचिवन कौं सँदेसौ भरत सीलनिधान पै ॥

दोहा ।

करि प्रनाम सचिवन कह्यौ आवहु निज पुर माहिं ।
देहु दरस हम सबनि कौं बिलमहुँ अब कहुँ नाहिं ॥

चौपाई ।

यह न कहहिँ कै गे बन रामा । पहुँचे नृपहु सुरन के धामा ॥
भेजहु रतन भरत के काजैं । देहु खरच बहु दूतन आजैं ॥
त्यौं सचि वन सब दूत बुलाये । दै बहु खरच तबहिँ पठवाये ॥
मुनि बशिष्ठ आयसु सुनि दूता । चलन भरतपहँ भे मजबूता ॥
अपर नाल इक देश सुहायौ । पुनि प्रलंब नामा जो गायौ ॥
इन द्वै देशन विच मग ह्वै कैं । भे चालत पूरब पिठि दैकैं ॥

निरख हस्तिनापुर तर गंगा । लखि पंजाब विषय बहु रंगा ॥
कुरु जंगल बिच पहुँचे जाई । देखत बिपिन बिहद छबिछाई ॥
उतरे सरित सुभग सर-दण्डा । तहँ लखि तीर तरुन के खण्डा ॥
सुकुलिंगा नगरीमहँ आये । आतुर अमित तहँहुँ तैं धाये ॥
तेज नाम अभि भवन सुनामा । दोउ सुमगि बिलोके ग्रामा ॥
तिन बिच सरित सुइक्षुमतीह्न । उतरे ताह तबहिँ तजि भीह्न ॥
बहलीक देशहिँ पहुँचेई । अशुचि बिप्र तहँ देखत भेई ॥
देख्यहु चलि पुनि सुगिरि सुदामा । निरखी सरित बिपाशा नामा ॥
परसि सालमलि सरित सुहाई । गिरि ब्रजपुर पुनि पहुँचे जाई ॥

दोहा ।

या बिधि चल दिन सात मैं लख्यौ सु केकय देश ।
बसत भए तब दूत तहँ जहँ गिरि ब्रजपुर वेश ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

छन्द ।

जिहि दिन सुकेकय देश मै ते दूत चलि आतुर गये ।
तिहि दिवस की निशि मै भरत दुरसुपन बड़ देखत भये ॥
उठि भोर ह्वै जु उदास बैठे लखे मित्रन आइ कैं ।
दुखि दूरि करि वे बहु कथा तिन कही विविध बनाइ कैं ॥

दोहा ।

गान कियौ बहु गाइकनि नचे नटावा यैन ।
हास करायैं है भरत लह्यो न चित में चैन ॥

चौपाई ।

मित्र सबै तब पूछत भेई । कारन कवन भयहु दुखकेई ॥
यों सुनि बचन भरत तब कह्यऊ। हौं सपनै पितु देखत भयऊ ॥
छूटे सुसिर सिरोरुह नर मै । गिरि तैं गिरयहु नृपति गोबर मै
पैरत तहहिँ हसत हरषानौं । करत तेल भरि अँजुरिन पानौं॥
भषत अन्न तेलहि के संगै । तेल लगाइ रह्यउ अँग अंगै ॥
तेलहि मै पैरत पुनि देखौ । यों सपनै निज पितु अवरेखौ ॥
सूख्यौ बहुरि समुद्र निहारौ । गिरयहु चन्द छायहु अँधियारौ ॥
जु गज नृपति चढ़िबे कौं अह्यऊ। तासु दन्त इक टूटत भयऊ ॥
अगिन लगी चहुँ ओर निहारौ । फाटी महि झुरसे तरु भारी ॥
धूम सहित पुनि परबत देख्यौ । लोहासन पर नृप अवरेख्यौ ॥
नील बसन खौरहु कजरारी । मारत नृपहि तरुनि इक कारी॥
पुनि नृप चन्दन रकत लगाई । रकत पुहुप भूषन छबिछाई ॥
खर जुत रथ पर चढ़त जु भयऊ। दच्छिनदिशि सनमुख चलिगयऊ
खैंचत इक रच्छसिनि नरेशै । जात लियहिँ जमही के देशै ॥
मैं निशि भर इक सुपन निहारौ। तातैं मोहि भयउ दुख भारौ ॥
ताकौ फल दीसत मुहि ऐहै । हौं मरिहहुँ कै नृप मरि जैहै॥
कै लहिहहिँ दुख लछमन रामा। तातैं लहत न मन बिसरामा ॥
जाहि चढ्यहु खर सपननि देखी। ताहि मरयहु निजमनमहँ लेखी॥
हौं इह समुझिदुचितअतिभयऊ। सूख्यहु कण्ठ सुसुर फिरगियऊ॥

दोहा ।

हौं बिन डर इमि डर लह्यो दुख न कह्यो कछु जात ।
या बिधि भरत उचारि बच मनहीं मन अकुलात ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

छन्द।

या बिधि कहत सपनौ सुभरतहिँ दूत आवतही भये ।
लखि युधाजित युत अश्वपति कौं करि प्रनाम तहाँ ठये ॥
पुनि भरत के छ्वै चरन दुहु कर जोरि बोलत भे तबै ॥
मंत्री पुरोहित चहि कुशल तुमकौं बुलायहु है अबै ॥

दोहा।

बेगि चलहु अब अवध कौं नहिं बिलंब कौ काज ।
बीस कोटि के आभरन दै नानहिं कौं आज ॥

चौपाई।

दै दस कोटि सुधन मामा कौं। चलहु बेगि सोधहु सामा कौं ॥
भरत तबहिँ लै बसन बिभूषन। दीन्ह दुहुनकहँ रविकुलपूषन ॥
भरत बहुर दूतन सौं कह्यऊ । कुशल सु ममपितु दशरथ अह्यऊ
राम लखन पुनि हैं अब आछैं। कहहु छेम जननिन की पाछैं ॥
सुनि तब दूतन कह्यहु सुबानी। कुशल राम लछमन नृपरानी ॥
चढ़ि रथ पर पुर चलहु अबैई। बोले पुनि वच भरत तबैई ॥
लै सिषि मातुल मातामहँ की। चलिहहुँ मुहिन बिलमछिनकहकी
मातामहँ सों भरत सुकह्यऊ । मोहि अवध अब जाइब चह्यऊ॥
आतुर दूत करत अतुराई । ऐहहुँ पुनि तुव सुमिरन पाई ॥
उरहिँ अश्वपति भरतहिँ लायौ। सूँघि सिरहि यह वचन सुनायौ॥
जाइ सुपितु जुत मातहि देखौ। राम लखन तन कुशल बिशेषौ॥
यौं कहि तब कैकय महिपाला। देत भयहु भरतहिँ मनिमाला ॥
दिय बहु धन औ बिबिध दुसाले। मृगया हित दुइ कूकुर काले ॥

सुवरन मनिमय साजनि साजे । सोरह सै दिय तुरँग सु ताजे ॥
सचिव सु गज खच्चर बहु दीन्हे । सहित सनेह सुभरतहुँ लीन्हे ॥
तदपि भरत मन हर्षि न पायौ। सुपन सोच बस अति अकुलायौ॥
तापर सुनि दूतन की बानी । गये भरत महलन जहँ रानी ॥
लै सिषि तुरत तबहिँ कढ़ि आये । खच्चर ऊँट सु गज लदवाये ॥
सरंजाम सब लीन्ह सम्हारी । सानुज किय रथ पर असवारी ॥

दोहा ।

भरत सत्रुघन सुरथ चढ़ि निकसे सैन समेत ।
गमन कीन्ह ननसार तैं अवधपुरी के हेत ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

छन्द ।

या बिधि भरत चलि भे सुपूरब दिशहि सनमुख होइ कैं ॥
उतरे सुदामा सरित ह्लादिनि पुनि शतद्रू जोइ कैं ॥
न किये लघानी उतरि पहुँचे अपर पर्यंट देश मैं ।
जिहि मग जु आये दूत सो मग तज्यहु जानि कलेशमै ॥

दोहा ।

शिला नदीतर बिषयवर शल्य कर्ष नहिं पाइ ।
उलँघे चैत्ररथ बिपिन पुनि सरसुति पहुँचे आइ ॥

चौपाई ।

गंग सरस्वति पच्छिमही कौं । जो नित बहत सुखद सबहीकौं॥
वीर मत्स्य देशहिँ चलि आये । नँघि भारुगड बिपन श्रम छाये ॥

ह्लादिन बेगिनि सरित कुलिंगा। गंगसरिस तर तरलतरंगा ॥
जमुना तटहिं तबहिं पहुँचेई । तहँ सब सेन उतारत भेई ॥
लहि अराम पुनि सबन अन्हावा। करि जल पान बहुत सुख पावा॥
अंशुमान नगरी चलि देखी । पुनि भागीरथि गंग सुपेखी ॥
बहुरि प्रागवट पुर मैं जाई । उतरे गंग तरंगिनि छाई ॥
कूटकोष्टका नगर निहारी । धरम विवर्द्धन पुर पगधारी ॥
है दाहिन-तोरन जो ग्रामा । जंबू प्रस्थ नगर है वामा ॥
बीच दुहू ग्रामन के ह्वै कैं । भे चालत सँग सैना कै कैं ॥
किय बरूथ पुरमहँ निज बासू । चाले पुनि लखि अरुन प्रकासू ॥
उज्जिहान बन लखत सुनैना । छोड़ी प्रियक विपिनमहँ सेना ॥
अति चलाँक चितचंचल घोड़े । तैं तब भरत सुरथमहँ जोड़े ॥
तह तैं चलत सरित मग जेतीं । उतरे चढ़ि हाथिन सब तेतीं ॥
लोहितपुरमहँ चलि तब गेई । सु कपिवती नदि उतरत भेई ॥
एक साल पुर पहुँचे आछैं । उतरे थानुमती नदि पाछैं ॥
विनत नगर पुनि पहुँचे जाई । उतरे गोमति सरित सुहाई ॥
पुनि कलिंगपुरकहँ चलि आये । निरखति साल विपिन तरु छाये ॥
या विधि चलत लखत तरु पातैं। देख्यहु अवधनगर पुनि प्रातैं ॥
सात रजनि बस मारगमाहीं । निरखि अवधकहँ भरत तहाँहीं॥
बचन सु सारथि सौं यह कह्यऊ। विगत अवधपुरमहँ कछु भयऊ॥
सुनि न परत पुर सोर सुहायौ । बाहिर निकस न कोऊ आयौ ॥
बागबिहार करनिवारिन कौ । लख्यहु परत मग चीन्ह न तिनकौ
रोवत अस पुर दीसि परत है । हय रथ गज न काहुं निसरत हैं॥
धूपन धूपित पवन न आवै । कोउ बीन न मृदंग बजावै ॥

सुनहुँ न नौबति नाद दराजा । देखि परत मग कुसकुन छाजा॥
उपजत संक कुशल कुल नाहीं । या बिधि कहत धसे पुर माहीं॥
बैजयन्त जो पुर दरवाजा । उलँघि लख्यहु पुर दुखितदराजा
किय प्रनाम दरबानिन आई । भे चालत रथ सँग सब धाई ॥
बहुर भरत सारथि सौं कह्यऊ । चरित कथन मै सुनत जु रह्यऊ
नृप के मरहिँ नगर गति जैसें । श्रवन सुनी सब देखहुँ तैसें ॥
लागी कहुँन दिखात बुहारी । रोवत जन जहँ तहँ दुख भारी ॥
करत न पाक न खुलत किवारे। सून परे सब देवदुवारे ॥
मझ बजार फूलन की माला । बिकहिँ न कहुँ पकवान बिसाला
या बिधि कहत भरत भय पाई। राजदुवारहिँ पहुँचे आई ॥

दोहा ।

तहँ के जन सब दुखित लखि भरत दीन अति होइ ।
भे पहुँचत नृपसदन महँ तहँ न लख्यहु जन कोइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥

छन्द ।

तहँ भरत दीख न सुपितु जब तब निज जननि के गृह गये ।
उत उठी सुत लखि कैकई तजि निज सुआसन मनिमये ॥
छबिहीन मन्दिरमहँ प्रनाम सुमातु के पग छ्वै कियौ ।
तब जननि भरतहि गोदमहँ लै सूँघि सिर आसिष दियौ॥

दोहा ।

पूँछत भई सुकेकई आए कै दिन माह ।
कुशल कहहु ननसार की क्यौं केकय नरनाह ॥

चौपाई ।

यौं सुनि भरत जननि सौं कह्यऊ। सात दिवसमहँ आवत भयऊ ॥
क्षेम कुशल पितु भ्रात तिहारौ । जु धन दियहु सो आवत भारौ॥
हौं बूझत अब कहहु सु माता । है कित ममपितु धरमबिधाता ॥
रहत हुते बहु तुव ग्रह माहीं । देखि परत इत क्यों अब नाहीं ॥
कै कौशिल्यहि के ग्रह गे हैं । कै कहुँ औरहु महल छये हैं ॥
कह्यहु चहत मैं पितहि प्रनामा। जननि कह्यउ नृप गे सुरधामा॥
यौं सुनि भरत सु हा कहि बानी। भू पर पह्यहु सु सिर धुनि पानी॥
कर उठाइ किय बिबिधबिलापू। सहि न जात पितुमरनसँतापू ॥
नृपबिहीन ग्रह लसत जु ऐसैं । बिन शशि बिन जल नभ सर जैसैं
निजमुख ढाँकि बसन सौं रोये। करत बिलाप दुसहदुख भोये ॥
यौं लखि बिकल भरतकहँ माई। पुनि उठाय यह बानि सुनाई ॥
तूँ सतपुरुष गुनाकर ज्ञानी । शोक करब तुहि उचित नदानी
रोवत भरत जननि सौं कह्यऊ । हौं निजमन यह जानत अह्यऊ॥
ह्वै हहिँ देत नृपति युवराजू । रामचन्द्रकहँ सहित समाजू ॥
राजसूय मख कै नृप करिहैं । सुदिगिविजयहित मुहि परिहरिहैं
यहहि समुझि अतिआतुर आयौ। इत कछु कौ कछु लख्यहु अपायौ
फाटि गयहु मन मात हमारौ । नहिँ देखत पितुपालनवारौ ॥
कहहु मातु पितुकहँ का भयऊ । कवन रोग का शोक उमह्यऊ ॥
सुपितु क्रिया कर धन भे रामा। जानत मोहि न आयहु धामा ॥
है अब राम नृपति के ठौरै । मैं जस प्रिय तस तिनहिँ न औरै
राम सु मम सिर सूँघि अघाई । पोंछिहिँगे रज सु कर सिहाई ॥
मैंहहूँ रामचरन कौ चेरौ । नाथ नृपति रघुपति प्रभु मेरौ ॥

तिनसौं जाइ कहहु अब कोऊ । आयहु भरत प्रनतिहित सोऊ ॥
हौंहूँ जाइ परसिहहुँ पाई । कहिगे भरत कहा नृपराई ॥
कयकेई तब वचन उचरयऊ । रामहिँ राम कहत नृप मरयऊ॥
हा राघव हा लछमन सीता । यहहि कहत नृपजीवन बीता ॥
जो लखिहहिँपुनि राम सियाकौं। लखनसहित धनि कहिगे ताकौं
यह सुनि भरत सु पूछत भेई । ससिय राम लछमन कित गेई॥
कयकेई पुनि बानि सुनाई । दण्डकबिपिन गये रघुराई ॥
तबहिँ भरत मन कीन्ह बिचारू। रघुकुलरीत इहहि इक सारू ॥
ताहि तजहिँ जो सतपथ भंजे । सगर तज्यहु जिमि सुत असमंजै॥
हौं जानत इक राम सुभावै । शीलसदन सतपथ जिहि भावै ॥
भरत सुनिहिचय करि यह भाषे। राम कहा कछु श्रुतिपथ माषे ॥
लूटि लियहु कहुँ कै द्विज वृन्दा। कै किय कहुँ पितु गुरु की निन्दा
बिन अघ हन्यहु कहा कहुँ कोऊ। कै परत्रिय गहि ल्याये सोऊ ॥
कवन हेत रामहिँ बन भेज्यौ । जाते नृप निज मरन अँगेजौ ॥
सुनि कयकेइ सुहरषित ही मै । निजकृतकाम समुझि बड़ जी मै
बोली सुनहु भरत मम प्यारे । रामचन्द्र जिहि हेत निकारे ॥
राम न काहू हन्यहु न लूटौ । परतिय पकरि न तिहि सँग जूटौ
मै लखि रामहि बगसत राजा । राजतिलक धनि धरनि समाजा
हौं तब समुझि नृपतिढिग आई मातुलगृह तुव दीन पठाई ॥
कीन्हहुँ मैं तब तुव उपकारा । है बर लै लखि तोर निकारा ॥
इक बर तोहित लीन्ह रजाई । इक बर बन भेजहु रघुराई ॥
यौं सुतशोक सु नृप मरिगयऊ । सब बिधि सिधिकारज तुव भयऊ
कण्टकरहित सुराजहि करऊ । हरष समय सोचहि परिहरऊ ॥

दोहा ।

बोलि बसिष्ठहिं नृपति की करहु क्रिया सविवेक ।
पुनि करवावहु सुविधि सौं स्वसिर राज-अभिषेक ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

छन्द ।

यों कैकई की बचन सुनि लहि शोक पुनि भरतहुँ कह्यौ ।
पितु मर्यहु गे बन राम सिय अस राज मोकहँ नहिं चह्यौ ॥
करि घाउ भरियत लवन जिमि मम दशा तूँ तैसी करी ।
मार्यहु नृपहि बन भेजि रामहिं गाज किन तोपर परी ॥

दोहा ।

कुटिल काल किंकिरिनि तूँ जान परी अब मोहि ।
भसम ढकी अति आगलौं नृप समुझ्यौ नहिं तोहि ॥

चौपाई ।

कह्यहु जु राम बिपिनकहँ जाहीं। अब लगि जीभ जरी यह नाहीं॥
रघुकुलनाश कर्यहु जो ऐसैं । तोकहँ जननि कहहुँ अब कैसैं ॥
होतहिँ मोहि न तूँ कत मार्यौ। दै दुख ज्यों अब नृपहि सँघार्यौ
उर कस क्यो न कसाइन तेरौ । सब विधि जनम बिगारत मेरौ॥
कौशिल्याहि सुमित्राहू कौं । तूँ यह दिय सुतशोक दुहू कौं ॥
तुव सेवन अति राम जु कीन्हौं। ताकौ फल सत बिपिन सुदीन्हौं
कौशिल्या तुहि बहिनि समाना। ही जानत तिहि दिय दुख नाना
भेजि तनय तिहि कौ बन माहीं। अति पापिन कत सोचत नाहीं॥
लोभविबस अस अनरथ कीन्हौ । रामहिं काढ़ जु पति-जिय लीन्हौ

राम लखन बिन राज अपारा । मोसौ इह चलि सकत न भारा॥
जदपि रह्यउ मै भुजबल भरिहौं। तदपि न तोर मनोरथ करिहौं॥
हौं सुत तोर न तूँ मम माता । जैहौं तहहिँ जहाँ बड़ भ्राता ॥
श्रीमुख राम जननि तुहि कह्यऊ। याते जियत न तोकहँ दह्यऊ ॥
तोहि कुमति यह कहँतैं आई । सब समुझत केकय नृप जाई ॥
रघुकुलराज लहत बड़ जोई । लघु सुत राज करत नहिँ कोई।
जु बड़ ताहि सेवहिँ लघु भाई । रघुकुलरीत यहहि चलि आई ॥
जान समुझि यह निजकुलधरमा। काकै कहहिँ कियहु घट करमा॥
जाइ बिपिन रामहिँ लै ऐहौं । पीहहुँ जल अन्नहुँ तब खैहौं ॥
करिहहुँ रघुपतिपद-सिवकाई । ह्वैहहि तब मम जनम भलाई ॥

दोहा ।

या बिधि कयकेई उरहि बेधि बचन मय तीर ।
भरत परे गिरि भूमि पै बाढ़त शोक समीर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥

छन्द ।

या बिधि जननिकहँ निन्द करि पुनि भरत इमि बोले तबै ।
री महापापिन मम दृगनि की ओट ह्वै जा बन अबै ॥
जो तजहि मारग धरम कौ ताकहँ उचित बनबास है ।
तूँ निरपराध हन्यौ नृपहिँ दिय राम कौं जु निकास है ॥

दोहा ।

बिप्रहनन कुलहनन पुनि दोऊ पाप समान ।
सुपतिलोक तातैं न तुहिं ह्वैहै नरक निदान ॥

चौपाई ।

तूँ अति घोर करम कर ऐसौ । मोहि दियहु दारुनदुख तैसौ ॥
रघुकुलकीरति सकल डुबाई । कुटिल न तोहि दया उर आई ॥
तोसौं उचित न भाषब बानी । निकसत क्यौं न अबहुँ अघखानी ॥
तूँ न अश्वपति नृप की जाई । है राच्छिसिनि हन्यहु नृपराई ॥
नरक बिना तोकहँ कहुँ ठौरू । देखि परत मुहि नहिँ अब औरू ॥
कौशिल्यौ इक सुत की माई । ता सुत तूँ दीन्हहु निकसाई ॥
लहि सुत शोक सु जीहहिँ कैसैं । मरिहै वहहु मरे नृप जैसैं ॥
कहत बेद सुत आतमही है । तूँ पुनि यह श्रुति सुनत रही है ॥
मातहि सुत सम और न प्यारौ । यामहँ इक इतिहास बिचारौ ॥
कामधेनु इक समय निहारे । महि महँ द्वै वृष बहुत दुखारे ॥
इक किसान दुहु दुपहर ताँईं । भी जोतत महि कठिन तहाँईं ॥
चलि न सकहिँ वृषजवहियहारी । हनहि किसान तबहिँ लै आरी ॥
निहनिनिहनियाबिधिमहिजोतै । देत न छिन इक बैलनि ओतै ॥
बहत रुधिर दम सम्हरत नाहीं । कामधेनु किय दुख मनमाहीं ॥
लहि सुतशोक नयनि भरि रोई । कढ्यहु इन्द्र तातर ह्वै सोई ॥
कामधेनु आँसुन की धारा । परिय सु इन्द्रहि पर इक बारा ॥
रह्यहु इन्द्र तब नभ अवरेखी । कामधेनु रोवत तहँ देखी ॥
सु कर जोरि तासौं तब कह्यऊ । कवन हेत तोकहँ दुख भयऊ ॥
कामधेनु तब बचन उचारे । लखहु इन्द्र ये तनय हमारे ॥
हनत किसान बधिक वृष दोऊ । जरत सु रवि किरनन सौं सोऊ ॥
पावत श्रम बिसराम न पावैं । गिरहिँपरहिँ पुनि हरहिउठावैं ॥
हौं रोवत लखि सु सुत बिभाँती । करहुँ काह नहिँ फाटत छाती ॥

सुत सम प्रियविय कोऊ नाहीं । सुनत इन्द्र सोच्यहु मनमाहीं ॥
जदपि कोटि संख्या सुत जाकैं । रोवति तदपि तनय तन ताकैं॥
तातैं सुत सम प्रिय नहिँ कोऊ । इन्द्र यहहि मानत हुव सोऊ ॥
कामधेनु जो बहुसुतवारी । लखिसुतश्रमहिँलह्यहुदुखभारी॥
रामजननि इक रामहिँ जायौ । सो तूँ दंडक बनहिँ पठायौ ॥
सुमिर सु तिनकौं श्रम महतारी । कौशिल्या नहिँ जीवन वारी ॥
तातैं यह परलोकहु माहीं । तोकहँ सुख सपन्यहुँ कहुँ नाहीं॥
मैं पितु सम सेवहुँगौ भाई । राम जु रविकुल मति रघुराई ॥
जाइ बनहिँ ल्यावहुँगौ रामै । राजतिलक करवाइ सुधामै ॥
प्रभुहि राखि हौं बनकहँ जैहौं । पितुप्रन झूठ परन नहिँ दैहौं ॥
तुव अघ रोवत अवध विसेषी । हौं न सकहुँ अब यह दुख देखी॥
तूँ अब कूदि अगिन के माहीं । करि गलबन्धन डूब डूहाहीं ॥
खाइ जहर मर कै जा बन मे । और न तुहि गति कछु त्रिभुवनमै
लै ऐहहुँ मैं रामहिँ जाई । नृप आसन बैठरिहहुँ आई ॥
मम कलंक तबहीं यह जैहै । सकल प्रजा पुर पुनि सुख पैहै॥
भाषि भरत इमि क्रोधहि पाई। भू पर परत भये अकुलाई ॥

दोहा ।

कहूँ बसन कुंडल कहूँ कहूँ मुकट कहुँ माल ।
भूपर लोटत भरत यों भे रोवत दृग लाल ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥



छन्द ।

उठि भरत पुनि सनमुख सचिव के जननिकहँ निन्दत भये ।
मैं मातु कौं यह दीन्ह मंत्र न राम जो बन कौं गये ॥
हौं हुत्यहु दूर सुन्यौं न तहँ रघुबीर कौ अभिषेकहू ।
बन कौं गये सिय राम लछमन यह सुनी नहिँ एकहू ॥

दोहा ।

हौं चाहत यह राज नहि कराहिँ रामहीं आइ ।
मोहि चलहु लै अब तहां जहँ कौशिल्या माइ ॥

चौपाई ।

या विधि भरत पुकारत बानी । सो सुनि धुनि कौशिल्या रानी ॥
बिलपि सुमित्रा सौं यह कह्यऊ । भरत सवतसुत आवत भयऊ ॥
भरत समीप चली कहि येई । भरतहु ताहि मिलन चलि भेई ॥
भरत लखी तहँ चलि प्रभुमाता । भयहु जाहिँ प्रतिकूल विधाता ॥
मलिन बसन तन छीन अलेखी । दीन बदन दुखदुसह विसेषी ॥
अति रोवत पग परत न पारैं । चालहिँ दृग आँसुन की धारैं ॥
भरत शत्रुघन लखि दुख भयऊ । कौशिल्या के पाइन पयऊ ॥
पुनि करजोरि भरत यह कह्यऊ । कयकेई तुहि बड़ दुख दयऊ ॥
कुलकलङ्क जिहिँ मोकहँ जायौ । मम हित रामहिँ बनहिँ पठायौ ॥
को मम सम अब कलुषनिधाना । धिक मुहि धिक ममजीवन प्राना ॥
यौं सुनि भरतवचन नृपरानी । बोली शोकविवस बिललानी ॥
बन्धु सहित तुहिँ जो लखि पायौ । स लखन राम मनहु फिरि आयौ ॥
सुनहु भरत तुम सोच न करहू । जु नृपवचन सो सिर पर धरहू ॥

कयकेई तोहित वर लीन्हौं । तोकहँ राज नृपति यह दीन्हौं ॥
ससिय रामकहँ बनहिँ पठावा । निकसत ताहि न कछु दुख आवा
परिहरि भूषन बसन सुहाये । पहिरे चीर मनहु मन भाये ॥
बिहँसत बदन सहित लघु भाई। या बिधि बिपिन गयहु रघुराई॥
जो मै राम सँगहिँ तब जाती । तौ तुहि सुमिर तहहुँ पछिताती
तूँ भल कीन्ह जु आतुर आयौ । तोहि निरखि सबहनि सुख पायौ
अब हम अरु लछमन की माता। जैहहिँ बन जहँ राम स भ्राता॥
आये तुम आतुर भल कीन्हा । करहु राज यह जो नृप दीन्हा॥
सुरदुरलभ यह अवधरजाई । बिनहिँ प्रयास सु तुम इक पाई॥
यौं बच सुनत सु कौशिल्या के। लागि भरतकहँ जनु छत टाँके॥
पाइ बिथा बहु भरत हहरयऊ । रामजननि-चरननि गिर परयऊ॥
कौशिल्या लखि तबहिँ उठायौ। पौंछि बदन दृग उरहिँ लगायौ॥
भरतहिँ गोद लियहु बैठाई । तब कछु सुधि ताकै तन आई ॥
बिलखिभरतबहु पुनि यहकह्यऊ। जननि न तोहि कह्यौ अस चह्यऊ
जो तूँ मुहि जानति अब ऐसैं । तौ मैं पुनि जगजीहहुँ कैसैं ॥
जु मम भगति इक रामहिँ माहीं। जननि कहा तूँ जानति नाहीं ॥
मै जु होहिँ वन प्रभु मम जानै। तौ ए अघ मुहि लगहिँ अठानै॥
जु अघ लगत गोबध के कीन्हैं । जु अघ होत द्विज कौ धन लीन्हैं
जु अघ पतित परसेवन माहीं । जु अघ गहत परतिय की बाहीं॥
जु अघ प्रजहिँ जु न नृपकहँ मानै। लैकर नृपहु न पालन ठानै ॥
जु अघ अदच्छिन मख करवावैं। जु अघ सुपढ़ि वेदहि बिसरावैं ॥
छत्रिन जु अघ रनहिँ तैं भाजै । जु अघ सुगुरु अपमानहिँ साजै॥
जु अघ मातु-पितु-सेवन त्यागैं । जु अघ लगत गुरुतिय सों लागैं॥

जो अघ रवि सनमुख ह्वै मूतैं । जु अघ सुस्वामिहि कौ धन धूतैं॥
जु अघ लहत रखि चाकर चाहौ। देत न पुनि तिहिकहँ दरमाहौं॥
जु अघ सुरन बिन भोग लगावैं। पल पायस तिल खिचरिहु खावैं॥
जु अघ लहत नर दुरमति पाई। देखि सकहि नहिँ रामरजाई ॥
जु अघ सु मित्रहु पर छल छावैं। कुलबिहीन तिय व्याहि लिआवैं
जु अघ चुगलकहँ चुगली कीन्हें। दान अभाजन कहँ कछु दीन्हें ॥
जु अघ लहत सतमारगत्यागी । जननि तजहिँ तियबिबसअभागी
जु अघ द्यूत मद सेवन ठानै । कामबिबस क्रोधहु मन आनै ॥
जो अघ बहु धन संचइ माहीं । काहू कहुँ कछु देत जु नाहीं ॥
जु अघ प्रात निशि मुखमहँ सोवैं। कुमग कुकरमहि मै धन खोवैं ॥
जु अघ लाष मद मासहि बेचैं । बिन अपराध जु परधन खैचैं ॥
जु अध झूठ वचनन कै भाषैं । भेद जु हरि हर महँ कछु राखैं॥
औरहु अघ अगिनित जग जेते । तौ इक मोहि लगहिँ सब तेते॥
जो मम सम्मति लहि मम माई। भेज्यहु होहि वनहिँ रघुराई ॥
हौं करि शपथ कहत निज बानी। मैं यह बात न सपन्यहुँ जानी॥
या कहि भरत अमितदुखभयऊ। ह्वै मुरछित पुनि महि पर परयऊ
साँची सरल भरत की बानी । कौशिल्यहु सुनि बानि बखानी॥
सुनहु भरत मैं सौं करि कहऊँ। हौं इक तोर सदहुँ बल चहऊँ॥
तूँ मोकहँ रामहुँ ते प्यारौ । को तो सम पुनि भगत हमारौ॥
सत्य धरमपथ तू न तज्योई । इक रामहिँ सब भाँति भज्योई॥
तोर न अब कछु सपन्यहुँ माहीं । लागत कछु कयकेयिहु नाहीं ॥
हानि लाभ दुख सुख जग जेते। होति सबनि निशिदिनसम तेते
होतब अमिट न मिटत मिटायौ। काल करमगति बस जग छायौ॥

रामहिँ बन नृपकहँ सुरलोकू । भयहु जु हमहिँ तुमहिँ यह शोकू ॥
याको लगत न काहु दूषन । होंनी यहहि हुती कुलभूषन ॥
को जानहिँ अब धौं का होनै । जीवन मरन अजस जस कौनै ॥
शोकबिवस कछु कह्यउ जु तोही । तासु भयहु अब अति दुख मोही ॥
या कहि तहिँ दुहु दृग भरि आये । कौशिल्या उर भरत लगाये ॥
प्रेमबिबस जनु रामहिँ पायौ । स्रवत भयहु पय उरजन छायौ ॥
पुनि लखि लखन अनुजकहँ सोई । लाइ उरहिँ कौशिल्या रोई ॥

दोहा ।

पुनि थिति करि निज गोद मैं दुहुनि जनानि इहि भांति ।
ज्यौं त्यौं कर तहँ तिहुन मिलि रोइ बिताई रात ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

छन्द ।

अति प्रात आइ बशिष्टमुनि तहँ भरत से बोले तबै ।
तजि दुख करहु नृप की क्रिया तुमकहँ उचित एही अबै ॥
सुनि भरत करि गुरु कौं प्रनति मुनिजुत मृतकपितुपहँ गये ।
शव काढ़ि तैलहि तैं तबहिँ सुविमान रचि धरतैं भये ॥

दोहा ।

पेखि पितुहि मृत सोक सौं भाषे भरत बिहाल ।
मोसे दीन दुखीन तजि गयहु कहाँ महिपाल ॥

चौपाई ।

हौं तुव दरशन हित चलि आयौ । अतिआतुर दूरहु तैं धायौ ॥
तुमहिँ लख्यहु मृत रामहु नाहीं । ससिय लखनजुत गे बनमाहीं ॥

को करिहहि अब पुररखवारी। तुम बिन महि जनु विधवानारी
भरतविलाप सुनत मुनि ज्ञानी। किय बोधन बहु ज्ञान बखानी॥
अस यह रीति सदहुँ चलिआई। सुसुत अछित पितु मरन बड़ाई॥
नृप दशरथ नहिँ सोचन जोगू। जिन किय धार धरम महिभोगू॥
नृप किय बेदविहित मख नाना। पाली सकल प्रजा जिमि प्राना॥
पूजे अतिथि अखिल मुनि ज्ञानी। जिन न कही कहुँ अप्रिय बानी॥
निजभुजबल जिन बहु रिपु जीते। सपनेहुँ कबहुँ न भे भय भीते॥
सत्यसदन को नृपति समाना। सत्य न तज्यहु तजे निज प्राना॥
रामसनेहबिबस महिपालू। रामहिँ राम रटत किय कालू॥
नृपदशरथ अस निज जस छावा। को अस जिहि न त्रिलोकहुँ गावा
नृपदशरथ-गुन जात न गाये। जिन तुमसे सुत चारिहु जाये॥
नृप सम भूप भयहु नहि ह्वै है। जा जस रह्यउ त्रिजगमहँ छै है॥
जासु सुजस जग जात बखानी। भरत न ताहि सचहु तुम जानी
यहहिसमुझितजि सोचविषादा। दाहहु नृपहि जु श्रुति मरजादा॥
यों सुनि भरत सुगुरुकी बानी। सुपितु क्रिया सब विधिवत ठानी
अगिनहोम करि ऋत्विज आये। लै सुरसरि जल नृप अन्हवाये॥
भरत करहिँ इक पिण्ड दियावा। जवचूरन तिलजुत नृप पावा॥
मनिबिमानमहँ नृपकहँ धरि कै। लै चाले सब हरि हर करि कैं॥
हेम रजति मनि बरसत आगैं। चलत भये सब मिल सँग लागैं॥
चन्दन अगर तगर मगवाई। बिरचि चिता सुरदारुन छाई॥
तहँ अन्हवाइ नृपहि पौंढ़ायौ। घृत करपूर सुगन्धनि छायौ॥
विधिवत भरत अगिन तहँ दीन्ही। घृत आहुत बहु तापर कीन्ही॥
सुरथ पालिकिन चढ़ि सब रानी। आइ चितहि परिकरमा ठानी

हा पति हा प्रभु हा नृपनाथा । गयहु कहाँ करि हमहिँ अनाथा
रोईं नृपपतिनी सब ऐसैं । शोकबिबस बहु कुररी जैसैं ॥
सरजू मभ्क सब न्हात भयेईं । तिल तोयंजलि नृपहि दयेईं ॥
करि मृतकृत्य भरत गृह आए । महि पर परि दस दिवस बिताये

दोहा।

लै नित सँग गुरु प्रोहित नित कर सरजु अस्नान।
किय दस दिन की जो क्रिया भरत निगम परिमान॥

इति श्री अयोध्याकांडे षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥

छन्द।

करि ग्यारहैं दिन कौ किरत दिन बारहैं करतै भए ।
नृप की सपिण्डी सुबिधिवत पुनि दान बहु बिप्रन दए ॥
गोदान महिषी छाग हय गय पालकी रथ देत भे ।
धन दास दासी बहु रतन गृह ग्राम सब द्विज लेत भे ॥

दोहा।

दै भूषन भासन बसन आसन असन अपार।
कियहु अजाची जाचकन भरत भूमिभरतार॥

चौपाई।

पितु हित भरत दिये बहु दाना। तिनकौ को करि सकहि बखाना
बहुरि तेरहैं दिवस चिता कौ । कीन्ह भरत सोधन सब ताकौ ॥
रोइ भरत बहु कीन्ह बिलापू । लखन शत्रुघन बहु परतापू ॥
भे मुरछित पुनि दोऊ भाई । बिलपहिँ बहुर बहुर अकुलाई ॥

हे नृप तजि तुम निज प्रभुताई। भेजि बनहिँ सिययुत रघुराई ॥
गयहु कहाँ मोकहँ तजि ऐसैं । कौशिल्या अब जीहहि कैसैं ॥
मँहि भोजन अब कवन करैहै । हयहु रथहुँ गज कवन चढ़ैहै ॥
पहिरैहहि को बसन बिसाला । कुण्डल कटक चटक मनिमाला
तुमबिन अवनि फटत कत नाहीं। तौ हम सब मिल तहहिँ समाहीं
ससिय राम लछमन बन गेई । तिन हित मीचविवस नृप भेई ॥
काहि निरखि अब हौं जीहहुँगो। अगिन परहुँ कै बिष पीवहुँगो॥
हौं न अवधपुर महँ अब जैहौं । करिहहुँ तप बन बिच बसि रैहौं
यौं बिलपत लखि दोउ भाई । मुनिवशिष्ठ पुनि बानि सुनाई ॥
करहु क्रिया पूरन जो ठानी । सदा न जगजीवत कहुँ प्रानी ॥
जीवन मरन मरन पुनि जीवन। यहहि बिथा लागी सब जीवन॥
ज्यौं तनमहँ सिसुपन तरुनाई । ज्यौं आवत पुनि बड़ बिरधाई ॥
त्यौं आवत इक दिन पुनि मीचू। जो न गनहिँ उत्तम सम नीचू ॥
कोअस जाहि न कालहिँखायौ । या विधि मुनि भरतहिँ समुझायौ

दोहा।

यौं सुनि मुनिवर के बचन उठे भरत ह्वै दीन ।
बेदबिहित नृप की क्रिया सकल समापत कीन ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥७७॥

छन्द।

तब शत्रुघन बोले भरत सौं दै नृपति वर बास कौं ।
तिय कै कहैं बन कौं निकासे राम से अभिराम कौं ॥
तब ता समै लछमन महाबल क्यौं न पितु निग्रह कियौ ।
ह्वै जाइ जो नृप तियबिवस तिहि चाहियत कैदहि कियौ ॥

दोहा ।

आई तहँ ताही समै पहिर बिभूषन भूरि ।
धारि बसन वर मंथरा कुटिल कूबरी कूरि ॥

चौपाई ।

तिहि दरवान पकरि तहँ ल्याए । तिन सब मिल ए बचन सुनाए ॥
सुनहु शत्रुघन इहि यह कीन्ही । कयकेईकहँ कुमति जु दीन्ही ॥
जा कारन नृप तज्यहु शरीरा । ससिय गये बनकहँ दुहु बीरा ॥
इहिँ एकहिँ रज किय रजधानी । चहहु सुकरहु यहहि अघखानी ॥
भे लखि सरिस लखन लघु भाई । चोटी गहि छिन एक भमाई ॥
पटकि कठोरत भे महि माहीं । गौ फुलि कुबज कुम्हड़ के नाहीं ॥
छूटि बिभूषन जहँ तहँ गेई । टूटे दसन सुबसन फटेई ॥
निरखि सखी कुबजा की भागी । कौशिल्यहि के पाइन लागी ॥
जननि हमहिँ तुम लेहु बचाई । हनहिँ न लघु लछमन कौ भाई ॥
जो जस करहि सु तस फल पावै । को किहिकहँ कछु दोष लगावै ॥
तहँ कुबजा तन रच्छन वेई । आई भरतसरन कयकेई ॥
भरत सु शत्रुहनन सौं कह्यऊ । नारि अबध्य न मारन चह्यऊ ॥
शत्रुहनन सुनि सुभरत-बानी । ताहि तज्यहु यदपि अघखानी ॥
कुबजा तबहिँ जु कयकेई के । जाइ परी चरनन हित जी के ॥

दोहा ।

समाधान किय केकई कुबजा कौं बहु भांति ।
तदपि मंथरा तन सहमि रह्यौ न कछु कहिजात ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥७८॥

छन्द ।

पुनि चौदहैं दिन प्रात प्रोहित सचिव तहँ आये सबै ।
मिल भरत सौं करि बोध बहु बिधि ये बचन बोले तबै ॥
पहुँचे नृपति सुरधाम कौं सह लखन राम बनै ठये ।
अब ह्वै धनी राजहि करौ तुमकौं जु दशरथ दै गये ॥

दोहा ।

सामग्रीं अभिषेक की है सब लखहु तयार ।
करवावहु अभिषेक निज भरत भूमि भरतार ॥

चौपाई ।

यौं सुनि बचन भरत तब कह्यऊ। मोकहँ यह अभिषेक न चह्यऊ॥
जाइ बनहिँ प्रभु चरन जु ध्येहौं। भरि अँजुलीन अघाय अचैहौं ॥
सुअभिषेकता तोयहि करिहौं । नहि तौ निजजीवन परिहरिहौं॥
याबिधितुमहिँउचितनहिँकहिबौ। सबनि जोग इक ममहितचहिबौ
जा महँ जनम न मोर नसाई । सो तुम बचन कहहु सब भाई॥
हौं रामहिँ यह राज करैहौं । लै आयस पुनि बनकहँ जैहौं ॥
अब सब सैन तयार कराओ । मग सोधन हित जनन पठाओ॥
हौं प्रभुकहँ लै ऐहहुँ धामै । नृप अभिषेक करैहहुँ रामै ॥
जु कछु मनोरथ कयकेई कौ । सो सपनिहुँ मुहि लगत न नीकौ
यौं सुनि भरतवचन जहँ जेते । भे अति हरषित सज्जन तेते ॥
भे भाषत धनि भरत सभागू । जा उर रामचरनअनुरागू ॥
सुरदुरलभ यह राज न चह्यऊ । रामहिँ अवध लिआवन कह्यऊ॥
या कहि सकल सभा जन छाये। दृगनि हरष आँसू भरि आये ॥

दोहा।

यौं सराहि बहु भरत कहँ पुनि पुनि सचिवसमाज।
बेलदार भेजत भये सुमग बनावन काज ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनासीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

छन्द।

तहँ पाइ आयसु भे चलत बहु बेलदार मजूरहू ।
कोरी चमार कुम्हार बढ़ई सुरथकार अकूरहू ॥
पुनि सबर कारीगर पिटारी करनवार सुनारहू ।
सुभ सँगतरासहु राजदरजी छपरबन्द अपारहू ॥

दोहा।

लै निज निज सामानि सब चलत भए अगिवान ।
कहुँ काटत महितरु लता कहुँ फोरत पाषान ॥

चौपाई।

रचत सुमग रुचिरुचि इकसारू । छिरकत जल बहु देत बुहारू ॥
भे पूरत भरि माटिन खाढ़ा । इकहिँ उपारत मग त्रिन बाढ़ा॥
ऊँच नीच मग रहन न पावा । इक सम सबनि सम्हारि बनावा
जहँ न छाँह तहँ छप्पर छाये । ललित लतनयुत सुतरु लगाये॥
बाँधे पुनि पुल सरितनि माहीं । भे खोदत सर जहँ जल नाहीं ॥
जहँ जहँ करिहहिँ भरत उतारा। तहँ तहँ किय बहु महल तयारा
भे बाँधति अति उच्च पताके । हरषि रचत मग तनक न थाके॥
लै सुअवध तैं सुरसरि ताईं । मगमग बिधिबिधि की छबिकाईं
जे मग कारिन के अधिकारी । या बिधि सकल कराइ तयारी॥

दोहा ।

फिरत भए तहँ तैं सबै आए भरत समीप ।
करि प्रनाम बिनती करी सुमग तयार महीप ॥

इति श्री अयोध्याकांडे असीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

छन्द ।

पुनि होत प्रात समै सुमागध सूत जस गावत ठये ।
सुभ शङ्ख सहनाई सुदुन्दुभि जन बजावतही भये ॥
सुनि शबद नौबत को भरत लहि शोक यह बोले तबै ।
मैं हौं न भूपति राम बिन नौबति बजाओ मति अबै ॥

दोहा ।

यौं कहि लखि सत्रुघ्न कौं बोले भरत बिहाल ।
कयकेई किय पाप बहु हन्यहुँ जु बड़ महिपाल ॥

चौपाई ।

दशरथ राज भ्रमत इमि छाहीं । बिन केवट बोहित की नाहीं ॥
यौं दुख मोपर सह्यउ न जाई । भरत सुगृह वनमहँ रघुराई ॥
शोक भरत कृत सुनि नृपरानी । रोईं सब करि करुना बानी ॥
तबहिँ बशिष्ठ तहाँ चलि आये । बैठि सभामहँ दूत बुलाये ॥
कहत भये छत्रियनि लिआओ । सचिव महाजन द्विज बुलवाओ ॥
दूत सुसबनि बुलाइ लिआये । हय रथ गजनि सुजन चढ़ि धाये ॥
उठ्यहु महारव मग मग माहीं । गज रथ वाहन चलत तहाहीं ॥

दोहा ।

यौं दशरथ कैसी सभा भई भरत की आइ ।
सचिव सूर पंडित सुजन सब बैठे हरषाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकासीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

छन्द ।

तब आइ देखत भे भरत सुभ सभा मध्य बिछावनै ।
तहँ सचिव सूर सुबिप्र पण्डित गुरु बिराज रहे घनै ॥
लखि भरतकहँ बैठारि आसन पर बशिष्ठ कह्यौ तबै ।
नृप गे स्वरग सियपति बिपिन बिन प्रभु प्रजा व्याकुल सबै ॥

दोहा ।

दशरथ तुमकहँ दै गए निसिकंटक यह राज ।
करहु रजाई दरहु दुख पालहु प्रजा समाज ॥

चौपाई ।

राम लखन पुनि कहिगे एहू । अवध राज भरतहिकहँ देहू ॥
पुनि सुमन्त्र सौं कहि पठवाई । भरतहिँ दीजहु अवध रजाई ॥
है मम भ्रात भरत सब लाइक । इक सम सब मातनि सुखदाइक
धरमधुरन्धर धीरजधारी । सुगुरु मातु पितु अज्ञाकारी ॥
पालकप्रजनि बिनययुत सोऊ । भरत समान न दूसर कोऊ ॥
नीति निपुनि मन्त्रिन कौ ज्ञाता। निज भुजबल रिपु बिघनबिघाता
दीनदयाल सुभट गुन ग्राहक । तनि पवित्र अचनि कौ बाहक॥
यौं तुव गुननि बखानत रामा । बनहिँ गये लै लखन सुभामा ॥
सुमतियहहि पुनि कौशिल्या कौ। करहिँ राज अब भरत धरा कौ॥

प्रोहित सचिव सुजन मनमाहीं। राज करहिँ यह भरत सदाहीं ॥
सकल सभा सम्मत हम कह्यऊ। कीन्ह्यहु राज तुमहिँ यह चह्यऊ
पितु आयसु बन राम सिधारे । करहु राज तुम बचन हमारे ॥
करहु सत्य निज पितु की बानी। तुमकहँ सुजस रखहु रजधानी ॥
कौशिल्यादिक सकल जे माता। पैहहिँ सुख तुहि लखि महिभ्राता
सुनहु भरत जो तुव सिवकाई । जानत राम सियहु महि जाई ॥
जु बिपिन करि आवहिँ रघुराई। दीजहु तुम तब सौं पर जाई ॥
कीजहु रामपगनि की सेवा । तुमहिँ सराहहिँगे तब देवा ॥
जाकहँ राज सु पितु दै जावै । सो सुत राजतिलक यह पावै ॥
तातैं अब अभिषेक कराओ । अवध नगर मुद मंगल छाओ ॥
पुनि दिशि देशन तैं नृप ऐहैं । हय गय रतन नजरि करि दैहैं ॥

दोहा ।

या बिधि सुनि गुरु के बचन भरत रहे सिरनाइ ।
ह्वै गदगद बोलत भए सुमिर ससिय रघुराइ ॥

चौपाई ।

दीन्ह जु गुरु तुम मुहि उपदेशू । सो सुनतहिँ उर उठ्यहु कलेशू ॥
करहुँ कहा बिन प्रभु के देखैं । लगत राज मुहि चिन के लेखैं ॥
हौं नहिँ राज करहिँ कौ भूषौ । तुम्हर बचन पुनि जात न दूषौ॥
तातैं मोकहँ जो हित होई । तुम सब मति उपदेशहु सोई ॥
हौ जानत तुम मोर सुभावै । मुहि इक प्रभुपदसेवन भावै ॥
गे बन राम सु मुहि अघ लागा। अब मो सम बिय कवन अभागा
जाकी सिर बड़ पातक होई । ताकहँ नृपति करत नहिँ कोई॥
जो दैहहु मुहि तिलक अकाजू। तौ मम अब डूबहिगौ राजू ॥

तातैं मुहि न उचित इत रहिबौ। उचित यहहि रघुपतिपद-गहिबौ
गहत सरन अपराध घनेरौ । छमत सदहुँ यह प्रन प्रभु केरौ॥
करहुँ राज मैं प्रभु बन माहीं । अस अनरीति उचित कहुँ नाहीं॥
रामचन्द्र दशरथसुत रूरे । नहुष दिलीप सरिस गुन पूरे ॥
शील सदन पुनि मम बड़ भाई। उचित तिनहिँ यह करब रजाई
छोड़ि धरम यह करहुँ जु राजू। तौ ठहरहुँ रघुकुल घन आजू ॥
अनुचित करम जु किय कयकेई। सो यह जात बिपति नहिँ खेई॥
तातैं मम सम्मत इक एही । जैहहुँ तहँ जहँ प्रभु बयदेही ॥
तुमहुँ सबै मिलि करहु तयारी। जहहिँ राम तहँ अवधि हमारी॥
यों सुनि भरतबदन की बानी । सकल सभा नख सिख हरषानी
करहिँ सबै मिल भरत बड़ाई । साधु साधु जयजय धुनि छाई ॥
भरत सुतबहिँ सचिव सौं कह्यऊ। सैन तयार करायब चह्यऊ ॥
सुनि सुमन्त्र सब सुभट बुलाये । सेनापति गजपति सजि आये ॥
घरन घरन पुरजन बहु बाहन । भे साजत प्रभु दरस उमाहन ॥
रच्छहु गृह जो जाकहँ कहई । रोइ सु तहँ दारुनदुख लहई ॥
सजि सब सैन तबहिँ चलिआई। ड्योढ़ी पर नहिँ लहत समाई ॥
लखि निज सैन सुभरत उचारे । ल्यावहु रथ सजि सचिव हमारे॥
सुनि सुमंत्र रथ ल्यावत भयऊ । भरत शत्रुघन अति सुख लह्यऊ॥
बोले भरत बचन अभिरामै । हौं बन तैं लै ऐहहुँ रामै ॥

दोहा।

सचिव चलावहु सेन सब अब न बिलम कछु मोर ।
सुनि सुमंत्र सब सौं कह्यौहु चलहु राम की ओर ॥

इति श्री अयोध्याकांडे व्यासीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

छन्द ।

तब भरत अरु शत्रुघ्न दोऊ सुमिर पद रघुनाथ के ।
भे चलत रथ चढ़ जबहिँ तब सँग लग चले भट साथ के ॥
मंत्री पुरोहित गुरु हयन के रथनि चढ़ि आगैं चले ।
जननी चली चढ़ि पालकिन पर निरखि मुद मंगल भले ॥

दोहा ।

या बिधि पुर तैं सब निकसि मन मन करत बिचार ।
कब देखहिंगे राम कौं बदन जु दृग आधार ॥

चौपाई ।

भे चालत बहु बैद बिपारी । गन्धी गरग न रजक बिगारी ॥
कुन्दीगर सरकार कलारू । मोची नट नरतक बंजारू ॥
केवट कटकन बीनन वारे । भे चालत गाड़िन पर भारे ॥
रखत रफूगर मीर सिकारा । नाऊ बनिक लखेर लुहारा ॥
भरि गाड़िन पकवान मिठाई । चलत भये हरषित हलवाई ॥
है पुरमहँ कारीगर जेते । चाले भरत कटक सँग तेते ॥
अगनित विप्र रथनि चढ़ि चाले। आगम निगम बखाननवाले ॥
या बिधि भरत चल्यहु हरषाई। शृङ्गबेरपुर पहुँच्यहु जाई ॥
जहँ गुह भील नृपति रजधानी। तहँ सुरसरि लखि सैन थिरानी॥
भरत सचिव सों तब यह कह्यऊ। सेना सकल उताय्यहु चह्यऊ ॥
हों ह्यां अब सुरसरित अन्हैहों । निज पितु तरपन करि सुख पैहों

दोहा ।

यों सुनि आयसु भरत कौ सकल सेन हरषाइ ।
गंगतीर उतरत भई जथा जोग थल पाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्र्यासीतितमः सर्गः ॥८३॥

छन्द ।

तब गंगतट दल भरत कौ लखि गुहि कह्यौ निज भटन सौं ।
तरि पाँच सै भरि मांस बहु फल लाय राखहु तटन सौं ॥
कचनार तरु अंकित पताकै गजन पर फहरात हैं ।
आये भरत चढ़ि दिगबिजय हित रामहीं पर जात हैं ॥

दोहा ।

रामहि तूँ हम सबन कौं समुझि करैगो रारि ।
गंग तीर पर परहि गी अब अस्त्रन की मारि ॥

चौपाई ।

राज अकण्टक करन बिचार्यौ । मरिहहि राम न दूहि कौ मार्यौ
मम प्रभु मित्र नृपति रघुराई । ता हित मुहि अब उचित लराई
गंग सुतट रघुपति हित काजैं । करिहहुँ युद्ध भरत सौं आजैं ॥
जब लग मम जीवन यह रैहै । तब लगि गंग न उतर न पैहे ॥
मरिहहुँ कै पैहहुँ जय भाई । है मोकहँ दुहु भाँति भलाई ॥
मरन राम हित मंगल हेतू । लहहुँ बिजय तौ बड़ जस केतू॥
जियत न पाँउ धरहुँगौ पाछैं । रामप्रताप लरहुँगौ आछैं ॥
तातैं रहहु तयार सबैई । जात मिलन मैं ताहि अबैई ॥
भरत जु ह्वै हहि रामसनेही । तौ उतरन देहहुँ अब तेही ॥
या कहि गुह बहु फल भरवाये। बहँगिन महँ बहु मास सुहाये ॥
लै सँग नजर करन गुह चल्यऊ। भरत कटक बिच पहुँच्यौ भल्यऊ
सचिव भरत सौं बचन उचारे । आयहु गुह पग लखन तिहारे ॥
कीर नृपति दण्डक बन त्राता । रघुपति प्रीति भगत अनुराता ॥

ह्वै हहिँ जहँ सहसिय दुहु भाई । दैहहिँ तुमहिँ सु बेगि बताई ॥
भरत कह्यउ तब आवन देहू । आयहु गुह तहँ सह सन्देहू ॥
भरतहि कीन्ह प्रनति सिर नाई । जोरि सुकर यह बिनति सुनाई ॥
यह पुर देश सु तुम्हरोई है । मम जीवन तन हाजिरही है ॥
मैं तुव आगम खबरि न पाई । तातैं छमियह मोर ढिठाई ॥
जो मैं खबरि प्रथम यह लहती । तौ तुम्हरै रथ साथहिँ रहती ॥

दोहा ।

लै कर अब फल मूल ए रूखौ सुखौ मास ।
इतहिं आज की निशि करहु आय गंगतट वास ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुराशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

छन्द ।

यौं सुनि बचन गुह के भरत अति प्रीतियुत बोले तबै ।
तुम हौ सखा रघुबीर के हम तुमहिँ लखि पायौ सबै ॥
अब भरद्वाज थलैं कहहु हम कवन मग ह्वै जाइये ।
तब गुह कह्यउ मैं चलहुँगौ सँग एक बात बताइये ॥

दोहा ।

चढे जात तुम राम पर कवन हेत निःसंक ।
सुभट कटक अटपट परखि मम उर उपजत संक ॥

चौपाई ।

साँची कहहु भरत कुलकेतू । तुम्हर गमन प्रभु पर किहिँ हेतू ॥
यौं गुहबच सुनि भरत सु कह्यऊ । हौं प्रभुपद पेखन चलि अयऊ ॥
को अस मूढ़ जु प्रभुहिँ खिझावै । यहहु लोक परलोक नसावै ॥

रघुपति इक मम प्रभु बड़ भाई । प्रतिपालक पितु सम सुखदाई ॥
तिनहिं जाइ बन तैं लै ऐहौं । सुनहु सबरपति तब सुख पैहौं ॥
तुम न और कछु मनमहँ ल्याओ। चलहु संग मग हमहिं बताओ ॥
भरतबचन सुनि गुह हरषानौ । ह्वै गदगद गल तबहिं बखानौ ॥
धन्य भरत तुम हहु बड़ भागू । लह्यउ जु अस प्रभुपदअनुरागू ॥
वहहि धन्य जगजीवन पाई । जाहि रुचहि रघुपतिसिवकाई ॥
क्यों न होहु तुम रामहिं प्यारे । प्रभुपदप्रेम पुलक तनवारे ।
अतिबड़ समुझि सुप्रभुसिवकाई। टन तुल तजियतु अवधरजाई ॥
तुमसम काहि कहहु महिमाहीं। जा उर कपट कलुष कछु नाहीं॥
बिन प्रयास लहि रघुरजधानी । आयहु तुम तजि यह हम जानी॥
तुव चरित्र यह त्रिभुवन माहीं । रहहिं सदा प्रभु जस की नाईं ॥
गुहहि कहत इमि अथयहु भानू। सानुज भरत सयन तहँ ठानू ॥
गुहहु सुतब निज बंधु बुलाये । सकल सैन रच्छन हित आये ॥
आय भरत की चौकी माहीं । रहत भयहु गहि अस्त्र तहाँहीं ॥

दोहा ।

आई नींद न भरत कहँ सोचबिबस दुख पाइ ।
समाधान तब करत भौ यौं गुह बचन सुनाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

छन्द ।

पुनि जोरि कर गुह भरत सौं या बिधि बचन तबहीं कहे ।
सीता सहित श्रीराम इतहीं आइ इक निसि स्वै रहे ॥
तब हौं सकल निजबंधुजुत चौकी चहूंदिशि दै रह्यौ ।
रघुनाथपदपंकज परसि अघ जन्मजन्मन कौ दह्यौ ॥

तब देखि जागत लखन कौं कर जोरि मैं बोल्यौ तबै ।
तुम स्वै रहहु निहचिन्त ह्वै हम देत हैं चौकी सबै ॥
अब मुहि न प्रिय कछु राम सम यह गंग कौ सौं करि कहौं।
इनकी प्रसादहि सौं धरमयुत काम अर्थ सबै लहौं ॥

दोहा ।

तब लछमन मोसों कह्यौ हौं न जगत भय पाइ ।
क्यौं सोवहुँ पर भूमि परि जहँ सोवत रघुराइ ॥

चौपाई ।

पुर तजि रामचले जिहँ छिन तैं । हौं इक नींद तजी तिहि दिनतैं
बन बिच प्रभु सेवक सुख सोवै । यह अनरथ सब सुधरम खोवै ॥
आलस तजि निज प्रभुसिवकाई। करि किनकहँ न लही प्रभुताई॥
जे त्रिभुवनजेता रघुराई । ते सोवत महि टननि बिछाई ॥
रामजनम हित सुमख अलेखे । किय दशरथ तब ये सुत देखे ॥
तिनहिँ भेजि बन नृप न जिऐगौ। यह बड़ शोच सुमम उर हैगौ॥
यह अनाथ पुनि पृथिवी ह्वैहै । कोऊ अवध बसत नहिँ रैहै. ॥
कौशिल्या अरु हमरी माता । तजिहहिँ प्रान न कोऊ त्राता ॥
जियहि तु जियहि सुमित्रामाई। इक शत्रुघन सुप्रेमहिँ पाई ॥
बीस बिसहु कौशिल्या मरिहै । तबहिँ नृपति निजतन परिहरिहै
नृपकहँ तहँ दैहहि जो आगी । ह्वैहहि पुरुष वहहि बड़भागी ॥
वहहि अवध कौ भूपति ह्वैहै । सुरदुरलभ सुख सहजहिँ पैहै ॥
हम न नृपति जीवत देखैंगे । धिक जीवन तब निज लेखैंगे ॥
यौं लखनहिँ बहु करत बिलापू। होतहिँ प्रात जगे प्रभु आपू ॥
सुवट छीर मोसौं मँगवायौ । सलखन जूट जटनि सिर छायौ॥

दोहा ।

इतहिं बिदा करि सचिव को मोहि राख पुर माह ।
गंग उतरि सुख सौं गए बनहिं लखन सिय नाह ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षड़शीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

छन्द ।

यौं भरत गुह के बचन सौं सुनि लखनकृत दुख ता समै ।
अति धीर ज्ञानी जदपि तौहू सोच-सागर मैं भ्रमै ॥
ह्वै मूरछित महि पर परे लखि शत्रुघन रोये तबै ।
लखि दुहुन भाइन की दशा नृपमाउतीं रोईं सबै ॥

दोहा ।

कौशिल्या तब बहु बिलपि भरतहि लीन्ह उठाइ ।
बदन पोंछि पूँछत भई या बिधि उरहि लगाइ ॥

चौपाई ।

कवन रोग सुत तुमकहँ भयऊ । कै काहू कछु तुम सौं कह्यऊ ॥
कै सिय राम लखन की पाई । अशुभ खबरि ताहित अकुलाई ॥
व्याकुल तोहि निरखि मम प्राना। शोकबिवस पावत दुख नाना ॥
राम बिपिन नृप सुरपुर माहीं । जीवत हम सब तुवभुजछाहीं ॥
जननिबचन सुनि होइ सचेतू । भरत कह्यउ सब निजदुख हेतू॥
बोधि जननिकहँ गुह सौं कहऊ। कह्यउ राम इत कित परिरह्यऊ
कह्यउकहापुनिकिहिबिधिखावा। ल्याइ कहा महि माँह बिछावा
तब गुहबचन भरत सौं कह्यऊ । हौं प्रभु हित कछु ल्यावत भयऊ॥

कन्द मूल मासहु पकवाना । कीन्है नजर विपिन फल नाना।
ह्वै सामहिं प्रभु मोसों कह्यऊ । मुहि न प्रतिग्रह अब किय चह्यऊ
राखु तहीं तह जो कछु ल्यावा। तोहि निरखि मैं सब कछु पावा
मम आगमन परखि प्रभु तूखे । हैं रघुपति प्रीतहि के भूखे ॥
मैं न कबहुँ कछु सेवल ठाना । सहज मित्र कर मुहि प्रभु माना
मैं पामर अति अधम कुजाती । ताकहुँ तबहिं लगायहु छाती ॥
है सख सुहृद यहहि कहि बोले। सुनहु भरत पुनि तुव गुन खोले।
करत रहे बहु तुम्हर बड़ाई । सुमुखि करोरिहुँ जात न गाई॥
तब लछमन सुरसरि जल आना। किय प्रभु द्रुत केवल जल पाना॥
सन्ध्या कीन्हि तबहिं शुचि ह्वै कैं। सलखन अरघ सुभानुहिं दैकैं ॥
दरभ तबहिं लछमन खनि ल्याये। इंगुदि तरु तर आनि बिछाये ॥
दरभ बिछावन लखि रघुराई । सीय सहित द्रुत बैठे आई ॥
तबहिं लखन प्रभु के पग धोये । या विधि राम द्रुतहिं परि सोये॥
लखन तबहिं कसि अषयनिषंगा। पहिर सुअंगुलि रखन अभंगा ॥
धनुष चढ़ाइ सुकर सर धारी । खड़िहिंखड़िहिंकियप्रभुरखवारी
ठाढ्यौ लखन निकट मै रह्यऊ । लखनविलाप सु तुम सों कह्यऊ

दोहा ।

लख्यौ परत हिंगोट तरु यह जु वहै सो आइ ।
दरभ परे वैई अबै जहँ सोए रघुराइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

छन्द।

यौं गुहबचन सुनि भरत कौशिल्या सहित तरु तर गये।
तहँ देखि दरभ बिछावनै तिनकहँ प्रनति करतै भये ॥
कहुँ चरन चिन्ह निहार तहँ की लै सुरज सिर पर धरी।
भेटे सुताप सुतकहि फिर फिर लाइ उर दुहुँ भुज भरी ॥

दोहा।

प्रेमबिबस लोचन सजल उर गिलानि नहिं थोरि।
भे भाषत प्रभुजननि सौं बचन भरत कर जोरि ॥

चौपाई।

लखहु जननि इत सिय रघुराई। भे सोवत महि दरभ बिछाई ॥
लीन्ह जनम जिन दशरथगेह्न। भू पर परि दुख भुगतत तेह्न ॥
सुमन महल अति अभरन भूके। अतर सुगन्धनि के जहँ ऊके ॥
बीन मृदङ्गन के झनकारे। फूल फरस फहरात फुहारे ॥
कंचन बलग बिछाइत भारी। सोवत हे तहँ अवधबिहारी ॥
ते अब अस कुश कास बिछाई। नीद लहत ह्वै हहिँ क्यौं हाई ॥
काल करमगति प्रबल निहारी। कोटिहु जतन टरत नहिँ टारी॥
जनकसुता दशरथसुत जाया। तिहिँ महिसयन लह्यउ मृदुकाया
भे भूषन घरखित इह ठीकैं। लखहु लगीं सुबरन की लीकैं ॥
उपड़ि रतन कहुँ भू पर जागे। कहुँ पट तन्तु तननमहँ लागे ॥
सियसनेह गुन जात न गाये। लखि पतिदुख निजदुख बिसराये
सब सुखजोग जु जनकदुलारी। सो मम अघ दुख देखत भारी ॥
सब सासुन प्रियप्रान समाना। जिहिँ न कबहुँ दुखसपनिहुँ जाना
लागि न जिहि तन तात बयारी। प्रभुहि सदा प्रानन तैं प्यारी ॥

मृदुमूरति सुकुमार शरीरा । सो पावति बन बसि बहु पीरा॥
हौं बिलपत इत ब्यथहिँ घनेरी । होत छ टूक न जो उर मेरी ॥
है लछमन इक सत्य सनेही । सुखहुँ दुखहुँ प्रभुपदप्रिय जेही॥
प्रभुजीवन दशरत्थदुलारी । सब मातुनकहँ इक सम प्यारी॥
शीलसदन सब आनँदजोगू । मम अघ तिनहुँ लह्यउ दुखभोगू
धिक मम जनम सबन दुखदाई। कहि न जात कछु उर अकुलाई
धनिसिय धनिलछमन लघुभ्राता। जे सेवहिँ नित त्रिभुवनत्राता॥
गे जु बनहिँ लछमन सिय स्वामी। है यह इक मम सिर बदनामी॥
अवनि भई अब सब बिधि सूनी। अवधपुरी हम सबनि बिहूनी ॥
ताहि न लूटत रिपु अभिमानी । प्रानहरन बिषमोदक जानी ॥
अब मुहिउचित हनिनि परिबोई । चीर जटा बलकल धरिबोई ॥
हौं अब सुपितु बचन पालहुँगो। सह शत्रुघन पगनि चालहुँगो ॥
सलखन राम फिरहिँ पुरही कौं। हौं पैहहुँ तब कछु कल जी कौं॥
करहिँ राज अभिषेक द्विजेशा । प्रभुसिर तब मम मिटहिँ कलेशा

दोहा।

पग परि प्रभुहि मनाय हौं करहु राज पुर जाइ ।
जो न मनिहैं तौ हमहुँ बनहिँ रहैंगे छाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

छन्द ।

या बिधि निवसि तट गंग के उठि भरत प्रात समै तबै ।
शत्रुघ्न सौं बोले गुहहि लै सेन उतराओ सबै ॥
गुह आइ शत्रुघ्नहि प्रनमि भाष्यौ भरत पग परसि कैं ।
नावैं तयार सुपाँच सै उतरहि कटक सुख सरसि कैं ॥

दोहा ।

या कहि गुह गृह जाइकैं बहु मलाह बुलवाइ ।
खैंचि मगाईं तरि सबै रामघाट पर आइ ॥

चौपाई ।

इकतरि स्वस्तिक नाम सुहाई । बहु धुज बहुत पताकनि छाई ॥
घंटा बहुत बँधे जिहिँ माहीं । आसन चित्र बिचित्र वहाँहीं ॥
नृपनि चढ़नि लायक तरि जोई। ल्यायहु गुह तहँ सब बिधि सोही
प्रथम चढ़े तिहि पर मुनिराई । बिप्र पुरोहित पुनि दुहु भाई ॥
कौशिल्यादि सकल नृपरानीं । चढ़त भईं नावन मनमानी ॥
और कटक सामग्री जेती । धरत भए नावनि पर तेती ॥
थल तजि सेन सकल इन लाई। बिधिवत बेगहिँ गंग अन्हाई ॥
इभ हय रथन भरी बहु नावैं । खेइ सु केवट पार लगावैं ॥
या बिधि कटक उतरि भौ पारू। आई स्वस्तिक तरि जु मझारू ॥
तबहिँ मलाहन बान भ्रमाई । भरतहि तरि गति बिबिधदिखाई
दीह दुरद पैरिहिँ भै पारा । घड़नावन किय इकन उतारा ॥
यौं ह्वै पार सु सेन चलाई । प्राग निकट पहुँचे पुनि जाई ॥

दोहा ।

भरद्वाज मुनि की कुटी रही जु परननि छाइ ।
दूरहिं ते देखत भये भूप भरत दृग लाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोननवतितम: सर्ग: ॥ ८९ ॥

छन्द।

तहँ सेन तजि इक कोस पर सु उतार निज आयुध सबै।
तन पहिर सित पट भरत भू पर पगनही चाले तबै॥
सँग लै पुरोहित सचिवगन मुनि आश्रमहिँ पहुँचत भए।
तहँ तजि सचिव करि गुरुहि आगैं टनकुटी भीतर गए॥

दोहा।

तहँ लखि विमल वसिष्ठ कौं भरद्वाज मुनिराय।
किय पूजन बिधिपूरबक निज हिय अति हरषाइ॥

चौपाई।

किय प्रनाम भरतहुँ कर जोरी। लखेहु सुमुनि दशरथसुत ओरी॥
है यह भरत सुगुरु सँग आवा। दै आसिष सनमान करावा॥
पूछि कुशल भरतहिँ बैठारा। भरद्वाज तब बचन उचारा॥
कहहु भरत क्यौं तजि निज राजू। आए कित किहि पर सज आजू॥
सुनि तुव सेन शबद अति भारू। उपजत मम उर सोच अपारू॥
तियबच दशरथकहँ अस भावा। ससिय राम बनकहँ पठवावा॥
तूँ का तिनकहँ हनन सिधारा। राज अकण्टक करन विचारा॥
यौं सुनि भरत सुमुनि की बातैं। भे बिह्वल अँग अँग सब गातैं॥
सूख्यहु बदन नयन भरि आये। ह्वै गदगदगल वचन सुनाये॥
हा मैं भयहु अबहिँ हतप्राना। तुमहुँ जु मुनि अस वचन बखाना
हे मुनि तुम यह संक न आनो। जननि जु कीन्ह सु मैं नहिँ जानो
जननि मोर सब भाँति बिगारा। ममहित लागि जु प्रभुहिँ निकारा
मैं सेवक रघुपति प्रभु मेरे। सत्य कहहुँ यह छुौ पग तेरे॥
जननिमनोरथ हौं न करूँगो। रामचरन रज सिरहिँ धरूँगो॥

चहिये मोहि न अवध-रजाई । भुवन चारि दस की ठकुराई ॥
बिनप्रभु अवधनिरखि अकुलायौ। हौं रघुपतिहिँ बहोरन आयौ ॥
तातैं तुम मुहि समुझि सुभाँती । होहु प्रसन्न जुड़ावहु छाती ॥
कहहु राम अब हैं किहि ठाहीं। हरषि तहाँकहँ हम सब जाहीं॥
बिनति बशिष्ठहु मुनिहिँ सुनाई। जानत भरत सुप्रभुसिवकाई ॥
भरद्वाज तब बचन उचारे । सुनहु भरत रविकुलउजियारे ॥
रघुकुलमाहि जनम यह पाई । तुमहिँ उचित गुरुपदसिवकाई॥
साधुसमागम पूजन तिनकौं । दमन उचित पुनि मन इन्द्रिनकौं
समुझन हित यह तुव दृढ़ताई । हौं प्रथमहिँ वह बानि सुनाई॥
सो सुन क्रोध न तोकहँ आयौ । मैं अब तुहि लखि तपफल पायौ
तुम निजमनमति धरहु गिलानी। को दूसर अब तुम सम ज्ञानी ।
तुमहिँ रामपदप्रेम जु भावा । तब तूँ अवधबिभव तजि आवा
सुनहु भरत मम भाग बड़ाई । करि करि सुतप त्रिबेनी न्हाई॥
ताकौ फल मुहि जात न गावा । ससिय राम लछमन लखि पावा
रामदरस फल कौ फल येही । देख्यहु तुमहिँ जु रामसनेही ॥
या कहि मुनि पुनि बचन सुनाये। चित्रकूटगिरमहँ प्रभु छाये ॥
होत प्रात तहहीं तुम जाऊ । भरि भरि दृगनि लखहु रघुराऊ
आजु कृपा करि इतहिँ रहीजे । जस तस फल दल भोजन कीजे
सुगुरु पुरोहित सचिव तिहारे । हैं सब ए अब अतिथि हमारे ॥

दोहा ।

भरद्वाजमुनिबचन सुनि भरत भूमिभरतार ।
तहँ बसिबे को एक निशि करत भये सु बिचार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

छन्द ।

जब भरद्वाज जु किय निमन्त्रन तब भरत यौं बच कह्यौ ।
तुम्हरे चरन अवलोकि मुनि आसिष सुहम सब कुछ लह्यौ ॥
तब मुनि कह्यउ तुमकहँ अलप अति आदरहुँ सन्तोष है ।
सनमानहहुँ सब सेन तुव दुरिह्नँ खरी जु अदोष है ॥

दोहा ।

रूखे सूखे मूल फल सिष्यन सों मँगवाइ ।
सेन सहित प्रोहित सबै दैहहुँ सबनि जिमाइ ॥

चौपाई ।

क्यों तजि दूरि सुसेनहि आये । भरत तबहिँ ए बचन सुनाये ॥
तुम्हरे डरनि न सेन लिआयौ । तुव आश्रम खग मृग मुनि छायौ
राजधरम इक रिपरखवारी । है मम सँग सब सेना भारी ॥
गज तोरत तरु जहँ लखि पावैं । गरद करत महि जहँ रथ धावैं॥
हय खुरधारन सुथल बिदारैं । जल अवगाहि मलिन कर डारैं॥
इहहि समुझि इत सेन न ल्यायौ। सुनि मुनि तबहिँ कटक बुलवायौ
गंगतीर सब सेन उतारी । तहँ पायहु सबहुन सुख भारी ॥
अगिनहोमशालहि मुनि गयऊ । करि आचमन सुबैठत भयऊ ॥
अति आतिथ्य करन के काजैं । कीं आवाहित अमरसमाजैं ॥
प्रथम बुलायहु मुनि बिशुकरमा। इन्द्रहु वरुन कुबेर सुधरमा ॥
आवहु तुम सब करहु तयारी । सामा ल्याइ सुलोकनवारी ॥
आवहु सुभग सरित जग जीतीं । या बिधि इतहिँ बहहु सब तीतीं
बहुत कहहुँ सुर आसव होई । होइ सुरा उमगहु पुनि कोई ॥

धारि सुजल सीतल की धारा । बहहु ऊँख रस मधुर अपारा ॥
सकल देव गन्धरबहु आश्रो । बिश्वावसु आदिक सब छाश्रो ॥
रम्भादिक जे इन्द्रसभा मैं । ते सजि सजि सब आवहु बामैं॥

छन्द ।

सोमा सु बिश्वाची घृताची मिश्रकेशि अलंबुषा ।
पुनि नागदत्ता उरबसी आदिस्थली जो मन्मुखा ॥
हेमा तिलुत्तम मेनका मृदु मंजु घोषादिक सबै ।
आवहु भरत की सेन कहँ सुप्रसन्न करि सेवहु अबै ॥

दोहा ।

हाहा हूहू चित्ररथ मिलि तुम्बुरु इत आइ ।
सचिवसेनजुत भरत कौं बहुत रिझावहु गाइ ॥

छन्द ।

सुभ देश उत्तरकुरु बिषैं बन चैत्ररथ यह नाम है ।
सो बन बिबिधि भूषन बसनमय पत्रयुत अभिराम है ॥
सुन्दर सरोजमुखीनमय जहँ रहे प्रफुलित फूल हैं ।
मेवा मधुर पकवानमय जामहँ सुफल अनुकूल हैं ॥

दोहा ।

या बिधि काजु कुबेर कौं बिपिन सु आवहु आज ।
सुखित करहु दल भरत कौं संजुत सचिवसमाज ॥

छन्द नराच ।

सु संग लै नछत्र बृन्द चन्द्र आज आवहू ।
सुभोज्य भक्ष चोष्य लेह्य अन्न यौं बनावहू ॥

सुगंध फूल मालिका अमन्द आनि छावहु ।
सुवास मास के प्रकार त्यों प्रकास ल्यावहु ॥

दोहा ।

मद्यपान हित रतनमय प्याला बहु बनवाइ ।
आवहु किन्नरगन सकल सुसँग किन्नरिन छाइ ॥

चौपाई ।

इमि समाधि धरि मुनिजु बुलाये। अखिल अमर तितहीं चलि आये॥
पवन सुमलयाचल तैं आयौ । छुवत दर्दुराचलहि सुहायौ ॥
सीतल मन्द सुगन्ध सुबह्यऊ । श्रम जलकन सब सोखत भयऊ ॥
प्रफुलित पुहुप घननि बरराये । दिवि दुन्दुभि सब सुरनि बजाये
सुअपसरहु नाचीं तहँ आछैं । गन्धरबिन किय गान जु पाछैं ॥
बीन मृदंगनि की धुनि छाई । भरत कटक सुनि रह्यउ घुमाई॥
तबहिँ बिश्वकरमा की त्यारी । बिबिध महल याविधि रचिभारी
प्रथम भूमि तहँ सम करवाई । योजन पाँच सकल छबिछाई ॥
उगे वृच्छ तहँ पन्ननही के । बिल्व कपित्थ सु कटहर नीके ॥
आम बिजौरन के तरु छाये । चन्दन तरु कदली वन भाये ॥
उत्तरकुरु की सरिता जेतीं । सुतट तरुनयुत सोंही तेतीं ॥
गजमन्दिर घोड़न की शाला । सहरपनाह चहूँदिशि आला ॥
चहुँ ओरन चारिहु दरवाजे । सुमनिकपाटनिसंजुत राजे ॥
तामहँ सुमनि महल रचि काढ़े । शशि सम धवल नवल छबि बाढ़े
झँझरिनयुत बहु भाँति झरोखा। जलमहँ थल थलमहँ जल धोखा॥
गौख सु गुम्मज बारह द्वारी । चौरैं चौकनि रतन कियारी ॥
थल थल छूटत फहरि फुहारे । बादर महल तयार अपारे ॥

देखि परत सम ऊँचिहु नीचैं । ताही बिधि सब लसत दुबीचैं॥
सुमन सुतरु सुमनन की माला। झूमहिँ तहँ इक इक तैं आला॥
अगर धूप धूपित गृह नाना । द्वारिन द्वारिन बिबिध बिमाना॥
बिमल बिछाइत गिलम गलीचा। तख्त सिँघासन फरस अपीचा॥
फरस फरसगादी बहु तकियाँ । मनिमय मीर फरस छबिछकियाँ
सुपय फेन सम सोहहिँ सेजैं । पुनि परजंक सुरंगामेजैं ॥
भूषन बसन लसत तिहिँ ठामा। सुबरन थार भरे बहु सामा ॥
षटरस भोजन बिंजन भारी । है सबहुन हित सकल तयारी॥
रतनसिँघासन तहँ इक सोहै । अस को जासु मनहिँ नहिँ मोहै
सुरन जु किय तहँ आइ तयारी। सकहि न बरन सुबिधि मुखचारी
भरद्वाज मुख आयसु पाई । भरत प्रवेश कियहु तहँ आई ॥
मनिमय महल निरखि हरषानै। अति अचरज सबहुन मिल मानै
तहँ इक राजसिँघासन आयौ । चमर मोरछल छत्रन छायौ ॥
भरत पेख परिकरमा दीन्हीं । सुमिर रामपद पूजा कीन्हीं ॥
लै कर चमर सिँघासन पाछैं । बैठे भरत हरषि मन आछैं ॥
दहनी ओर सुगुरु द्विज प्रोहित। भे बैठत कबि पण्डित सोभित॥
बाईं तरफ़ सचिव सब छाजे । तिनहुँ तरैं सेनापति साजे ॥
तिनहू तैं नीचैं भट भारी । बैठे करहिँ जु नृप रखवारी ॥
सकल खवास भरत के पाछैं । ठाढ़े रहत भये तहँ आछैं ॥
भे सनमुख प्रतिहार खरेई । तिन आगें गायक थित भेई ॥
गावत गान बजावत बीना । रामसुजस कबि कहत प्रबीना॥
यौं जु सभा सब आइ बिराजी । जा कहँ देखि सभा लखि लाजी
मुनि तप तेज सरित जे आईं । पायस पय दधि मधु ह्वै छाईं॥

तिन तीरन पर महल सुहाये । गे वन तवहिँ सवन मनभाये ॥
सु अपराध विधपुर तैं आई । बीस हजार विभूषन छाई ॥
बीस हजार कुबेरहु भेजी । सु अपसरा निज निरत मजेजी ॥

दोहा ।

पहिरै भूखन बसन बहु केल कलनि अनुरत्त ।
जिनहिं सु आलिंगन करत पुरुष होत उनमत्त ॥

छन्द ।

इन्द्रहुँ सुनन्दन बिपिन तें भेजी तितीं पुनि अप्सरा ।
जूटी जवाहिर सौं सुगजमुकतान के पहिरैं हरा ॥
नारदहु तुंबुर आदि सब गन्धरब तहँ आवत भये ।
बहु बीन बेनु मृदंग बाजति सात सुर तबहीं छये ॥

छन्द नराच ।

अलंबुषा सुमिश्रकेशि पुण्डरीक बामना ।
लीस सु अप्सरा तहीं सुचारु चारु नामना ॥
मुनीश के सुतेज सौं भरत्त पास नाचतीं ।
सुहाव भाव भूरि कैं अनंग रंग राचतीं ॥

दोहा ।

भरद्वाज तपतेज सौं विपन चैत्ररथ आइ ।
सफल मूल प्रगट्यो तहँहिं लख्यो सबनि हरखाइ ॥

चौपाई ।

बिल्व सुतरु जहँ मृदंग बजावैं । ताल बहेरन की तरु छावैं ॥
पीपर तरु नाचत गति ठानैं । लखि अचरज यह सब हरषानैं ॥

सरल रसाल तिलक तरु ताला । सुवट अशोकहु बकुल तमाला॥
ये सब रूप तियन कौ धरि कैं । भे भाषत मद प्यालनि भरि कैं॥
सुमद अमल यह पियहु पिआवो । मास बिबिध बिधिकै पुनि खावो
चरहि सुपायस भषहि बिसाला । मृदु मेवा मधु बिंजन जाला ॥
इक इक नरन सुबसु बसु नारीं । करि करि उदवरतन सुकुमारी॥
अन्हवावहिँ लै गरम सु पानी । चाँपहिँ चरन कहहिँ मृदु बानी
प्यावहिँ मद पुनि भरिभरिप्याला । पहिरावहिँ भूषन मनिमाला ॥
हय गय ऊँट बरद पशु जेते । भे पावत सु मसालन ते ते ॥
सुतरवान रथवान सहीसौ । सुगढ़दार तिनकै पुनि ईसौ ॥
करि मदपाननि ह्वै मतवारे । तजि तजि बाहन फिरहिँ सुखारे
ह्वै सब चन्दन चरचित अंगा । सुअपसरन मिलि करहिँ प्रसंगा॥
हरषि पाइ तहँ सब मिलि भाषैं । भरतहिँ मुनि अब इतही राखैं॥
अवध न दण्डकवन हम जैहैं । रामहिँ इतहिँ असीसत रैहैं ॥
लहहु कुशल बहु भरत सदाहीं । दिय जु गरीबन बड़ सुख ह्याहीं
अस सुख कान सुन्यहुँ नहिकबहूँ । सहजहिँ सुसुख लह्यउ इत सबहूँ
सैन सु सँग परदेशी जेते । भे भाषत ह्वै हरषित तेते ॥
स्वर्ग यहहि यह हरपुर जानौ । ब्रह्मलोक यह और न आनौ ॥
यौं कहि हँसहिँ नचहिँ पुनि गावैं। दौर चलहिँ कछु पुनि फिरि आवैं
धारे सबन सुफूल अतूला । सुमनि बिभूषन बिमल दुकूला॥
सब मिल अतर फुलेल लगावैं । भे सोभित निज निज छबिछावैं॥
फूलन की तुर्रा सिर धारैं । चटक चाँदनिन चकित निहारैं॥
बन बराह बकरन के जैसैं । खग मृग कष मासहु पुनि तैसैं॥
कलियन कलित कबाब पुलावा । भषहिँ सुकंचन थारन छावा ॥

तृपित होइ सुभ सुख अवगाहैं । मधुर अन्न पुनि चाख्यहु चाहैं ॥
कूप सकल नीरन के भेई । विमल बावरिन मध्य भरेई ॥
गायैं सुरधेनुहिँ ह्वै छाईं । सुबरनमय झारी तिहि ठाईं ॥
सुवरन कलस करोरन प्याला । रतनजटित थारन की माला ॥
कुण्ड करोरन सबनि लखेई । सुघ्रत छाछ दधि दूध भरेई ॥
सुभग गन्ध केसर सौं बासे । शिखरनि के वह कुण्ड बिभासे ॥
मिश्री कन्द सकर की रासैं । यौं अति उच्च जु छ्वहिँ अकासैं ।
चटनी चूरन बनत न भाषैं । भूख लगत पुनि जिनके चाखैं ॥
कूचिनयुत दतवनि के बृन्दा । भे देखत सब पाइ अनन्दा ॥
रतनजटित सुभ हेम खराऊँ । जिनकी छबि अब कहँलगि गाऊँ
सहित सलाकन सुरमादानी । मनि डाबिन चन्दन रज छानी ॥
छत्र धनुष बखतरहु तुनीरा । दरपन असन बसन मनि हीरा ॥
आसन सयन बिछाइत भारी । सरित सरित तट सबनि निहारी
बिमल नीर कमलन सौं छाये । या विधि के सरवर मनभाये ॥
ऊँट बरद हय हाथिन काजैं । हरित हरित तृन परवत राजैं ॥
सेन पुरुष तहँ लखि इमि सोभा। को अस सुमित न बिस्मित जोभा
नन्दन बिपिन सुरन के नाईं । सबहुन मिल वह क्रीड़ा छाईं ॥
या बिधि मुनि आश्रम के माहीं। सुख सौं सुनिशि गई इक ठाहीं
होतहिँ प्रात सरित सुर जेते । मुनिहिँ प्रनति करि गे सब तेते
सुअप्सरा करि मुनिहिँ प्रनामा । जात भईं सब निजनिज धामा॥

दोहा ।

सेन सकल उनमत्त ह्वै सोय रही सुख पाइ ।
होत प्रात जागे भरत भे सुमिरत प्रभुपाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

छन्द ।

इमि भरत इक निशि निवसि तहँ लखि प्रात ढिग मुनि के गये ।
करि होम बैठे भरद्वाजहि लखि प्रनति करते भये ॥
मुनि दै असीस कह्यौ वचन निशि मैं कहा कछु अहित भौ ।
तब भरत बोले सेनयुत लहि सकल सुख मैं तृपित भौ ॥

दोहा ।

दीजे अब आयसु हमहिं गमन हेत सुख पाइ ।
कहहु कवन बन कौन थल किहि आश्रम रघुराइ ॥

चौपाई ।

तब मुनि भरतहि बानि सुनाई । मन्दाकिनि इक सरित सुहाई ॥
ता नदि के उत्तर तट माहीं । बिपुल बिपिन वृच्छन की छाहीं
चित्रकूट तहँ गिरिवर राजै । ससिय लखन तहँ राम बिराजै ॥
सुनहु सु मग मम जान्यहु जो है। उतरहु प्रथम कलिन्दी सो है ॥
दच्छिन पार बहुत बनखण्डी । कछुक दूरि पर इक पगदण्डी ॥
ताकहँ तजि दाहिन मग ह्वै कैं । चलियहु भरत कटक सँग लैकैं ॥
कौशिल्यादि सकल नृपरानी । न्हाइ प्राग मुनिपहँ गति ठानी ॥
किय प्रनाम सबहुन सिर नाई । लहि मुनि दरसन होत अघाई ॥
सुअघ दीनमुख ह्वै कयकेई । किय प्रनाम मुनिकहँ तहँ तेई ॥
मुनि सु भरत सों पूछत भयऊ । कवन जननि प्रभु की सो कहऊ ॥
लखन मातु पुनि तुव महतारी । इनमहँ कवन कहहु निरधारी ॥
या बिधि जब पूछ्यहु मुनिराई । भरत सु जननी तबहिं बताई ॥
शोकबिवस ह्वै दीन जु ठाढ़ी । अति तन छीन दुसहदुख बाढ़ी ॥
जो नृप दशरथ की पटरानी । कौशिल्या सुभ नाम बखानी ॥

सो यह रामजननि तुम जानौ । ताकी ढिगहिँ सुमित्रा मानौ ॥
लखन शत्रुघन की यह माई । है अति दीन सरन तुव आई ॥
वह ममजननि लखहु कयकेई । जाकी अघ नृप प्रान तजेई ॥
राम लखन सिय बनहिँ सिधारे । हमहुँ भरत या दुख के मारे ॥
या कहि भरत सुजननि निहारी । क्रोधविवस मुख भौ विकरारी ॥
तबहिँ भरत सौं सुमुनि उबाचे । सुनहु भरत हमरे वच साँचे ॥
यह न दोष कछु कयकेई कौं । दोष न नृपहि न पुनि तुमहीं कौं

छन्द ।

किय राम जो बनबास यह सो सकल सुर मुनि रच्छिवैं ।
लिय जनम जो दशरत्थगृह लखि रच्छसनि के धच्छिवैं ॥
प्रभु ईश परमानन्दमय जिनके चरित्र अपार हैं ।
को कहि सकहिँ जिनकी अमित लीलान के बिस्तार हैं ॥

दोहा ।

यों मुनिबानी भरत सुनि मुनि कहँ कीन्ह प्रनाम ।
कूँच करायो सेन को सुमिर सु मन सियराम ॥

सोरठा ।

रथ पर चढ़ि दुहु भाइ नृपरानी चढ़ि पालकिनि ।
मुनि की करत बड़ाइ चित्रकूट गिरि कहँ चले ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्विनवतितमः सर्गः ॥ ९२ ॥

छन्द ।

त्यौं सेन सब सँग भरत के सजि चित्रकूटहि कौं चली ।
वह धूरि धूँधिर के उठत लखि परत नहिँ काहू गली ॥

रवि झँपिगे पिसगे सुपव्वय सुहय-खुर-थारान सों ।
भाजे सकल बनगज बराहहु बाघभय भारान सों ॥

दोहा ।

उमड़ सुसेन समुद्र सी चली विपिन महँ छाइ ।
बोले भरत वसिष्ठ सों अब देखहु मुनिराइ ॥

चौपाई ।

भरद्वाजमुनि जस कछु कह्यऊ । चित्रकूट यह दीसत अह्यऊ ॥
बहत सुमन्दाकिनि सरिता है । जामहँ नित रघुपति अवगाहै ॥
गिरि तरु फल फूलन बरसै है । रघुपतिहित सब बिधि सरसै है॥
हे शत्रुघ्न लखहु गिरिराया । बसत जु इत किन्नर समुदाया ॥
फौजडरन मृग फिरत उड़ानै । तजि तजि तरु खग नभ मड़रानै
पहिल जु यह बन निर्जन तैसो। भयहु सु अबहिँ अजुध्या ऐसो ॥
धूरि सकल सो पवन उड़ाई । यातैं हमहिँ लगत सुखदाई ॥
सारथि रथ दौरावत भारे । मोर उड़त बोलत बनवारे ॥
सुमृग मृगिनि के बिचरत बृन्दा। लखहु करत मुनि सुतप अमन्दा॥
यातैं फौज रहहि अब ह्याहीं । आगैं कहँ बहु पैदल जाहीं ॥
अबहिँ समुझि सुख प्रभु के थानै। सुनि पैदल चलि भे हरषानै ॥
जहँ तहँ बिपिन बिलोक्यहुजाई। धूम सु इक थल पर्‌यहु लखाई ॥
दूरहु तैं लखि ते फिरि आये । सबनि भरत कह वचन सुनाये ॥
इक थल धूम रह्यहु मड़राई । समुझे परत तहहिँ रघुराई ॥
कै मुनि होइ सुऔरहु कोई । बिन मानुष बन धूम न होई ॥
यौं सुनि भरत सुवचन उचारे । रहहु सबै तुम इतहिँ सुखारे ॥

सचिव पुरोहित लै निज संगै । जैहहुं तहँ जहँ धूम उमंगै ॥
भरत चले तब या बिधि भाषी। सेन सकल तितहीं थित राखी ॥

दोहा।

देखहिंगे श्रीरामपद या बिधि करत बिचार ।
भरत चले रथ तें उतरि देखत विपिन पहार ॥

इति श्री अयोध्याकांडे त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥

छन्द ।

तहँ बहुत दिन श्रीरामचन्द्र सु चित्रकूटहिँ मै रहे ।
गिरि मै फिरत लखि सीय सौं इक समै सुवचन यौं कहे ॥
पितु मातु राज सुमित्र पुर तजि आइ हौं या थल रह्यौ ।
गिरिराज चित्र बिचित्र लखि मन माहँ आनँद अति लह्यौ ॥

दोहा ।

जनक-दुलारी देख तौ का ऊँचौ गिरिराज ।
जहँ खग मृग बहु भाँति के सुख सोभा की साज ॥

चौपाई ।

चाँदी सम कहुँ फटिक समाना । कहुँ मानिकसम सिखरविधाना॥
कहुँ कहुँ पीत हरित कहुँ सोहै । नीलवरन कहुँ मुनिमन मोहै ॥
बहु बानर बहु रीछनि छाज्यो । सु पिक मयूर सुकनि जुत राज्यौ॥
बड़हर कटहर आम अचारा । अमिलि अनार कदंब अपारा ॥
धव जामुनि वट हरड बहेरा । बिल्व विपुल बासन के भेरा ॥
औरहु तरु छायन सौं छायौ । विद्याधर किन्नरन सुहायो ॥

कहुँ निर्झर झरझर झरलावैं । गुपत गुफा सुख सौरभ छावैं ॥
या बिधि कौ इह लखि गिरिराई। को अस जासु न मन हरखाई ॥
सुनहु सीय लहि साथ तिहारौ। मोकहँ यह गिरि लगत पियारौ॥
रहहु जु बर्ष हजारहु ताँई । लषन सहित तौ कछु दुख नाँई ॥
मम मन इमि रमि रह्यहु इहाँहीं। अब सु अवध सुध आवत नाहीं॥
इत बनवास करत मनभाये । द्वै फल बिनहिं प्रयासहु पाये ॥
किय बच सत्य जु नृपति उचारौ। दूजै भयहु भरत कहँ प्यारौ ॥
तुमहु कहहु सिय सत्य इहाँहीं। मन तुव रमत रमत कै नाहीं ॥
हमरे कुल मनुआदिक जेते । नृपति भये सुव सेवन हेते ॥
रानिन जुत लहि सब सुख तेई। ब्रह्मलोक तप कर पहुँचेई ॥
सुनि सिय म इह परबत माहीं। औषधि दिपहिं दियन कै नाहीं॥
इह गिरिराज रहहु तै नीकौ । बहुबिचित्र जनु महि कौ टीकौ॥
फटिकशिला इक गिरि र छाई। जौन्हमनहुँ इति शशि तजिआई॥
ललित लतादल भूरजमन्ना । बिबिध बिछाइत बटतरु छन्ना॥
अमरावति अलकापुरि सोऊ । गिरिपटतर लगिसकत न दोऊ॥
बिपिन चैत्ररथ तैं यह नीकौ । याहि लखहिं सब लागत फीकौ॥

दोहा ।

या बिधि गिरिसोभा सकल सियहि दिखावत राम ।
चित्रकूट महँ बसत भे सब बिधि पूरनकाम ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

छन्द ।

यौं सियहि शैल दिखाइ लखि मंदाकिनिहिं बोले तबै ।
रघुबीर सिय सौं लखहु तुम सरिता जु सुखदाइनि सबै ॥

दुहुओर चित्र बिचित्र इक सम सुभग याके तीर हैं ।
जहँ सु तट तरु बहु फूल बरसत लसत निर्मल नीर हैं ॥

दोहा ।

चक्रवाक कहुँ बक कहूँ कहुँ सारस कहुँ हंस ।
करत केलि सोभित जहाँ कहूँ बेत कहुँ बंस ॥

चौपाई ।

बहु मृग जूथ करत जलपाने । देखहु मुनिवर कर असनाने ॥
देत अरघ सूरज कहँ ठाढ़े । धारि जटा बलकल तपबाढ़े ॥
पढ़ि पढ़ि मंत्र सुबरनन साजे । तटनि तटनि जप करत बिराजे ॥
बहु तपसी बहु सिद्ध सुहाये । निशिदिन रहत सरित पर छाये ॥
हौं लखिगिरि यह नदिसुखपायो । बनबसि अवधनगर बिसरायो ॥
तूँ कर इतहिं बिहार बिशाला । तोर कमल रचि मंजुल माला ॥
या विधि सुख सों रहत यहाँहीं । यह गिरि जान अवध की नाईं ॥
समुझ सरित यह सरजू सोई । यह बन बसत कलेश न कोई ॥
तूँ लछमन सुख मोहि दियोई । सेवन पुनि सब भाँति कियोई ।
ह्याइ त्रिकाल भषत फल नाना । मोहि बिपिन यह जात न जाना
यौं कहि निरखि शिला तहँ भारी । बैठे ससिय सुअवधबिहारी ॥
फूलीं ललित लतनि सिय जोई । धरि इक प्रभु गोदहि में सोई ॥
लै गिरिधातु सु कौतुक छावा । सियललाटमहँ तिलक लगावा ॥
रचि फूलन की माल सुहाई । सियकहँ तबहिं सुकर पहिराई ॥
लखि बानरकहँ सिय भय पावैं । राम तबहिं कपिकहँ दुरियावैं ॥
यौं करि सुगिरि बिहार सुहाये । पुनि प्रभु परनकुटीकहँ आये ॥
ल्याये लखन सु दस मृग मारी । हरखी निरखि सु जनकदुलारी ॥

रचि पचि सुचि वह माँस बनायौ । देवन भाग दियहु मन भायौ ॥
राम लखन कहँ परसि जिमायौ । बच्यहु प्रसाद सु आपुहिँ खायौ॥
बाकी बच्यहु सु लागि सुखावन । आये तब बहु काक अपावन ॥
करत सीयकहँ पल रखवारी । इक बायस दीन्हहुँ दुख भारी॥
राम आइ तब ताहि निवारौ । तदपि काक वह टरयहु न टारौ ॥
लै इक चिन प्रभु क्रोध उमाह्यौ । पढ़ि ऐसायुध मंत्र सुबाह्यौ ॥
भज्यहु काक लखिसरयहँ पछ्यावा। बायस लोक तिहुन फिरि आवा॥
कोऊ राखि सक्यहु नहिँ ताही । समुझि समुझि रघुराजगुनाही ॥
काहू कहुँ न जु खगहि बचायौ । काक सु रामसरनहीं आयौ ॥
आय सरन ये बचन उचारे । हौ तुम सरनागतरखवारे ॥
तुव सरचास चिजग फिरिआयौ । काहू कहुँ मोकहँ न बचायौ ॥
या कहि प्रभुचरनन पर परयऊ । राम तबहिँ इमि बचन उचरयऊ
मैं सर तज्यहु हननहित तोही । मम आयुध यह बिफल न होही
अब तूँ जो मम सरनहिँ आयौ । तौ यह करु ममबचन सुहायौ ॥
दै इक अँग रखि लै निज प्रानै । ममसर यह निरफल नहिँ जानै॥
यौं सुनि खग मन कीन्ह बिचारा। दै अँग और न मोर गुजारा ॥
तात है दृगमहँ इक दीबौ । उचित मोहि याही बिधि जीबौ॥

दोहा ।

यों इक दृग दै काक वह चतुराइन को खानि ।
जात भयहु प्रभु-पद परसि पुनर्जन्म निज मानि ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

छन्द।

यौं बहु बिनोदनि ठानि प्रभु तहँ सीय मनहिँ रमावहीं।
ये भषहु फल यह मास खावहु यौं सुबैन सुनावहीं ॥
ताही समै बहु धूर धुंधुरि भरतसेना तैं भई।
सुनि-सेन कोलाहल भजे बहु बिपिनचर कहिएवई ॥

दोहा।

राम कह्यहु तब लखन सों देखहु दृगन लगाइ।
होत कहाँ यह सबद बड़ रही धूर क्यों छाइ ॥

चौपाई।

कै आयहु बनगज मतवारौ। अरुना महिष किधौं तन भारौ।
कैधौं सिंघ मृगनि डरपायौ। कै कोऊ नृप मृग हित आयौ॥
लखन तबहिँ चढ़ि इक तरुमाहीं। भे देखत पूरब दिशि पाहीं॥
लखत भये उत्तर दिशि जबहीं। आवत सैन लखी अति तबहीं॥
गजरथ पैदल तरल तुरंगा। उमड़े मानहु समुद तरंगा॥
यौं लखि लछमन कह्यउ पुकारी। है आवत सनमुख दल भारी॥
तातैं अबहिँ सुअगिन बुझाओ। सीतहिँ गुपत गुफहिँ पठवाओ॥
धनुष तयार करहु बड़ भाई। बाँधहु कवच करहु अतुराई॥
यौं सुनि लखनबचन प्रभु कह्यऊ। किहकी सैन सु देख्यौ चह्यऊ॥
इक निशान तब लखन निहारौ। सु कचनार तरु चिन्हित भारौ॥
लखि निशानपुनिलछमनकह्यऊ। है आवत यह भरत उमह्यऊ॥
सुरदुरलभ लहि अवधरजाई। हमहिँ तुमहिँ हनिहहि रघुराई॥
राज अकण्टक करन बिचार्यौ। लै सँग सैन जु बनहिँ सिधार्यौ॥
करत राज मदमूढ़न केही। भूली तुवपदभगति जु येही॥

लहि जोबन धन महि प्रभुताई । को अस जाहि न दुरमति आई ॥
कयकेयिहु पुनि या सँग ह्वै है । हमहिँ तुमहिँ जो जियन न दैहै ॥
त्यौं शत्रुघ्न कुमति कौ दाता । ह्वैहहि संग जु ममलघु भ्राता ॥
समुझि तुमहिँ इकलौ बनमाहीं। आये हनन कुरँग के नाईं ॥
जानत यह नहिँ लखन तहाँ है। मीचबिबस जो आयहु ह्यां है ॥
तातैं मुहि अब आयसु देहू । करिहहुँ युद्ध न अब सन्देहू ॥
है यह इकहि सकल दुखमूला । जा कारन नृप हमकहँ भूला ॥
या सम हमर न बिय अपकारी। ताहि हनत कछु अघ न विचारी ॥
निहनि रिपुहि दै तुमहिँ रजाई। करि अपुत्र केकय की जाई ॥
ता पीछूँ कयकेयहु हनिहौं । पुन्य पाप अब कछु नहिँ गनिहौं ॥
चित्रकूट बनमहँ रन आजू । हौं करिहहुँ रघुपति तुव काजू ॥
सु रिपुरुधिरमय सरित बहाऊँ । सकल बिपिन मासहिँ सौं छाऊँ ॥
गीध स्यार औरहु मसहारी । करिहहुँ तृपित सकल रिपुमारी ॥

दोहा ।

रिपुमुंडन की मालिका पहिरहिं आज महेश ।
करहिं राज प्रभु अवध कौं सीता तजहिं कलेश ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षण्नवतितमः सर्गः ॥९६॥

छन्द ।

इहि भाँति क्रोधित लखन के सुनि बचन प्रभु बोले तबै ।
सुनु भ्रात तुव भुजबल बिपुल तिहुँलोक जानत हैं सबै ॥
तू चहहि तौ नभ करहि महि महि लै सुभुज नभ पर धरै ।
को अस अजान जु जानि तोकहँ युद्ध उद्धत ह्वै करै ॥

दोहा ।

बिन समुझै नहि कीजिये कौनहुँ काज अकाज ।
पहिलै श्रम पछिताउ पुनि ताकौ कछु न इलाज ॥

चौपाई ।

प्रथम राजमद तुम जो गायौ । हैं सो वह ताही विधि छायौ ॥
भरत-सरिस जे या जगमाहीं । तिनहिँ राजमद आवत नाहीं ॥
तिहुलोकंन की लहि ठकुराई । उपजहि गरब न भरतहिँ भाई ॥
लेहु लखन यह मम मत सोधू । व्यर्थहिँ भरत पर करहु न क्रोधू ॥
आयहु भरत जो यह बनमाहीं । तौ हमकहँ अब कछु भै नाहीं ॥
हौं पितु सौं प्रन कर बन आयौ। भरत करहिँ सब राज सुहायौ ॥
मैं यौं भरतहि दीन्ह रजाई । यातें उचित न करब लराई ॥
राजलोभवस ह्वै जो मरिये । कै भरतहि बिन प्रानन करिये ॥
दुहुँ भाँतिहुँ बड़ अपजस होई । लोग हँसहिँ भल कहहि न कोई
निहनि बन्धु तिनकौ ठकुराई । हौं न चहहुँ सगनिहुँ सुनि भाई
काम अरथ धरमहुँ की छाहौं । मैं इक भाइन के हित चाहौं ॥
भुवन चारि दस की ठकुराई । हौं न चहहुँ भोगहिँ सब भाई ॥
निहनि बंधु लहि अवधरजाई । यामहँ मोहि कवन सुख भाई ॥
मोहि न कछु दुरलभ महिमाहीं। सत्य धरम प्रिय तदपि सदाहीं ॥
मिलहि जु अधरम सों सुरराई । मोहि न सो सपनेहुँ सुखदाई ॥
भरत शत्रुघन तुमहिँ बिहाई । हौं न चहहुँ सुरलोक-रजाई ॥
भरत-आगमन कौ जो हेतू । हौं अब लीन्ह समुझि निज चेतू
तजि ननसार भरत यह जबहीं। आयहु अवध होयगौ तबहीं ॥
सुनत भयहु ह्वै हैं तहँ येहो । बन गे राम लखन बयदेही ॥

सुनि निज जननि करि कुबड़ाई। दशरथपगन साथ निज नाई ॥
हमहिं तुमहिं मिलबेकहँ आयौ। याकहँ राजतिलक नहिं भायौ ॥
भरत न करिहहि कबहुँ खुटाई। तजहु शङ्क तुम लक्षमन भाई ॥
राज करब जो तुमकहँ भायौ । दैन भरत सो सहजहिं आयौ ॥
सुनि मम बचन भरत हरषैहै । राजतिलक तुमहीं कहँ दैहै ॥
यौं प्रभुबच सुनि लखन लजानौ। ह्वै लज्जित पुनि बचन बखानौ॥
आवत नृपहु तुमहिं लैबे कौं । राजतिलक पुनि त्यौं दैबे कौं ॥
सकुचसहित सुनि लछमनबानी। राम तबहिँ यह बात बखानी ॥
ऐहहिँ नृप साँच्यहु लै जैहैं । राजतिलक पुनि हमकहँ दैहैं ॥
तुमहिँ सियहि औ बनदुख जेतौ। करिहहि दूरि नृपति सब तेतौ॥
लखहु लखन है तुरँग सुहाये । आवत बेगि जु नृप मनभाये ॥
शत्रुञ्जय नृप गजहु निहारौ । आवत छत्ररहित तनभारौ ॥
होत सु ममम न संशय यातैं । है न नृपति सुख लहहु कहाँतैं॥
यौं सुनि रामबचन लघु भाई । तरुतैं उतरि अवनि पर आई ॥
जोरि सुकर उर अतिहीं लाजे । लहि आयसु प्रभुनिकट बिराजे॥

दोहा ।

भरत सैन सब शैलतैं तब छ कोस पर राखि ।
भे चालत निज पगनहीं राम दरस अभिलाषि ॥

इति श्री अयोध्याकांडे सप्तनवतितम: सर्ग: ॥ ९७ ॥

छन्द ।

सैनहिँ उतारि तहाँ भरत शत्रुघ्न सौं बोले तबै ।
लै सँग सवर गुहयुत सकल श्रीरामथल खोजहु अबै ॥
हौं पुनि सचिव प्रोहित सहित बन भ्रमत खोज लगाइहौं ।
तब लौं न सुख मुहि कहँ जलगि प्रभुचरन नहिँ लखि पाइहौं ॥

परसे जलगन पुन्यपद लख्यहु न प्रभुमुखचंद ।
सौंपों राज न राम कहँ तलगि न मुहि आनंद ॥

चौपाई ।

धन्य लखन धनि सिय महिजाई। करत जु निशिदिन प्रभुसेवकाई
चित्रकूट परवत धनि एही । बसत जहाँ प्रभु पुनि वयदेही ॥
यह कहि भरत पगनि चलि भेई। रामदरश-अभिलाष भरेई ॥
सिर पर छत्र न पायन पनहीं । कण्टक लगत न कछु मन गनहीं
प्रेमबिबस पग धरत उताले । गनत न पुनि रविकिरन कसाले॥
कोमल पगनि परे बड़ फलके । कमलदलन पर जनु कन जलके॥
कंकर गड़त न नाक सकोरैं । छाईं दृगनि सनेह-हिलोरैं ॥
सीस जटा तन बलकल धारैं । इत उत प्रभुपदचिन्ह निहारैं ॥
श्रमसीकरबर मुख पर छाये । जनु ससि श्रवत अमृतकन भाये॥
करहिँ न कहुँ तर तरु बिश्रामा। खोजत फिरहिँ बनहिँबन रामा॥
करत मनहिँमन सोच बिचारा । राम सुनत कहुँ नाम हमारा ॥
जाहि न कहुँथल तजि अनितैई। तौ बड़ मोहि बिपत इत हैई॥
समझहिँगे मुहि सब अपराधी । है न जतन यह वाढ़हि व्याधी ॥
कयकेई दिय दुख प्रभु काजै । हौं जु भरत अब ताको लाजै ॥
ममहितलागि जननि नृपमार्यो। ससिय राम लछमनहि निकार्यो
तातैं है ममसिर सब दोषू । लखि मुहि लखन करहिगो रोषू
हौं परिहहुँ तब प्रभु के पाइन । को रघुपति सम सीलसुभाइन ॥
छमिहहिँ ममकृत सब अपराधा। हैं प्रभु करुनासिंधु अगाधा ॥
यह रघुपति को सहज सुभावा। कबहुँ न सरनागतहिँ सतावा ॥

अस बिचार करि धरि दृढ़ताई। मिलहि जु तिहि पूछहि कह भाई
तूं कहुँ राम बिपिनमहँ देखे । ससिय लखन गुनगननि विसेषे॥
यौं पूछत पुनि मृगनि बिहंगनि। भ्रमत बिपिनमहँ दरस उमंगनि॥
लखि इक बड़ तरु साल तहाँहीं। चढ़ि तापर देखेहु चहुँघाहीं ॥
परनकुटी तब एक निहारी । लखि पुनि धूम सु मनहि बिचारी
ह्वैहहिं बसत इतहि रघुराई । यहहि समुझि सुख उर न समाई

दोहा ।

हुती संग जो भीर कछु ताकहँ तजि तिहि ठाम ।
भे चालत तहँ को भरत जहाँ विराजत राम ॥

इति श्री अयोध्याकांडे अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

छन्द ।

तहँ भरत अरु शत्रुघ्न प्रभुपद पेष वैं चाले जवै ।
सुवशिष्ठ सौं भाषे यहहि जननीनकहँ ल्यावहु अबै ॥
गुह अरु सुमन्त्र चले तबहिँ पिछलागि दुहु भ्रातान के ।
हरषत हिये सब दरसहित श्रीरामरूपनिधान के ॥

दोहा ।

या बिधि चलि देखत भये परनकुटी प्रभुधाम ।
कीन्ह सबन मिलि दंडवत ता कहँ तबहिं प्रनाम ॥

चौपाई ।

आश्रम निकट बिटप जे भारे । तिनमहँ झूमत चोर निहारे ॥
भरि भरि भुजन बिटप जे भेटैं । प्रेमबिबस सुख सकल समेटैं ॥

सीतनिवारनहित चहुँ पासैं । देखी बहु उपरन की रासैं ॥
नीरस तरु इन्धन को ढेरी । त्यौं लागी आश्रम चहुँ फेरी ॥
लखत चलत इमि भरत उचारे । सुनहु सबै मिल बचन हमारे ॥
भरद्वाजमुनि जस कछु कह्यऊ । सो यह थान तथा विधि लह्यऊ॥
ऊँचे तरुमहँ लछमन भाई । बाँधे चीर धुजा जनु छाई ॥
दूरिहुतें अँधियारिहु माहीं । थल मारग समुझहिँ के ताहीं ॥
ह्याँ अब मैं देखहुँगौ रामै । यह मन्दाकिनि तट अभिरामै ॥
जे प्रभु सब राजन के राजे । ते भू पर ह्वैहैं ऽत्र विराजे ॥
मो कारन प्रभु बड़ दुख पायौ । धिकमोकहँधिकमुहिजिहिँजायौ
अब जु सु प्रभु के पाइन परिहौं। निरखिवदन दृगसफल सुकरिहौं
प्रभुपदचिन्ह भरत पुनि देखे । जनम समूह सुफल करि लेखे ॥
लै रज तब तहँ को सिर धारी । भूमि वहहि निज पलकनि झारी
पुनि चलि परनकुटी सुनिहारी। सुतरु सुकाठन लखन सँहारी ॥
ऊपर कुश काशहिँ सौं छाई । सोभा अमित सु जात न गाई ॥
तहँ तरकस तरवार सुचरमा । सोभित धनुष अभेद सुवरमा ॥
तहँ दिशि ईशानहिँ के माहीं । लसत चबूतर इक तिहि ठाहीं ॥
ता पर दरभ बिछाइत छाईं । या विधि तहँ वैठे रघुराई ॥
सीसजटा वलकल तन सोहैं । ओढ़हिँ सुमृगचरम मुनि मोहैं ॥
सीय लखनयुत त्रिभुवन-नायक । लसत कुशासन पर सुखदायक॥
बिमल-वदन पर बन-रज छाई । जहँ तहँ सुमृग खरे सुख पाई ॥
मुकट न सिर छत्रहु की छाहीं । ढुरत न चमर सुपट तन नाहीं॥
भरत निरखि इमि रघुबर भेसू । निज उर लह्यउ सुदुसह कलेसू॥
गौ रुकि कण्ठ नयन भरि आये । धरि धीरज कछु पुनि इमि गाये॥

हैं बैठत जे सचिव सभा मैं । तिन सुकृगनमहँ किय बिसरामैं॥
हैं पहिरत जे बसन बिशाला । ते ओढ़हिं अब इक मृगछाला ॥
जिन सिर हुत्यहु मुकटमनि पूरौ। तिन अब धर्‌यहु जटनि कौ जूरौ
जिन न लह्यउ सपनिहुँ दुखलेसू। ते भुगतत अब कायकलेसू ॥
हैं चन्दन-चरचित जे अंगा । ते अब बनरज मलिन अभंगा ॥
यौं प्रभ‌ुदुख देखत बनमाहीं । मम सुख हेत मुनिन के नाईं ॥
धिक मोकहँ धिक जीवन मेरौ । मम कारन प्रभु दुखित घनेरौ ॥
यौं बहुबिलपि निरखि प्रभुपायन। करत प्रनाम चले चितचायन ॥
त्राहि त्राहि कहि दोऊ भाई । प्रभुपद निज सिर परसे जाई ॥
भरत शत्रुघन प्रेम समोये । सुप्रभुचरन दृग नीरहिं धोये ॥
गुहहुँ सुमंत्रहुँ कीन्ह प्रनामा । प्रभुपद परसि लह्यउ बिसरामा॥
मिलत यथोचित चारिहु भाई । प्रीति समुद उमग्यहु इकठाई ॥

दोहा ।

चहुँ भाइन को लखि मिलन बनबासिन के जूह ।
नयननीर बरषत भये परसत प्रेमसमूह ॥

इति श्री अयोध्याकांडे एकोनशततमः सर्गः ॥ ९९ ॥

छन्द ।

यौं भरत चीर जटा धरहिँ जब राम के पाइन परे ।
निज-करन लीन्ह उठाइ प्रभु तब भरत काहँ ह्वै हरबरे ॥
सिर सूँघि उरहिँ लगाय पुनि पुनि सु भुज भरि भेंटत भये ।
जनु मिल्यहु फल बनबास कौ यह समुझि धरि गोदहिँ लिये।

दोहा ।

नयन सजल तन पुलकि बहु दयासिंधु रघुराइ ।
छोरि जटनि झारत भये सरज भरत की काय ॥

चौपाई ।

कर कमलनि श्रमसीकर पोछैं । लै सिय सुवसन अंग अगोछैं ॥
करि भ्रातहिँ गतश्रम अनुरागे । कुशल प्रश्न पुनि पूछन लागे ॥
कहहु भरत तुम हौ अति नीकैं । क्षेम कुशल पुर महँ सबही कैं ॥
पितु दशरथ पुनि हैं कहु कैसैं । क्यौं तूँ तिनहिँ तज्यौ अब ऐसैं ॥
बहुत दिननमहँ तोहि निहारौ । है तूँ मुहि प्रानन तें प्यारौ ॥
क्यौं चलि घोर बिपिन महँ आयौ । भौ दूबर दिखियत दुख छायौ ॥
राजसूय-हयमेध-बिधाता । हैं जीवत दशरथ महिचाता ॥
मुनि बशिष्ठ रघुकुल गुरु प्रोहित । हैं पूजित सुख सौं अति जोहित ॥
कौशिल्याहु सुमित्रा माई । हैं ये कुशल कहहु मम भाई ॥
है सुख सहित जननि कयकेई । जातें तुमसे सुभ सुत भेई ॥
देव पितर गुरु बिप्र सुजानै । इनहिँ रहत नृप नित सनमानै ॥
चांकर सुभट बयद पुरवासी । ये तौ नहिँ कछु लहत उदासी ॥
धनुरबेदबिद्यायुत जोई । है सुख सहित सुधन्वा सोई ॥
नीतिनिपुन तन धन रखवारे । हैं ते सचिव नृपति कहँ प्यारे ॥

दोहा ।

करि मंत्रिन सो मसलहत रच्छत हैं कै नाँहि ।
जो फूटैं नहिं अंकुरत चनक बीज के माँहि ॥
सु धन सु बिद्यन संग्रहत अजर अमर की भाँति ।
समुझि मीच निज अति निकट धरम करत दिन राति ॥

लेब देब करि तब जु कछु निज हित कौनहु काज।
तामें तौ नहिं करत हैं कछु आलस महराज॥
बैठि सुशीलनिहीं नृपति देखत हैं निति न्याय।
अस उपाय तौ नहिं करत जामें बहुत अपाय॥
काढ़ि दियो जो देस तें सो आवहि व्है दीन।
पुनि तौ ताहि न संग्रहत समुझि हिये बलहीन॥
नृप चाकर की चाकरी राखत हैं तौ नाँहि।
जातें अनरथ है बड़ो स्वामी कौं महि माँहि॥
सूर बीर ध्रुव धीरजी बुद्धिवान बलवान।
ऐसो सेनापति नृपहि है प्रिय प्रान समान॥
देश काल ज्ञाता सुबुधि साँचे कपटविहीन।
अस उकील मनभाउते हैं नृप कहँ परवीन॥
देश देश नृप नृपन दल लखि अखबारनवीस।
लेत रहत नित खबरि है दूरिहु को अवनीस॥
अधिकारी जे न्याय के लोभबिवश लैलाच।
करत हैं न तौ साँच कौं झूठ झूठ को साँच॥
इंद्रिन कौं राखत विजय ठान जोग की रीति।
धन लालच तौ देत नहिं ठग तसकरनि अभीति॥
तजि सत मूरख एकही बुध सौं राखत प्रीति।
जाके बचनन मैं भरी धरमरीति जुधनीति॥

तुल्यअरथ पुनि तुल्यबल व्यवासई मरमज्ञ ।
ताहि न नृप जो हनहिं तौ सु हनहिं नृपहि न यज्ञ ॥
बिन बूझे बिनहीं कहै रिपु को जु कछु बिचार ।
समुझि लेत अनुमान सौं सचिव सु भू-भरतार ॥
अधिकारी जे धरम के औरहु उहदेदार ।
तिनकी राखत हैं खबरि चारि चारि रखि चारि ।
स्वामिकाजहित रन परै जे अरपत निज प्रान ॥
ऐसे सुभटन कौं नृपति राखत हैं सनमान ।
अपने अपने समय में धरम अरथ अरु काम ।
ये सब सेवत हैं नृपति सुचित आपने धाम ॥
अस धन तौ नहिं संग्रहत जामें धरम नसाय ।
कुधरम तौ नहिं आचरत जातें सब धन जाय ॥
धनहु जाय धरमहु घटै लगै न कछु धन हाथ ।
ऐसे काम कुकामबस है तौ नहिं नरनाथ ॥
जे नासक फल चार के हरत सकल निज बुद्ध ।
क्रोध लोभ मद मोह रिपु हैं इन पै नृप क्रुद्ध ॥
खरच बहुत पुनि श्रम बड़ौ लाभ न कछु अंदाज ।
आरंभत तौ हैं न नृप या विधि कौ कछु काज ॥
नीच निकटबरती चुगल मूढ़सचिव मदमत्त ।
हैं तौ नहिं इन सबन में महाराज अनुरक्त ॥

डसत जाहि ताके न तन रुधिर न अहिमुख बीच ।
त्यों बिलात धन धरम सब होइ सचिव जौ नीच ॥

कुण्डलिया ।

राखै सरल सनेह सौं कटु कुटिलन कौ काटि ।
आरोपति सुचि सुमनयुत दुखदायकनि उपाटि ॥
दुखदायकनि उपाटि झारि कण्टक सब जारै ।
फूटे टूटे सुदल तिनहिँ पुनि सींच सम्हारै ॥
लघुन करत त्यौं उच्च उच्च ते सम करि नाखै ।
बागवान की तरह नृपति निज राजहि राखै ॥ १ ॥
धरमहिँ चिन्तत प्रथम हैं पुनि सचिवन की राह ।
लहत लोक बिरतन्त त्यौं लखि मण्डल नरनाह ॥
लखि मण्डल नर नाह चारि मुख नैननही सौं ।
राग रोष निज मन्त्र गुपत राखत सबही सौं ॥
समय पाइ आचरत बहुरि तीनिहु के कर्महिँ ।
रच्छत निज आतमहिँ राखि निजकुल के धर्महिँ ॥ २ ॥
राखै विष पर ज्यौं सुधाधाम सुऔषधि-ईस ।
अगिनिज्वाल बिकराल पर धरहिँ गंग निज-सीस ॥
धरहिँ गंग निज सीस आँगु पर पुनि अहिवृन्दा ।
अहिवृन्दनि पर मोर बैल पर सिंघ अनन्दा ॥
सिंघहु पर गिरिसुता शम्भु निसि दिन अभिलाषै ।
या विधि नृपति सु नीत सु इक पर एकहि राखै ॥ ३ ॥
अधिकारी ते प्रेतगन लहहिँ सु सब खा जाँइँ ।
आपुसही मै करि कलह इक इक सौं गुराँइँ ॥

इक इक सौं गुराँइ मूष लखि अहि फुंकारै ।
अहि लखि मचलत मोर सिंघ सुनि वृष हुंकारै ॥
यौं निज घर की रारि भये हर फिरत भिखारी ।
यातैं है इक भूत नृपति मंत्री अधिकारी ॥ ४ ॥

दोहा।

किहिं देख्यो परलोक यह कहब बोलिबो झूठि ।
कारन बिनहीं क्रोध करि बृथहि बैठिबो रूठि ॥
सांवधान व्है रहब नहिं मिलब न ज्ञानी पाइ ।
इक कारज ही मैं रहब दीरघ काल गमाइ ॥
इंद्रिन के बस व्है रहब इकलैं करब विचार ।
अति आलस को ठानिबौ मूरख सों व्यवहार ॥
कृत निश्चय जो काज कछु तासु करब न सुहात ।
गुपत न राखब मंत्र को लखब न गो द्विज प्रात ॥
सर्वबिरोधी व्है लखब बड़ रिपु सों रन माह ।
राजदोष ये चतुर्दस है समुझत नरनाह ? ॥
नाहक बचन उचारिबौ खेलब जुआ सिकार ।
नृत्य गीत बाजान मैं जो आसकति अपार ॥
नारिबिबस रहिबौ बृथा करिबौ पुनि मदपान ।
दिवा-सयन दस दोष ए तजे रहत मतिमान ॥

जल मैं गिरि मैं बिपन मैं ऊसर कछु जलमाह ।
पाँच किला ए समुझि कैं बनवावत नरनाह ॥
स्वामी सचिव सुमित्रबल कोष किला निज देश ।
सात अंग जे राज के समुझत सदाँ नरेश ? ॥
साम दाम पुनि भेदहू चौथे दंड गनाइ ।
निति नीकैं समुझाति नृपति ए चारिहु सु उपाइ ? ॥
साहस दूषब अरथ कौं गारि काढ़िबौ कोह ।
दंड देब अपराध बिनि करब ईरषा द्रोह ॥
चुगली सुनि इक एक सैं कहब करब अन्याय ।
आठ दोष ए समुझ कैं दूरि करत हैं राय ॥
सुभगशक्ति उतसाह की मंत्रशक्ति प्रभुशक्ति ।
समुझि तीनहूं शक्ति मैं राखत नृप अनुरक्ति ॥
वेद शास्त्र विद्या बिपुल पुनि बिद्या कृष्यादि ।
राजनीति विद्या तिहूँ बिद्यन की है यादि ॥
जुद्ध करब कर कूँच पुनि चलब करब सल्लाह ।
करिबौ थिति पुनि दोइ सौं मिलि रहबौ सउछाह ॥
अति बल कौं लै आसरौ रहब छगुन ए जानि ।
करत प्रजापालन नृपति मंत्रिन कौ मत मानि ॥
दीरघरोगी शिशु बिरध ज्ञाति-बाहिरौ जोइ ।
कातर भयद जु लोभही उपजावत नित सोइ ॥

लोभी कामी कवष तैं चपलचित्त भय पाइ ।
दैव करहि सो होयगो यह कहि तजत उपाइ ॥
दुरभिक्षहि कौ दुख सदाँ कहत रहैं अकुलाय ।
फौज नहीं करिये कहा कहत जु तजि व्यवसाय ॥
तजि सुदेश रिपु देश कौं रहनवार जो कोइ ।
लै अनेक निज सत्रुगन देशहिं रहत जु होइ ॥
हठबादी निंदक-निगम जिहि न समय कौ ज्ञान ।
ए तिनसौं तौ मिलत नहिं कबहूँ नृपति सुजान ॥
देश खजानौ दुर्ग पुनि अधिकारी अरु दंड ।
पाँच प्रकृति मंडल नृपति समुझति सुतति अषंड ॥
निज चहुँदिशि रिपु मित्र पुनि उदासीन चितल्याइ ।
बारह मंडल की खबरि राषत हैं नृपराइ ॥
बहुबिधि कूँच मुकाम पुनि रन करिबे की रीति ।
सो नृप नित समुझत रहत चाहि आपनी जीति ॥
व्यूह बिरचिबौ सेन कौ मसलत के गुन दोष ।
ये नृप ठानत समुझि कैं तजैं ईरषा रोष ॥
करत जु दैवी काज कछु तातैं पावत सिद्ध ।
दान भोग करि राज मैं राषत सकल समृद्धि ॥
सुनहु भरत जो मैं कही राजनीति समुझाइ ।
या बिधि जो नृप आचरैं लहहि सु सुष समुदाइ ॥

या विधि पालि प्रजानि कौं पाइ सुजस परगास ।
अंतकाल ते नृप लहैं अटल स्वर्ग महँ बास ॥

इति श्री अयोध्याकांडे शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

छन्द ।

यौं पूछि कुशल भरत्त सौं प्रभु बहुरि बूझत भे तबै ।
तूँ चीर बलकल जटा धरि किहिँ हेत बन आयौ अबै ॥
सुनि भरत यह अति दीन ह्वै कर जोरि यौं भाषत भये ।
दै तुमहिँ पितु बनबास याही शोक सुरलोकहिँ गये ॥

दोहा ।

किय अति अघ यह कयकई तुम कहँ बनहि पठाय ।
लीन्है प्रान महीप के मो-सिर अजस चढ़ाई ॥

चौपाई ।

घोर नरक परिहहि कयकेई । जा हित तुम अस दुखित भयेई ॥
छोड़ि सुप्रभुचरनन की छाहीं । मोहि न गति कहुँ त्रिभुवनमाहीं
यहहि समुझि मैं चलि बन आयौ । भयहु सनाथ तुमहिँ लखि पायौ
हौं सेवक चरनन कौ चेरौ । यातैं बच मानहु इक मेरौ ॥
अब तुम राजतिलक करवाओ । मरत प्रजाजन सबनि जिवाओ ॥
ह्वै अनाथ सब जननी आईं । नृप बिन दुसहदुखन हौं छाईं ॥
समुझि धरम निज करहु रजाई । मम उर दाह दहहु रघुराई ॥
समुझि मोहि दासन कौ दासू । होहु प्रसन्न करहु पुरबासू ।
या कहि भरत पगन पर पराऊ । राम तबहिँ निजभुजन सुभाऊ ।

लिय उठाइ पुनि उरहिँ लगायौ। श्रीमुख आशिरबाद सुनायौ ॥
चिरजीवहु बहु होहु कुलीना । बाढ़हि बिपुल प्रताप नवीना ॥
जलगि बिरंचि महेश भवानी । तलगि रहहि तुव सुजस कहानी॥
समुझ देख तूँ भरत सु भाई । मैं रघुकुल महँ जनम जो पाई॥
लगि लोभहिँ अघ-करम अनैसो। मोसौं होइ सकत नहिँ ऐसो ॥
पितुबच मानि बिपिनमहँ आयौ। क्यों अब राज करहुँ अघ छायौ॥
तूँ तज निजउर केर गिलानी । तोहि न कछु दूषन मैं जानी ॥
पुनि तुव जननिहुँ कहँ अघ नाहीं। वासौं तूँ कछु कहु न बृथाहीं ॥
बालकबुधि तजि गहु गुरुज्ञाना । को तुव सम शुचि सीलनिधाना॥
गुरु अरु नृपति करहिँ जो चाहैं। गहि को सकत दुहुन की बाहैं॥
जिहिँ चाहहिँ तिहि देहिँ रजाई। भेजहिँ बनहिँ सु बन कहँ जाई॥
हम तुम आदिक नृपसुत चारी। हैं सब पितुआयसु-अधिकारी ॥
बिपिनबास हमकहँ नृप दीन्हौ। तुमहिँ अधीश अवध कौ कीन्हौ॥
तातैं तुम कहँ उचित रजाई । मुहिँ बनबास उचित यह भाई॥
मुहिँ बन तुहि दै तिलक सुराजा। तजि निज तन सुरपुरहिँ बिराजा
हमहिँ तुमहिँ पितु की जो बानी। सो परिपालक उचित निदानी॥

दोहा ।

पितु पोषक पितु नृपति पुनि पितु गुरु पितु भगवान ।
यहै समुझि करिवैं उचित निजपितुबचन प्रमान ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥

छन्द ।

यौं सुनि बचन रघुनाथ के तब भरत अति व्याकुल ठये ।
कर जोरि करि बहु बिनय प्रभु सौं ए बचन बोलत भये ॥
जो बिहित धर्महि तजि करत कछु धर्म सुनि फल पावहीं ।
ज्यौं बिन जनेऊ यज्ञ करिबौ बिफल श्रुतिगन गावहीं ॥

दोहा ।

सुकुल सनातन धर्म यह मैं समुझत रघुराज ।
जु लघु सु बड़ भाई अछित करत न कबहूँ राज ॥

चौपाई ।

तातैं तुम यह करहु रजाई । हमहिँ उचित तव पद-सिवकाई ॥
धारि धरम जो राजहि ठानै । सो नररूप नृपति भगवानै ॥
हौं जु हुत्यौ मातुलगृह माहीं । स लखन तुमहुँ हुते बन छाहीं ॥
ऐसे समय नृपति लहि शोकै । तजि निज प्रान गयहु परलोकै ॥
हौं तब मातुल गृह तैं धायौ । सहित शत्रुघन पुर कौं आयौ ॥
तब मैं अगिन नृपति कौं दीन्ही । बिधिवत सकल क्रिया पुनि कीन्ही ॥
हौ तुम नृपसुत प्रानपियारे । सबनि सुगतिदायक ब्रतवारे ॥
नृपति क्रिया ठानहु अब यातैं । लहहिँ अखय पितृलोक सु जातैं ॥

दोहा ।

अन्त समै नृप तुमहिँ कौं सोचत छोड़े प्रान ।
तातैं निज कर देहु तुम पितुहित पिंड प्रमान ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

छन्द।

सुनि सुपितु दशरथ कौ मरन तब राम मुरछित ह्वै परे।
रोये सकल भाई ससिय करि करि बिलाप बिथा परे॥
पुनि ह्वै सचेत भरत्त सौं प्रभु कह्यउ शोक समाइ कैं।
अब मैं करहुँगौ कहु कहा निज अवधपुर मैं जाइ कैं॥

दोहा।

भयहु न कोऊ होइगो मो सम कुटिल कुमार।
जिहिं न करी पितु की क्रिया निज कर श्रुति अनुसार॥

चौपाई।

धन्य भरत तुम नृप के जाये। जो पितुकरम करे श्रुति गाये॥
बनहुँ बास करि पूरन ह्याहीं। हौं न जाहुँगौ अब पुर माहीं॥
सीय लखन सौं पुनि प्रभु कह्यऊ। ठौर न हमहिँ तुमहिँ कहुँ रह्यऊ
पितृबिहीन अब भे तुम भाई। स्वसुरबिहीन भई महिजाई॥
पुनि रघुपति बड़ कीन्ह बिलापू। लहि पितु-मरन जनित संतापू॥
मिलि भाइन रामहँ समुझायौ। या बिधि पन्य सदहु चलि आयौ
अपनै अछित जु मरन पिता कौ। कीवै सोच न अब कछु ताकौ॥
उठहु करहु पिण्डोदक कर्मा। उचित यहहि सुत कौ अब धरमा
यौं सुनि प्रभु सियकहँ समुझायौ। ता हित इक नव बसन मगायौ॥
इंगुद-चूरन बिरचुन सानौ। प्रभु आयसु लछमन तहँ आनौ॥
तब सुमंत्र गहि रघुपतिबाहीं। लै जु चलै शुचि सरित जहाँहीं॥
चारिहु बन्धु दुखित सह सीता। न्हाये मन्दाकिनि जु पुनीता॥
पुनि दछिनदिशि सनमुख ह्वै कैं। दिय तिल तोयंजलि शुचि ह्वै कैं॥
दरभ बिछाइ सरित तट माहीं। लै फल चूरन राम तहाहीं॥

पिण्ड बनाइ सुपितु कहँ दीन्हौं। या विधि बचन उचारन कीन्हौं॥
जु कछु अन्न निज भोजन कीजे। वहहि देव पितरन कहँ दीजे ॥
तातें पितु फल चूरनही कौ । लेहु पिण्ड यह मम करनी कौ॥
यौं करि क्रियहि सुथल पुनि आये। परनकुटी द्वारहिं पर छाये ॥
भरत लखन गहिगहि प्रभु हाथा। भे रोवत बिलपत नृपगाथा ॥
रोदन रव सुनि सेन उचारी । मिल्यहु भरत अरु अवधबिहारी
सुनि पितु-मरन सुरोवत ऐसैं । निपट अनाथ बिजन बन जैसैं ॥
या कहि सेन सकल चलि आई। हैं जहँ भरत सहित रघुराई ॥
सुनि तब सेन-कुलाहल भारी । भे भाजत खग मृग बनचारी ॥
सबनि लखे रघुपति जब जाई । करत प्रनाम भयो सिर नाई ॥

दोहा ।

राम यथोचित करत भे तिन सब कौं सनमान ।
पूछि कुशल कहि मृदुबचन करि करि नाम बखान ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

छन्द ।

पुनि लै नृपति रानीन कौं सुबशिष्ठ आवत हैं जबै ।
प्रभुजननि कौशिल्या निरखि मन्दाकिनी बोली तबै ॥
देखहु सुमित्रा इहि बिपिन मैं रहत दोऊ बीर हैं ।
कहुँ तीर कहुँ बलकल पुरानै परे कहुँ कहुँ चीर हैं ॥

दोहा ।

ममसुत राघव के लिये लखन तिहारो तात ।
ह्याँहीं तें जलकलस भरि द्वैहहिं नित ले जात ॥

चौपाई ।

जु यह करम जगनिन्दित हेई । तदपि लखन श्रुति समुझि करेई
है न लखन सो यह दुख जोगू । कहिहहिँ कह मम सुत सों लोगू
दिय पितुपिण्ड लखहु इहिठाईं । दरभ बिछाइ दुखित की नाईं ॥
इंगुदि तरु फल चूरन हो के । दीन्हे पिण्ड नृपहिँ जगती के ॥
यातें अब दुख अधिक कहा है । फटत न उर जो कठिन महा है
आपु भषहिँ सो पितरन देही । निगम पिण्ड बिधि भाषत येही॥
यों कहि रोवत रघुपति-माई । बिलपत परनकुटी ढिग आई ॥
भरि दृग तहँ रघुबीर निहारे । तन जीवन प्रानहुँ तें प्यारे ॥
आवत लखि जननिन रघुराई । करत प्रनाम चले सिर नाई ॥
चरन परसि सब मातन ही के । किय प्रनाम भूपर परि नीके ॥
जननिचरन की धूरि सुहाई । पलकनि पोंछि सु सिरहिँ चढ़ाई
याही बिधि किय लखन प्रनामा। देत भई आसिष नृपभामा ॥
सूँघहिँ सिर फिर उरहिँ लगावैं। मानहु प्रान गये पुनि पावैं ॥
लखि सब सासुन जनकदुलारी। पगनि परसि किय प्रनपति भारी
कौशिल्यादि सकल नृपरानी । सियहि असीसहिँ कहि यह बानी
अटल रहहि अहिवात तिहारी । जबलगि सिंधुसलिल श्रुति चारी
सियहि लाय उर पुनि पुनि भेटैं । जनु जीवनफल सकल समेटैं ॥
कौशिल्या लखि सियहिँ मलीनी। सूख्यौ वदन सकल तन छीनी ॥
बोलौ कहि हे जनकदुलारी । दशरथनृपसुतप्रानपियारी ।
ह्वै मम पुत्र बधू दुख पायौ । लखत तोहि मुहि शोक सतायौ
तबहिँ बशिष्ठ सु आवत भेई । राम तिनहिँ चलि लेत भयेई ॥
गुरुपद परसि प्रनति प्रभु कीन्हो। मुनिहुँ सुआसिष यों कहि दीन्ही

पिण्ड बनाइ सुपितु कहँ दीन्हौं। या बिधि बचन उचारन कीन्हौं॥
जु कछु अन्न निज भोजन कीजे। वहहि देव पितरन कहँ दीजे ॥
तातें पितु फल चूरनही कौ । लेहु पिण्ड यह मम करनी कौ॥
यौं करि क्रियहि सुथलपुनि आये। परनकुटी द्वारहिँ पर छाये ॥
भरत लखन गहिगहि प्रभुहाथा। भे रोवत बिलपत नृपगाथा ॥
रोदन रव सुनि सेन उचारी । मिल्यहु भरत अरु अवधबिहारी
सुनि पितु-मरन सुरोवत ऐसैं । निपट अनाथ बिजन बन जैसैं ॥
या कहि सेन सकल चलि आई। हैं जहँ भरत सहित रघुराई ॥
सुनि तब सेन-कुलाहल भारी । भे भाजत खग मृग बनचारी ॥
सबनि लखे रघुपति जब जाई । करत प्रनाम भयो सिर नाई ॥

दोहा ।

राम यथोचित करत भे तिन सब कौ सनमान ।
पूछि कुशल कहि मृदुबचन करि करि नाम बखान ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

छन्द ।

पुनि लै नृपति रानीन कौं सुवशिष्ठ आवत हैं जबै ।
प्रभुजननि कौशिल्या निरखि मन्दाकिनी बोली तबै ॥
देखहु सुमित्रा इहि बिपिन मैं रहत दोऊ बीर हैं ।
कहुँ तीर कहुँ बलकल पुरानै परे कहुँ कहुँ चीर हैं ॥

दोहा ।

ममसुत राघव के लिये लखन तिहारो तात ।
ह्याँहीं तें जलकलस भरि द्वैहाहिं नित ले जात ॥

चौपाई ।

जु यह कारम जगनिन्दित है ई । तदपि लखन श्रुति समुझि करैई
है न लखन सो यह दुख जोगू । कहिहहिँ कह मम सुत सों लोगू
दिय पितुपिण्ड लखहु इहि ठाईं । दरभ बिछाइ दुखित की नाईं ॥
इंगुदि तरु फल चूरन ही के । दीन्है पिण्ड नृपहिँ जगती के ॥
यातें अब दुख अधिक कहा है । फटत न उर जो कठिन महा है
आपु भषहिं सो पितरन देही । निगम पिण्ड बिधि भाषत येही॥
यों कहि रोवत रघुपति-माई । बिलपत परनकुटी ढिग आई ॥
भरि दृग तहँ रघुबीर निहारे । तन जीवन प्रानहुँ तें प्यारे ॥
आवत लखि जननिन रघुराई । करत प्रनाम चले सिर नाई ॥
चरन परसि सब मातन ही के । किय प्रनाम भूपर परि नीके ॥
जननिचरन की धूरि सुहाई । पलकनि पोंछि सु सिरहिँ चढ़ाई
याही बिधि किय लखन प्रनामा। देत भई आसिष नृपभामा ॥
सूँघहिँ सिर फिर उरहिँ लगावैं । मानहु प्रान गये पुनि पावैं ॥
लखि सब सासुन जनकदुलारी । पगनि परसि किय प्रनपति भारी
कौशिल्यादि सकल नृपरानी । सियहि असीसहिँ कहि यह बानी
अटल रहहि अहिवात तिहारौ । जबलगि सिन्धुसलिल श्रुति चारी
सियहि लाय उर पुनि पुनि भेटैं । जनु जीवनफल सकल समेटैं ॥
कौशिल्या लखि सियहिँ मलीनी। सूख्यौ बदन सकल तन छीनी ॥
बोली कहि हे जनकदुलारी । दशरथनृपसुतप्रानपियारी ।
ह्वै मम पुत्र बधू दुख पायौ । लखत तोहि मुहि शोक सतायौ
तबहिँ बशिष्ठ सु आवत भेई । राम तिनहिँ चलि लेत भयेई ॥
गुरुपद परसि प्रनति प्रभु कीन्ही। मुनिहु सु आसिष यों कहि दीन्ही

चिरजीवहु सुख लह्यउ घनेरौ । दहहिँ दुवन सब तेजहिँ तेरौ ॥
तब प्रभु मुनिहिँ कुशासन ऊपर । राखि आपुनि बैठे पुनि भू पर ॥
सकल बंधु बैठे प्रभु पाछैं । त्यौं पुनि सचिव सुसैनिक आछैं ॥

दोहा ।

कहा कहँहिंगे भरत अब प्रभु सौं बिनति बखानि ।
लखिबे यह कौतुक सबै भे बैठत चुप ठानि ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे चतुराधिकशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

छन्द ।

या बिधि सबन चुप होतहीं तब भरत बोले राम सौं ।
दिय राज तुम ममातु कौं निजपितुबचन इक छाम सौं ॥
सो राज अब मैं तुमहिँ कौं सुख मानि सौंपत हौं यहीं ।
यह राज कौ जो भार बड़ चल सकत औरन सौं नहीं ॥

दोहा ।

जिनको सेवत और जन ते जीवत लहि प्रान ।
जे सेवत जन और को ते नर मृतक समान ॥

चौपाई ।

सो सब बिधि तुम समरथ भाई। तातैं अब यह करहु रजाई ॥
तुमहिँ प्रजा पालन के काजैं । क्षिय उतपन्न सु दशरथ राजैं ॥
करहु प्रजापालन तुम तातैं । स्वरगहुँ नृप सुख पैहहिँ यातैं ॥
सचिव प्रजा गुरुजन महतारी । हमहुँ सकल सेवक पुनि नारी ॥
चाहत यह एकहि मनमाहीं । करहिँ राज रघुबीर सदाहीं ॥
यौं सुनि भरतबचन रघुराई । भे भाषत इमि सबनि सुनाई ॥

यह जो जीव सु सब सो नाहीं। है इक प्रभु आधीन सदाहीं ॥
ज्यौं प्रभु चहत नचत यौ त्यौंहीं। याकी जनम जनम गति यौंहीं ॥
परि परबस कपि नाचत जैसे । प्रभुबस जीव लखहु यह तैसे ॥
कालबिबस अज आदि सुरेशा । कबहुँ लहत सुख कबहुँ कलेशा॥
आवत सुखहु दुखहु पुनि ऐसैं । सदहूँ काल क्रत निशिदिन जैसैं
है इमि कालबली श्रुति गायौ । याकौ अन्त न काहू पायौ ॥
सुनहु भरत हम जो बन आये । सो तुम कहत नृपति पठवाये ॥
तुम जु जटा बलकल नृप राखैं। आये बिपिन सु किहि कै भाषैं॥
ईस बिबस ज्यौं तूँ इमि धायौ। त्यौं मुहि बास बिपिन कौ भायौ॥
याकौ दोष नृपहि कछु नाहीं । कयकेयिहु निरदोष सदाहीं ॥
होनी जु कछु सु होइ रहैई । कोटिहु बिधि सु न कबहुँ टरैई॥
सुख दुख सम्पति बिपति बियोगू। हानिहुँ लाभ सुजन संयोगू ॥
जीवन मरन सुजस जसहानी । कहहुँ कहाँलगि और बखानी॥
ये जिहि समय बदे जहँ जाकौं। बिनहूँ प्रयास मिलत ते ताकौं ॥
है यह होतब की गति ऐसी । समय जु चहहि करहि तब तैसी॥
काहू सौं कछु कबहुँ न कहिये। ज्यौं राखहि प्रभु त्यौंहो रहिये ॥
तन जोबन धन कछु थिर नाहीं। इनहिँ सोचि मरिये न वृथाहीं ॥
धन संचय छय लहहि अशेषू । जो अतिबढ़हि सुगिरहि विशेषू॥
जहँ संयोग तहँ बिरह बियाई । जगजीवन यह मरिबे ताई ॥
पाके फलन पतन भय जैसैं । जीवत नरन मरन डर तैसें ॥
ज्यौं ज्यौं जात नितहुँ दिनराती। छिनछिन आयु घटत तिहिभाँती
ह्वै जीरन ज्यौं ग्रह गिर परहीं। ह्वै नर पलित तथा बिधि मरहीं
जु दिन गयौ सु फिर नहिँ आवै। घटत जु आयु सु नर क्यौं पावै॥

बल आयुष यह ठहरत नाहीं । ज्यौं तृन बहत सलिल के माहीं॥
जवन घुरत जिम पर पानी मैं । ता बिधि आयु घटत जानी मैं॥
गौं तुम समुझ भरत मन माहीं। आपन सोच करत कछु नाहीं॥
बेपति कहा औरन की सोचौ । आपुन गति आपुहि अवलोचौ॥
ठहु उठहु करहु कछु कोई । छिन छिन छीन सु आयुष होई
ाजहु किन वह कोसन ताईं । तदपि मीच सँग छोड़त नाईं॥
हहु जाइ किन फोर पतालू । तिनहूं पैठि ग्रसत तन कालू॥
थम लरकपन पुनि तरुनाई । त्यौंही तन आई बिरधाई ॥
बहिँ जरा बस तन सिथलानो। पकि गे केश मरन नियरानौ॥
ब नर करि कहु कौन उपाई । दूर करहि अपनी बिरधाई ॥
ातौ सुबस जु जीव सचेतौ । ब्रह्म बपुष निज होन न देतौ॥
खिल चराचर जो जगमाहीं । को अस कालबिबस जो नाहीं॥
नरखि उदय निज नर हरषाहीं। घटत जु बिभव तबहिँ अकुलाहीं
समझत नहिँ नर निजनाशा। या जग मै इह अजब तमाशा॥
नत प्रति दृग देखत नर मरहीं। तदपि न निजसोचहिँ जन करहीं
ठत अजर अमर की नाईं । मनहुँ कालबस हैं हम नाहीं॥

कुण्डलिया ।

येही तौ भाषत सबै गई रैन दिन जाइ ।
यह न कहत कोई कहूं घटत हमारी आइ ॥
घटत हमारी आइ कमाइ जु धन बहु ल्याऊँ ।
ठानहुँ बिबिध बिलास नारिहित गहन गढ़ाऊँ ॥
वैरिन को करि नाश पास राखहुँ जु सनेही ।
नहिँ जानत निज मरन सबै मिलि भाषत येही ॥ १ ॥

बीती सरद हिमन्तहू आयो बहुरि बसन्त।
है इह क्रीड़ा काल को निज आयुष को अन्त॥
निज आयुष को अन्त सुनहिँ समुझत है कोई।
तन धन ममता बिबस कछू ऐसी मति भोई॥
लोभहिँ लग बहु भ्रमत लहत नहिँ कहुं चित चीती।
रहत तबहिँ मुख बाय जबहिँ निज आयुष वीती॥ २॥
जैसे कौनहुं काल मैं बिबिधि बिपन के काठ।
होत जहाज समुद्र में ठठहिँ ठीक सब ठाठ॥
ठठहिँ ठीक सब ठाठ कबहुं सुन फाट तहाँई।
भिन्न भिन्न ह्वै बहहिँ सलिल तृनगन के नांई॥
सुत पितु बनिता बन्धु होइ इकठे गृह ऐसे।
कहुं के कहुं ह्वै जात काठ बोहित के जैसे॥ ३॥

चौपाई।

ज्यौं इक कहँ मग चलत निहारी। तासो इक इम कहत पुकारी॥
हौंहूं पिछलग ऐहँहु तेरे। मो पिछलगि पुनि पथिक घनेरे॥
त्यौं जगरीति निगम निरधारी। एक मध्यहु इक करत तयारी॥
जनमत मरत परखि पथि दोऊ। काह्वै रोकि सकत नहिँ कोऊ॥
तातैं भयहु जु मरन पिता कौ। उचित न सोच करव अव ताकौ
करि बहु मख पाये सुभ मीचू। पहुँचे सुरग सुरन के बीचू॥
तजि नर तन जीरन महिपाला। भे पावत सुर सिद्ध बिशाला॥
बस बिधिपुर नृप करत बिहारा। तातैं उचित न सोच बिचारा॥
धीर पुरुष अब जे जग माहीं। ते सुख दुख कछु मानत नाहीं॥
तातें भरत तजहु तुम शोकै। बस पुरमहँ पालहु नर लोकै॥

हौं रैहहुँ द्रुत ह्वै बनबासी । याको तूँ कछु करु न उदासी ॥
हमहिं तुमहिं पितु को जो बानी । पालन तासु करब सुखदानी ॥

दोहा ।

दीन्ह जुपितु आयसु हमैं सो न उलाँघ्यो जाइ ।
या विधि भाषि भरत्त सौं रघुपति रहे चुपाइ ॥

इति श्री अयोध्याकांडे पंचाधिकशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

छन्द ।

या भाँति सुनि प्रभु के बचन पुनि भरत बोलत भे यकै ।
जैसे कहे तुम धरम बच ता भाँति अब को कहि सकै ॥
तुम कहँ न भय कहुँ काहु तें तुमकौं न प्रीति अमर्ष है ।
तुम से तुमहिँ सम शीलसागर तुमहिँ शोक न हर्ष है ॥

दोहा ।

रत धरमसंशय जबै बड़े मुनिन कौं आइ ।
पूछत तब तुमहिं सौं सु तुम देत समुझाइ ॥

चौपाई ।

सरबज्ञ तदपि रघुराई । बूझत धरम मुनिन सौं जाई ॥
यह तुमहिँ बिषैं सम आई । जो बूझत औरन सिर नाई ॥
ौं यह ज्यौं लहि बपुषबिछोहू। नहिँ राखत पुनि तन सौं मोहू॥
त बित दार सबन बिसरावै । यौं तन धरहिँ जु कहुँ मत पावै
वह पुरुष दुखित नहिँ होई। ऐसे तुम इक और न कोई ॥
ाहदुखहु लहि सोचत नाहीं । यौं को होय सकत जग माहीं ॥
तुम सम सम सत्यनिधाना । शुच सरबज्ञ सुमति गुनवाना ॥

आवहि दुख तुव निकट सु कैसे । रवि ग्रह तम छ्वै सकत न जैसे॥
सु ममजननि तुमकहँ दुख दीन्हौं। सो तुम सकल क्षमापन कीन्हौं॥
हौंहूं समुझि धरम की बातैं । देहु न दण्ड जननिकहँ तातैं ॥
है अबध्य श्रुति कहत जु नारी । यातैं हौं न हनहुँ महतारी ॥
पितु प्रतक्ष दैवत उर आनी । निन्दसकहुँ नहिँ ताहू सु बानी
ह्वै तियबस किय पितु अघ जैसो। को नृप बिन ठानहिँगो ऐसो ॥
अन्तसमयमहँ मति नहिँ रहई । इह इक बानि सदहि श्रुति कहई
सो नृप कर परतक्ष दिखाई । त्यागि तुमहिँ तियकुटिल मनाई
लहि दुरमति नृप तुमहिनिकारा। चढ्यहु कलङ्क सुपितु सिर भारा
जु अति कलङ्क नृपहि दुखदाई । सो तुम अब मेटहु रघुराई ॥
पितुकलङ्क जो सुत न मिटावै । सो न कबहुँ जप तप फल पावै॥
तातैं होहु प्रजन रखवारे । काटहु सकल कलेश हमारे ॥
क्षत्र धरमकहँ कहँ बन झपवौ । जटनि धरब कहँकहँ महि रखवौ
ये जु परसपर धरम बिरोधू । ते न करहु तुम लहि बड़ बोधू॥
छत्र धरमराजहि सिर धरिवौ । सु बल प्रजन कौ पालन करिवौ॥
यौं निजधरम तजहु मति स्वामी। त्रयहिँ बिचर बन ह्वै पदगामी॥
जो तुम कहँ सुख नहिँ करवैहै । निपट कलेशहि मै परवैहै ॥
तौ तुम महिरक्षन करतै ई । ग्रह बसि करहु कलेश सबैई ॥
चारि जु आश्रम है जगमाहीं । सु ग्रहस्ताश्रम सम तिहु नाहीं॥
धरि व्रत बसि बन करि सन्यासा। राखत सब ग्रहयित की आशा॥
सो तुम तजहु न रघुकुलराई । हौ हम तैं बड़ करहु रजाई ॥
पाय जनम या जग के माहीं । हैं ऋन तीन सबन के ताहीं ॥
ब्रह्मचरज सौं ऋषिऋन घटई । सुरऋन तैं मखयान निपटई ॥

जनि सन्तति पितुऋन तैं छूटै । ह्वै यौं अरिन सु सब सुख लूटै ॥
ये सब काज सकहि कर गेही । तातैं चलहु घरहिँ मत एही ॥
तुव अभिषेक सुनत रिपु भगिहैं। मित्र मुदित मन ह्वै जगजगिहैं॥
यौं पग परि मागत हौं येहै । करहु कृपा मो पर चल गेहै ॥
जो तुम बन न तजहुगे नाथा । हौं न तजहुँगौ तौ तुव साथा ॥
या बिधि भरत सु बिनय सुनाई। भे मानत न तदपि रघुराई ॥
यौं लखि प्रभुमति की दृढ़ताई । सकल प्रजन बहु कीन्ह बड़ाई॥
प्रभुपुर चलब जु नाहि कबूला । याकौ भयहु सबन उर सूला ॥

दोहा।

यौंहीं पुन सँग भरत के प्रजनि सुबिनती कीन।
प्रभु न तदपि मानत भए भए सबै तब दीन ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे षड़धिकशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

छन्द।

पुनि कह्यउ राम भरत्त सौं तुमकौं उचित कहिबौ यहै।
ह्वै केकई तैं नृपतिसुत तुहि कहब इमि अचरज न है॥
पर मोहि पथ तजि धरम कौ इह राज नहिँ करबै अबै।
जो करहुँ पितुप्रन झूठ तौ मुहि लोग निन्दहिँगे सबै ॥

दोहा।

तातैं तूँ इह राज करु तोहि न यामैं दोष।
पितुआयसु मोकौं हरष कयकेयिहुँ संतोष ॥

चौपाई ।

पितुऋनमोचन तूँ करु भाई । दुख न लहहि कछु जो तुव माई॥
कहत गयामहँ पितर सुरेशा । पुत्र सु हरहिँ जु नरककलेशा ॥
जु पुत नाम नरकहु तैं त्राता । पुत्र वहहि इत पिण्ड विधाता॥
हौं न कहत यह श्रुतिहू गावै । या हित पुरुष वहुत सुत जावै ॥
इकहु गयामहँ पिण्ड सु दैहै । है हयमेध सु मख पुनि लैहै ॥
कै तजिहैहि वृष नील सुहायौ । या हित नर चाहत सुत जायौ॥
तातैं करहु सुपितु उद्धारा । भरत मान यह वचन हमारा ॥
सहित शत्रुघन पुरमहँ जाई । पालहु प्रजन सुठान रजाई ॥
मैं जैहहुँ अब दण्डक माहीं । या सिवाय मुहि कछु हित नाहीं
होहु भरत तुम अवधनरेशा । हौं ह्वैहहुँ गौ विपिन चरेशा ॥
तुम शत्रुघ्न सहित पुर जाऊ । हौं स लखन जैहहुँ वन काऊ॥
लहहु छत्र छाया तुम भाई । ह्वैहहि मुहि तरु छाहँ सुहाई ॥

दोहा ।

नृप दशरथ के चार सुत हैं हम सबै समान ।
उरन पिता तैं होइबैं या विधि उचित विधान ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

छन्द ।

तहँ तबहिँ यह बोलत भयो जाबालि ऋषि दुरमतिभरौ ।
हे राम तुम ह्वै अज्ञ सम ये वृथा बातैं मति करौ ॥
या जगत मैं जे मर गये तिन तैं कहा कछु पाइये ।
कर सोच गहि तिन के वचन दुख मुहि न लैम [illegible] ॥

दोहा ।

, हैं हमरे मात पितु याही मैं अनुरक्त।
हत सदाँ जे मूढ़मति नेही तौ उनमत्त ॥

चौपाई ।

ीं इक नर मग चालनवारौ । आइ बसत बिच गाँव निहारौ ॥
न तहँ तैं उठि बियपुर जाई । याही बिधि जानहु पितु माई ॥
तैं तिनमहँ मोह न राखै । यहहि ज्ञान दृढ़ मम मति भाषै॥
वह राजपुर सम्पति त्यागी । दुखित बिपिनमहँ बसत अभांगी
तैं राम सुनहु मम बानी । चलहु सुखहु भोगहु रजधानी ॥
ारथ नहिं कछु लगत तिहारे। कोऊ तुमहु न तिनके प्यारे ॥
ान नृपति को तुमहिं बिचारौ। यौं अब नर उतपत्ति निहारौ ॥
रज रुधिर जु नर नारी कौ । मिल सुजनम हुव तनधारी कौ॥
त अपनीकहँ नृप गे जैसैं । औरन कौ मग जानहु तैसैं ॥
ःम करत नर जे जगमाहीं । हौं नित सोचत तिनहिं सदाहीं॥
परतच्छ पदारथ अरथू । तिहि तजि धरम करत नर व्यरथू
तख धरम फलकिहिंकहँपायौ। निज हित बिप्रन जग बौरायौ ॥
नर करत सराध पिता कौ। बृथहिं अन्न बिनसत सब ताकौ॥
मृत पुरुष सो खैहहि कैसैं । खाइ जु बहुतौ ठानहु ऐसैं ॥
देशहिं नर गयहु जु होई । तासु सराध करहु सब कोई ॥
र जु ता कहँ सौं पहुँचैई । मृत कौ श्राद्ध उचित तौ हैई ॥
व-कमावन हेत सुहाये । मिल पण्डितन सुग्रन्थ बनाये ॥
हु यज्ञ बिप्रन कौं देऊ । फल पैहहु परलोक अछेऊ ॥
कहँ वह परलोक दिखाओ । जा हित बृथहिं मजपत पराओ

दोहा ।

जु कछु देखिये निज दृगन कीजे सोई काज ।
भरत कहत सो मानिये मो मत यह रघुराज ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे अष्टाधिकशततम: सर्गः ॥ १०८ ॥

छन्द ।

यों सुनि वचन जावालि के प्रभु सरिस ह्वै बोले तवै ।
तुम जे कहे मम हित वचन ते सुनव अनुचित हैं सवै ॥
जो पुरुष तजि मरजाद पापहि की कुरीत सुनावहीं ।
सो नर सभा महँ सज्जनन की बैठिबे नहिं पावहीं ॥

दोहा ।

बीर अबीर जु शुच अशुच नर कुलीन अकुलीन ।
वेदविहित आचार सौं पहिंचाँनत परवीन ॥

चौपाई ।

तुमहिं कहव अस उचित न वानी। गयहु ज्ञान तुम्हरौ हम जानी ॥
भूत लग्यहु कै तुमहिं कुचाली । जातें अघचरचा तुम चाली ॥
श्रुतिपथतजिइमिकहहिं जु वातें। या जग दूसर अधम न तातें ॥
जो मैं धरम तजहुँ अव ऐसें । तौ जग चलहि सुपथ पुनि कैसें॥
जो अघ लगहि जु ममसिर भारी। को तव मोहि उधारनवारी ॥
ज्ञाता नर श्रुतिपथ अधिकारी । जो निजहित हित करत विचारी
सो नहिं होत कुमतमगचारी । है यह मति जावालि हमारी ॥
जो मैं तुम्हर मतौ यह मानौ । तौ मोकहँ फिर कहुँ न ठिकानौ
बेद पुरान स्मृत भय भारी । तदपि चहत जग इच्छाचारी ॥

हहु जु मै दूख्छित मग तैसें । रहहिं धरम जगमहँ तब कैसें ॥
यह बात विदित सब काऊ । जस राजा तस होत प्रजाऊ ॥
त्य सदहु सब तैं बड़ मानौं । देव सुरिषि पितरन प्रिय जानौं॥
ोक सकल सत्यहि सौं लागे । इक सत्यहिँ ईश्वर अनुरागे ॥
धरम सत्यहि सौं परलोकू । सत्य सकल पुन्यन कौ ओकू ॥
त्यबचनबकता गति पावै । सत्यरहित नर नरकहिँ जावै ॥
हत दान मख जप तप भेदा । प्रगटे प्रभु स्वासहितै वेदा ॥
:कथित मग कौ फल भारौ । देखि परत परतच्छ निहारौ ॥
त जु इक नरपति महिपाला । इक कुलपति इकबिपति बिहाला
ा स्वर्गहिँ इक नर्कहिँ जावै । जो जस करहि सु तस फल पावै
तै हौं अब ऋषिव्रतधारी । किय पितु ढिगपन समुख उचारी
दुख डरन तजहु मैं कैसे । हौं नहि लोभ बिबस जड़ जैसे ॥
5बचनबकता नर जेहैं । पितर सुरन कहँ प्रिय नहिँ ते हैं
जु करहु पितुआयसु भंगा । पाय जुगल पापिन कौ संगा ॥
मोसौं महि क्यौं अनुरागै । राजसिरी कुलकीरति भागै ॥
। बसुबसुमतिऋषिमखजाजी। ए सब इक सत्यहि सौं राजी ॥
जु कही युत जुग तन बानी। भरत सु हित अब यह मैं जानी॥
ज आयसु पितुबदन बखानौ। क्यौं अब भरतबचन मै मानौ ॥
प्रन जब पितु ढिगकरि आयौ। कयकेई तब अति सुख पायौ ॥
ं हौं अब बसि बन माहीं । भखिहहु मूल ऋषिन की नाहीं॥
पितर पूजन सचरूँगौ । या विधि समय बितीत करूँगौ॥
मभूमि महँ ह्वै तनधारी । ते सुपुरुष जे सुकरमकारी ॥
तिनहिँ सर फल निजलोका। जहँ न कछु [illegible]

इन्द्र सुमख करि सुरपति भौई । करि तप को नहिँ सुरपुर गौई ॥
सत्य कहब सुधरम आचरिबौ । जप तप यज्ञ ब्रतन कौ करिबौ॥
धरम दया सम दम द्विज पूजा । सुरपुर सुमग यहहि श्रुति कूजा॥
समुझि यहै ऋषि कर जप जागू। उत्तम लोक लहत बड़ भागू ॥
हौं निन्दत निजपितु कौ करनी। तोहि जु किय यज्ञन मैं बरनी॥
है तूँ श्रुतिनिन्दक अघकारी । धरमरहित जो बात उचारी ॥
श्रुतिनिन्दक तसकर बिभचारी । ये सब दण्डहि कै अधिकारी ॥
इनसौं कबहुँ न करिये बातैं । बोलत पाप लगत बड़ यातैं ॥
इकं तुम बिन जाबालि द्विजेशा । करत सबै जप तप ब्रत वेशा ॥
जप तप रत श्रुति मारग चारी । ते द्विज पूजहिँ कै अधिकारी ॥
सुनि सकोप इमि प्रभु कौ बानी। जाबलहूँ पुनि बात बखानी ॥
हौं नहिँ श्रुतिनिन्दक नहिँ पापी। ल्यौंन नासतिक धरम सतापी ॥

दोहा ।

तुमहिं मनावन के लियें कही जु मैं कछु बानि ।
समय देखि सो छमहु प्रभु हौ तुम करुनाखानि ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे नवाधिकशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

छन्द ।

श्रीराम कौं इमि सरिस जान बशिष्ठ बोलत भे तबै ।
लखि लोकरीति कहे जु कछु जाबालि तुमसो वच अबै ॥
ते छमहु तुम रघुबंशमणि पुनि सुनहु सृष्टि उचारहूं ।
पहिलैं हुतौ जलमय जगत पुनि महि भई तिहि वारहूं ॥

दोहा ।

सुनि बिराट ब्रह्मा रचे बहुर देव सुर भूप ।
सुनि छिति काढ़ी नीर तें धरि बराह कौ रूप ॥

छन्द रोला ।

ब्रह्मातनय मरीचि सु तिनतैं कश्यप जानौ ।
कश्यप के भे भानु भानु के मनु पहिचानौ ॥
बैवस्वत मनुतनय नृपति इक्ष्वाकु सुहाये ।
जिन रचि नगरी अवध सबै बिधि लोग बसाये ॥
इक्ष्वाकुहि के कुक्ष कुक्षि के तनय बिकुक्षै ।
तिनके बान सुबान-तनय आरन्य जु सुक्षै ॥
तिनके पृथु पृथु के त्रिशंकु तिनके सुत जानौ ।
धुन्धमार ता-तनय नृपति युवनाश्व बखानौ ॥
युवनाश्वहि के तनय भये महिपति मन्धाता ।
तिनके तनय सुसन्ध सुसँधसुत भे युग भ्राता ॥
लघु प्रसेनजित नाम बड़े ध्रुव सन्धि गनाये ।
ध्रुवसन्धिहि के भरत भरत के असित सुहाये ॥
असित भूप सौं लरहिँ तीन तब अरि चढ़ि आये ।
तालजंघ ससिबिन्द नृपति हैं हय बल छाये ॥
तिन सब सौं करि युद्ध रह्यौ जब बल न लरै कौं ।
द्वै रानिनयुत गये हिमाचल सुतप करै कौं ॥
तपहि करत नृप भये कालबस ज्यौं मुनि ज्ञानी ।
गरभ ... ॥

इक रानी बिष दीन्ह तहाँ दूसर के ताईं ।
गरभ मरहिँ के हेत हुते मुनि च्यवन तहाईं ॥
सो यह रानी च्यवन पास चलि कीन्ह प्रनामै ।
समुझि गए मुनि तबहिँ चहत यह सुत अभिरामै ॥
बोले मुनि सुनि राजपत्नि तेरैं सुत ह्वै है ।
गर लीन्हे कर सगर नाम तातैं सो पैहै ॥
या बिधि भे नृप सगर सगर के सुत असमंजै ।
असमंज्यहु के अंशमान लहि राज अभंजै ॥
अंशमान के सुत दिलीप जे जग मैं गाये ।
तासु भगीरथ तनय भूमि जे गंगहि ल्याये ॥
तिनके तनय ककुस्थ ककुस्थहु के रघु नामा ।
रघु के सुत सौदास तासु शङ्खन अभिरामा ॥
सोभित शङ्खन-तनय सुदर्शन नाम नरेशू ।
अग्निवर्नसुत तासु सु तिनके शीघ्रगवेसू ॥
तिनके मरु मरुतनय प्रसुश्रव नाम जु भेई ।
अम्बरीषसुत तासु तिनहुँ नृप नहुष लहेई ॥
तिनके तनय जजाति तासु नाभाग बखानौं ।
तिनके अज अजतनय भूप दशरत्थहि जानौं ॥
दशरथसुत अब चारि सबै सब गुनन मड़े हौ ।
तिनमैं रघुकुलचन्द राम इक तुमहिँ बड़े हौ ॥
इह इक्ष्वाकुसुवंश माह बड़ करत रजाई ।
या बिधि निजकुलधर्म समुझि ठानहुँ रघुराई ॥

दोहा ।

है प्रसन्न चलि अवधि कहँ करहु राज रघुराज ।
तुमहिं बिपिन बिच बसत लखि व्याकुल सकल समाज॥

इति श्रीअयोध्याकांडे दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

छन्द ।

यों बंशबर्नन राम कों करि मुनि बशिष्ठ बिचारि कैं ।
पुनि भे सुनावत धरम के बच राम-ओर निहारि कैं ॥
नर के पिता माता अचारज मुख्य ये गुर तीन हैं ।
जन्मद पिता माता अचारज ज्ञान देत प्रबीन हैं ॥

दोहा ।

मैं तुम्हरे पित मातु कों आचारज हौं राम ।
पुनि हौं तुम्हरोई गुरू चाहत भल अभिराम॥

चौपाई ।

मम बच मानत अति जस ह्वै है। सत्यधरम मारग नहि जैहै ॥
धरमशील तुम्हरी जो माता । मानहु तासु बचन सुखदाता ॥
यामै है न धरमपथ हानी । चलहु अवध पालहु रजधानी ॥
मन्त्री भरत प्रजन की अरजी । मानहु राम यहहि मम मरजी ॥
यौं मुनिबच सुनि रघुपति बोले। धरमधुरन्धर बचन अडोले ॥
करत जु मातु पिता उपकारू । तातैं उरिन न पुत्र निहारू ॥
जनम देत पितु पुनि भष दाता। सयन करावत ह्वै तन त्राता ॥
पालि पोषि पुनि करत बड़ेरो । प्रीत करत यह कहि सुत मेरो ॥

अस पितु के जो बचन न मानौ। तौ मोकहँ फिर कहुँ न ठिकानौ
यौं सुनि भरत सु प्रभु की बानी। तबहिँ सचिव सौं बात बखानी॥
ल्यावहु दरभ बिछावहु नीके । इतहिँ द्वारमहँ परनकुटी के ॥
बैठहुँगौ धरनै तब ताईं । प्रभु न तजहिँगे बन जबताईं ॥
सचिव सुप्रभुडर दरभ न आनै । भरत तबहिँ त्वनआसन ठानै ॥
बैठे तहहिँ भरत करि धरना । बोले राम तबहिँ इमि बरना ॥
कीन्ह कहा मै अकरम भाई । जो तूँ बैठ्यहु धरनै आई ॥
है यह करम सुविप्रन जोगू । धरना करब कहत सब लोगू ॥
छत्रिन उचित न ठानब धरना। उठहु बेगि पालहु चहुँ बरना॥
पुरहिँ जाहु अभिषेक करावो । निहनि शत्रुगन प्रजन रखावो॥
यौं सुनि रामबचन उर दह्यऊ । भरत सु तबहिँ प्रजन सौं कह्यऊ
क्यौं तुम सब बैठे गहि मौना । ह्वै है वहहि सु जो कछु होना॥
सत्य कहहु मैं करत कुरीती । राम करत कै निपट अनीती॥
तब पुरवासिन सुनि यह कह्यऊ। रघुपति सत्य कहत भ्रम दह्यऊ।
तातैं हम सब मिल चुप ठानी । तुमहिँ सिखावहि को अस प्रानो
बहुरि भरत सौं रघुपति कह्यऊ। अनुचित धरना करि अघ लह्यऊ
ता अघ-नाशन हित तुम भाई । करहु आचमन सलिल मगाई॥
उठि आचमन भरत तहँ ठानी । मन्त्रिन सौं इमि बचन बखानी॥
मैं न सुपितु सौं माँग्यहु राजू । न पुनि जननि सौं कह्यउ कुकाजू
आये बिपिन रहन रघुराई । यहहु न जानत हौं मैं भाई ॥
मान सुपितुबच जो बनबासू । हैं करि वै प्रभु कहँ अघ नासू॥
तौ मैं प्रभु की हुत बन रैहौं । धरहिँ जटा बलकल फल खैहौं।
यौं सुनि भरतबचन रघुराई । बोले सुबचन सबनि सुनाई ॥

कैकेई कहँ दशरथराई । बर बदलै दिय वेचि रजाई ॥
हिँ नृपति पुनि बनहिँ पठायौ। यौं पितु उरिन भयहु जस पायौ॥
पितुबचन धरम ध्रुव ओप्यौ । जानत हमहुँ सुजातन लोप्यौ ॥
क रहित जब इक ह्वै जाई । तब ताहुत बिय होत सहाई ॥
कैइहुँ यह अति जस लीन्हा । बरतैं उरिन नृपति करदीन्हा ॥
तभक्ति जानत मैं सोऊ । मो सम याहि न है प्रिय कोऊ॥

दोहा।

बसि दंडक बिपिन मैं चौदह बरस बिताइ ।
रिहँहुँ फिर भाइन सहित राज अवधि कौं आइ ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे एकादशाधिकशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

छन्द ।

तब भरत अरु श्रीराम कौ सम्बाद यह विधि जानि कै।
बोले ऋषीश्वर आइ तहँ रावन सुवध अनुमान कै ॥
हे भरत मानहु रामबच जातैं न नृप नर्कहि परैं ।
ह्वै कैकई तैं उरिन भूप बिहार स्वर्गहि मै करैं ॥

दोहा।

कय कयकेई तैं उरिन नृपहि राम बन आइ ।
चहि तैं फिरजाँइ तौ दशरथसुगति नसाइ ॥

चौपाई।

कहि देवऋषीश्वर जेते । निज निज थल पहुँचे सब तेते॥
न तिनके बच प्रभु हरषाने । तबहिँ भरत तनमन सिथलाने ॥
रि सु करि पुनि प्रभुसौं कह्यऊ । अब न उपाइ कछू मम रह्यऊ ॥

मानहुँ बात सु कौशिल्या की । चाहिप्रजननि पुनि तुवप्रभुताकी ॥
हौं न सकहुँ करि महि रखवारी । सुनहुँ नाथ यह बिनति हमारी ॥
काहू कौं यह सौंपि रजाई । बन बिचरहु मम कछु न बसाई ॥
या कहि भरत पगनि पर परऊ । हे प्रभु हे रघुनाथ उचरऊ ॥
भरत उसास भरत तहँ रोवैं । पुनि पुनि रामचरनही जोवैं ॥
राम तबहिँ निज करन उठायौ । लैभरतहि निज उरहि लगायौ ॥
लिय निज गोदहि मैं जु चढ़ाई । पुनि रघुपति यह बानि सुनाई ॥
गुरुसेवन तैं भरत तिहारी । सुमति भई अब सब सुखकारी ॥
करि मंत्रिन सौं सुनय बिचारू । करहु राज पालहु परिवारू ॥

दोहा ।

तजहिं चन्द्र कौं चन्द्रिका हिमहिं तजै हिम ऐन ।
तजहिं सिंधु सीमा तदपि हौं न तजहुँ पितुबैन ॥

चौपाई ।

लोभबिबसकियजननि जु करनी । सो न कबहुँ निजउरमह धरनी ॥
कयकेई को सेवन कीजो । पुनिसबजननिनकीसुधिलीजो ॥
हौ तुम भरत भ्रात मति पावन । देहुँ तुमहिँ का और सिखावन ॥
सुनि सु भरत रघुपति की बानी । भे बोलत पुनि जोरि सुपानी ॥
सुपद पादुकन देहु रजाई । मैं करिहहुँ तिनकी सिवकाई ॥
राम पादुकनि परि चढ़ि आछैं । सौंपि राज तिनकहँ ता पाछैं ॥
तबहिँ उतार भरत कहँ दीन्हीं । सु सिरचढ़ाय सु भरतहुँ लीन्हीं ॥
लै पादुकनि भरत तब कह्यऊ । सुनहुनाथ जो ममचित चह्यऊ ॥
बलकल चीर जटा व्रतधारी । हौं ह्वैहहुँ फलमूलअहारी ॥
या बिधि बरष चतुरदस ताईं । रैहहुँ पुरबाहिर सुभ ठाईं ॥

तहँहिं पादुकन राज करैहौं । तुव आगम-मग हेरत रैहौं ॥
बरष चतुरदश पूरन माहीं । जो तुमकहँ प्रभु लखिहँहुँ नाहीं॥
तौ मैं अगिनप्रवेस करूँगो । ह्वै अनाथ सम तहँहिं जरूँगो ॥
तब रघुपति यह बानि सुनाई । हौंमिलिहँहुँ तुमसौं तित भाई॥
पुनि शत्रुघ्नहिँ सु उर लगायौ । दै आसिष यह बचन सुनायौ ॥
कयकेई की सेवा करियौ । क्रोध न कछु निजमनमहँधरियौ॥
या हित तोह सपथ अब मेरी । लखन सपथ पुनि सीता केरी ॥
इहहि कहत प्रभु दृग भरि आये । भरत शत्रुघ्न सु उर लगाये ॥
दै असीस पुनि आयसु दीन्हा । जाहु सुनत सबहुन दुख कीन्हा॥
पूजि पादुकनि भरत तहाँई । हाथी पर सिंगार चढ़ाई ॥
भरत तबहिँ प्रभु पाइन परिकै । रोवत चलत भये दृग भरिकै ॥

दोहा ।

तब रघुपति जननीन के छ्वै पग करि सु प्रनाम ।
परनकुटी में जात भे सलखन सीता राम ॥

इति श्री अयोध्याकांडे द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

छन्द ।

तहँ भरत अरु शत्रुघ्न गुरु मंत्री सुहृद सेना सबै ।
कै चित्रकूट परिक्रमा सु अन्हाय मंदाकिनि तबै ॥
भे चलत निज निज रथन चढ़ि सु प्रयाग कहँ आवत भये ।
पुनि भरतद्वाज मुनीश कौं मिलि करि प्रनाम तहां ठये ॥

दोहा ।

भे बूझत मुनि भरत सौं कीन्ह कहा तुम जाइ ।
भयहु तहां सम्बाद सो दीन्ह्यो भरत सुनाइ ॥

चौपाई ।

सुनि सब चरित तबहिँ मुनिराई । सुमुख भरत की कीन्ह बड़ाई ॥
सु मुनि भरत पुनि आयसु लैकैं । चलत भये पुनि प्रनपति कैकैं ॥
गंग उतरि पुनि तहँहिँ अन्हाये । शृङ्गबेर पुर कहँ चलि आये ॥

दोहा ।

तहँ तैं चलि पुनि सचिव सौं बोले भरत सुबानि ।
लखहु न सोभित अवधपुर जो सोभा की खानि ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

छन्द ।

लखि पुरहि भे भाषत भरत नहिँ सुनि परति कहुँ गान है ।
नहिँ सुरा गंध न धूपसौरभि न कहूं यज्ञविधान है ॥
बाजे बजैं न गजै कहूँ गज रथ तुरंग न देखहूँ ।
का ह्वै सु बागन माहिँ बिहरत हौं न अब अवरेखहूँ ॥

दोहा ।

पुरसोभा रघुनाथ इक सो अब आपु रहे न ।
तातैं यौं लखियत पुरी ज्यौं निसेस बिन रैन ॥
बनतैं आवत देखिहौं इत कबधौं रघुराय ।
यहहि कहत पहुँचे भरत राजभवन महँ जाय ॥

इति श्री अयोध्याकांडे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

छन्द ।

तब भरत सब मातानि को राखत भये महलन तहाँ ।
भाषत भये सु बसिष्ठ सौं प्रभु बिन जु दुख है मुहिं महाँ ॥
सो नन्दग्रामहिँ मैं बसत दुख द्यौस दुसहि बिताइहौं ।
ऐहैं जु बनतैं राम द्रुत तब तिनहिँ के सँग आइहौं ॥

दोहा ।

भरतबचन सुनि मे कहत सचिव सहित गुरु लोग ।
प्रभुसनेह बस जो कह्यो बात सु तुमहिं सुयोग ॥

चौपाई ।

को अस जो कछु तुमहिँ सिखावै । तुम जु कहत सो सब कहँ भावै ॥
यौं सुनि गुरु मंत्रिन की बानी । चढ़ि रथ भरत चले गुनखानी ॥
सँग शत्रुघ्न पुरोध प्रधाना । सकल सु सैनहु कीन्ह पयाना ॥
नन्दगावँ किय भरत उतारा । पुनि गुरु सौं यह बचन उचारा ॥
प्रभु यह राज दया उर धरि कैं । सौंप्यहु मोहि धरोहर करि कैं ॥
दीन्ही ताहित सुपद खराऊँ । हौं यह राज इनहिँ करवाऊँ ॥
तातैं राजसिँघासन ल्याओ । तापर प्रभुपादुक पधराओ ॥
धरहु छत्र मैं चमर करूँगो । सकल प्रजापालन सचरूँगो ॥
ऐहहिँ प्रभु जब फिर इह जागैं । जोड़ि पादुकनि धरिहहु आगैं ॥
हौं ह्वै हहुँ कृतकृत्य तबैई । सुख पैहहुँ सब भाँति सबैई ॥
करत बिचार भरत तहँ येही । रामचरन युग जनमसनेही ॥
सीस जटा बलकल तन धारैं । छिन छिन प्रभुपादुकनि निहारैं ॥
नन्दगाँव किय या बिधि बासू । भरत समुझि आपुहिँ प्रभुदासू ॥
लै कछु नजर करन जे आवैं । सु नजर भरत खड़ाउन द्यावैं ॥
राजकरम कछु आनि परै जो । पूछि पादुकनि भरत करैं सो ॥

दोहा ।

भरतचरित अति बिमल यह सुनहिं जु नर धरि नेम ।
तरहि सु तारहि उभय कुल लहहि रामपदप्रेम ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे पञ्चदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

छन्द ।

जब गे भरत सँग सैन ले श्रीरामचन्द्र तहाँ तबै ।
जानत भये मुनिजनन कौं जु बिथा निसाचरकृत सबै ॥
तित ऋषि परसपर भे करत सु बिचार कछु कानन लगे ।
इमि देखि व्याकुल मुनिन कौं बोले सुप्रभु करुना-पगे ॥

दोहा ।

मोसौं मम भ्रातान सौं सिय सौं कछु अपराध ।
पर्‌यहु होइ सो कहहु किन तुम सब सुमति-अगाध ॥

चौपाई ।

तब इक वृद्ध मुनीस उचारौ । नहि अपराध राम कछु थारौ ॥
पै तुम्हरे कारन निशिचारी । सकल मुनिन दुख देत जु भारी॥
रावनबन्धु जु खर यह नामा । भषत मुनीन मुनिन की भामा॥
जा दिन तैं तुम इत चलि आये। तब तैं तिहिं रिषि बहुत सताये॥
धरि बिकराल बपुष उठि धावैं । मारि मुनिन सब धूर मिलावैं ॥
तातैं हम यह थल तजि रामा । करिहहिं जाइ अनत बिश्रामा ॥
आश्रम अश्व मुनीश्वर केरौ । ह्यांतैं निकट सुबिकट घनेरौ ॥
तहँ बसिबैं हित आपुस माहीं। करत बिचार अवर कछु नाहीं ॥
हौ समरथ तुम यदपि अभीता । तदपि लिये निजतिय सँग सीता॥

तातैं तुमहुँ तजौ यह थाना । ह्याँ इक दिवस कलेशनिदाना ॥
सुमनिवचनइमिप्रभु सुनि लीन्हा। ताहि न कछु प्रति उत्तर दीन्हा॥
मुनिन प्रनित करि खल बध्रबेई । सो थल तजन बिचारत भेई ॥

दोहा ।

उठिगे मुनि तहँ तैं बहुत बहुत रहे प्रभु पास।
समुझि सामरथ राम की तजि रजनीचरत्रास ॥

इति श्री अयोध्याकांडे षोड़शाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

छन्द ।

इमि देखि त्रास मुनीन कौ तब प्रभु बिचारत भे यही ।
यह थल बिलोकत भरत की सुधि छिनहुँ छिन मुहिँ आवही॥
पुनि सेन उतरी ही इतहिँ यातैं अशुभ यह बन भयौ ।
यौं सोचि रघुपति सिय लखन युत भे चलत गहि मग नयौ ॥

दोहा ।

या बिधि गे चलि अत्रि के आश्रम कौं रघुराइ ।
मुनि कहँ कीन्ह प्रणाम प्रभु परसि पगन सिर नाइ॥

चौपाई ।

रामहिँ अत्रि सु हियहि लगावा । कीन्ह जु तप ताकर फल पावा।
राममिलन आनँद अधिकाई । मुनि उर लघु क्यौं लहहि समाई
दै आसिष आसन बैठाये । करि पूजन पुनि प्रभु गुन गाये।
पुनि मुनि अनुसूया सौं कह्यऊ। तोर जो तप ब्रत सकल सुभयऊ।
तूँ अब करु सिय कौ सनमाना। दै आसिष जल फल दल दाना
या कहि निजतिय सौं मुनिराई। प्रभुहि कथा यह तबहिँ सुनाई।

एक समय दश बरसहु ताहीं । मेघ कहूं जल बरसे नाहीं ॥
जलबिनबिकल भयौ जगजबहीं । अनुसूया निज तपबल तबहीं ॥
प्रगट करी मन्दाकिनि गंगा । मुनिन अरथ द्रुत तरल तरंगा ॥
कन्द मूल फल सकल बनाये । या बिधि खग मृग मुनिगन ज्याये
पुनि दश सहस बरष तप कीन्हौ । फल दल मूल न कछु भषि लीन्हौ

दोहा ।

एक समय याकी सखिहि सुमांडव्य मुनि आप ।
"होत प्रात तूँ होइगी बिधवा" यह दिय साप ॥

चौपाई ।

सुसखी हित तब इहिँ यह कीन्हौ । तप बल होन प्रभात न दीन्हौ ॥
है यह पतिब्रत पूरन यातें । सियहि पठावहु ता ढिग तातें ॥
तबहिँ राम सिय सौं यह कह्यऊ । कहत जु मुनि सौं तुम सुनिलयऊ
तातैं अबहिँ मिलौ अनुसूयै । जो जानत नहि कबहुँ असूयै ॥
प्रभुआयसु लहि तबहीं सीता । तासौं मिल किय प्रनति पुनीता
तबहिँ सीय अनुसूया देखी । वृद्ध बपुष तप तेज बिशेषी ॥
शुकल सुकेस सकल अभिरामा । काँपत नखसिख अँग तप छामा
तहँलखि यौं ऋषिपतिनपुनीता । कुशल भई पूछत तब सीता ॥
अनुसूयहु तब सिय कौं दीन्है । बहु आसिष अति आदर कीन्है ॥
मुनितब पुनि सियसौं यहकह्यऊ । धन तूँ जो रघुपति पति लह्यऊ
धरम सुपथ तूँ जानत नीकैं । आई बनहिँ जु चलि सँग पी कैं ॥
होइ सुपित पुर कै बन माहीं । नारिधरम सँग छोड़हि नाहीं ॥
अन्ध बधिर शुभ अशुभ अभागी । कूर कुटिल जस अपजसरागी ॥
दैवति परम तियन कौ भरता । सब सुखमूल सकल अघहरता ॥

जे या बिधि पति जाननिवारी । ते उत्तम पद पावहिँ नारी ॥
कामबिबस जो पति अपमानै । ता तिय कहँ पद नरक निदानै ॥
तुव समान सिय जे जग भामा । ते पावहिँ सुरपुर बिसरामा ॥

दोहा ।

तूँ निजपति सेवन करत पैहै सुजस अपार ।
तो समान को कहहु तिय जासु राम भरतार ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

छन्द ।

या भाँति अनुसूयाबचन सुनि जानकी बोली तबै ।
जो धरम तुम भाषे तियन के ते ऽब मैं जानत सबै ॥
श्रीरामनृप निजमातु के सम परतियन कौं जानहीं ।
धारैं सु इकपतिनीब्रतहि सपनै न कहुँ अघ ठानहीं ॥

दोहा ।

ब्याह समय तियधरम जे मुहि समुझाए मात ।
बन आवत सासुहिं कहे ते मम उर सरसात ॥

चौपाई ।

तियनि सिवाय सुपति की सेवा । धरम न और न कोऊ देवा ॥
साबित्रिहु करि पति की पूजा । पहुँची स्वग्ग न किय ब्रत दूजा ॥
यौं सुनि मुनितिय सिय कीबानी । ह्वै प्रसन्न पुनि तबहिँ बखानी ॥
सुनहु सिया मै बहु तप ठाना । ताकौ फल तुव दरस दिखाना ॥
चहहु सो बर माँगहु अब मोसौं । हौं परसन्न भई बहु तोसौं ॥
यौं सुनि सीयबचन यह कह्यऊ । देखि तुमहिँ हम सब कछु लह्यऊ

यौं सुनि ह्वै परसन मुनि जाया। कह्यउ बचन मृदु पुनि करि दाया ॥
चन्दन दिव्य बसन आभरना । ये लै तुम धारहु वर वरना ॥
यातैं तूँ अब सुख पावैगी । भाग सुहाग सुजस छावैगी ॥
तब सिय लिय भूषन पट चन्दन। पुहपमाल पुनि पुनि कर वन्दन॥
बैठी जाइ सुकर सिय जबहीं । अनुसूया पुनि बोली तबहीं ॥
कहु क्यौं तुम्हर स्वयम्बर भयऊ । सीय तबहिँ सब चरित सुकह्यऊ॥
जनक जनक मम जो मिथलेशू। यज्ञकरन हित लखि महिवेसू ॥
तित हल सौं महि जोतत माहीं। हौं निकसी तब तुरत तहाँहीं॥
लहिमुहिँ जनकसुताकरिजानी। मम परिपालन सबविधि ठानी॥
तबहिँ सुभग नभ बानि उभाची। है यह जनक सुता तुव साँची॥
व्याहन जोग भई मैं जबहीं । कीन्हि विदेह सु चिंता तबहीं ॥
या लायक पति पावहुँ कैसैं । किय बिचार पुनि भूपति ऐसैं ॥
हर धनु बरुन दियउ जो माहीं। याकहँ आइ उठावहि कोही ॥
ताहि विवाह सुकन्या देहौं । औरन कछु या बदलैं लैहौं ॥
या सुनि सुनि बहुतक नृप आए। धनुष उठावन हित वलछाए ॥
उठ्यहु न धनुष सबै उठिगेई । तबहिं जनक पुनि सोचत भेई॥
बिस्वामित्र सकल मुनिराई । आए तब लै सँग रघुराई ॥
धनुष उठाइ चढ़ाइ लियोई । खैंचि सु प्रभु दो टूक कियोई ॥
रामहिँव्याहि हमहिँपितु दीन्हा। बहुर व्याहु लछमन कौ कीन्हा॥
तहँहिँ भरत सत्रुघ्नहु आए । तिनहुं जनक कर व्याहु पठाए ॥

दोहा।

भयहु स्वयंबर इहि तरहँ हमर जनकपुर माह ।
भई प्रिया मैं रामकी राम भए मम नाह ॥

इति श्रीअयोध्याकांडे अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥